# योग और अध्यात्म

डॉ० सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय

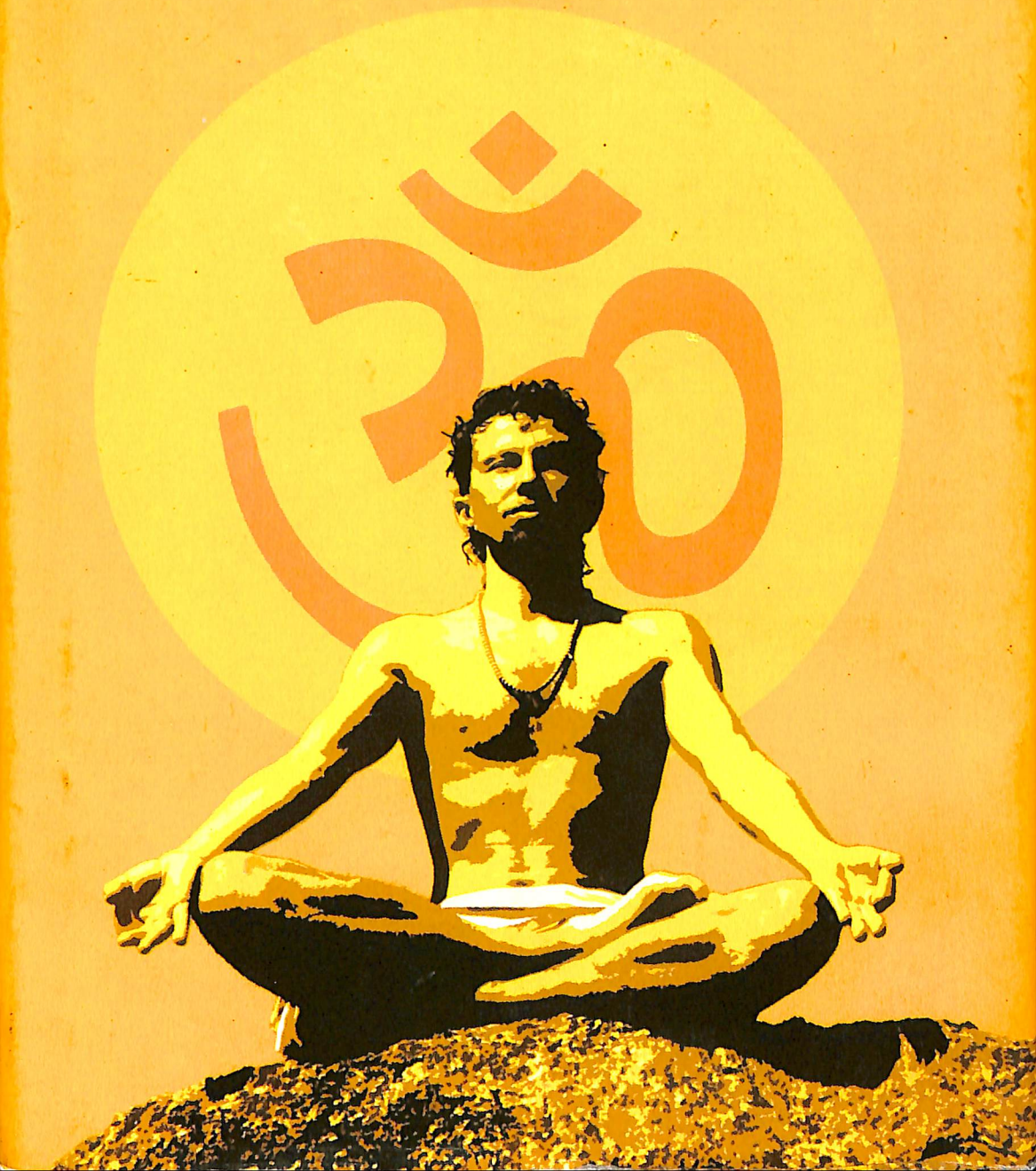

# योग और अध्यात्म

डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय

# योग और अध्यात्म

# योग और अध्यात्म

प्रस्तोता

**डॉ. सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय**

पी.सी.एस.

एम.ए. (संस्कृत), डी.फिल्. (संस्कृत साहित्य),
साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

प्रकाशक

**मीरा पब्लिकेशन्स**

49बी/37, न्याय मार्ग, इलाहाबाद - 211001

ISBN : 978-81-88211-65-4

प्रकाशक : मीरा पब्लिकेशन्स
49बी/37, न्याय मार्ग,
इलाहाबाद - 211001
प्रथम संस्करण : 2013
मूल्य : ₹ 375.00
लेज़र टाइपसेटिंग : निओ सॉफ्टवेयर कन्सलटैंट्स
इलाहाबाद
मुद्रक : सुलेख मुद्रणालय
148, हीवेट रोड,
इलाहाबाद - 211003

# आशीर्वचन

डॉ0 सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय के व्यक्तित्व का यह महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है कि वे एक कुशल प्रशासक होते हुए भी विद्याव्यसनी लेखनरसिक हैं। वे अपने प्रशासनिक कार्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ सम्पन्न करते हुए भी ग्रन्थ लेखन के लिये समय निकाल ही लेते हैं। मेरे विचार से ग्रन्थ लेखन उनकी संजीवनी शक्ति है, जिससे वे सर्वथा स्फूर्तिमान और क्रियाशील बने रहते हैं। अभी तक उनके लगभग 25 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और जीवन में अभी कितने और प्रकाशित करेंगे, उनके उत्साह और क्रियाशीलता को देखते हुए यह अनुमान करना कठिन नहीं है।

अब वे जीवन के उस पड़ाव पर पहुँच रहे हैं जिसमें अधोलिखित श्लोकार्थ कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगता है—

**यथा यथा विपर्येति लोकतन्त्रमसारवत्।**
**तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः॥**

ध्वन्यालोक में उद्धृत इस श्लोक में आए हुए 'लोकतन्त्रमसारवत्' का विवेचन करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं लोकैस्तन्त्र्यमाणं यत्नेन सम्पाद्यमानं धर्मार्थकामतत्साधनलक्षणं वस्तुभूततया अभिमतमपि येन येनार्जनरक्षणक्षयादिना प्रकारेण असारवत्तुच्छेन्द्रजालादिवत् विपरीतं सम्पद्यते।

बड़े प्रयास और स्वध्याय से जुटाया गया यह धर्म, अर्थ और काम का अभिमत साधनजाल शनैः शनैः तुच्छ इन्द्रजाल की तरह वैरस्य सा उत्पन्न करने लगता है। ऐसी अवस्था में विचारवान् तत्त्वजिज्ञासु पुरुष का अध्यात्मप्रवण होना स्वाभाविक ही है। लेखक के विविध ग्रन्थों का कालक्रम से विचार करने पर यह स्थिति स्पष्ट हो जाती है। उनके प्रारम्भिक ग्रन्थ अर्थ और काम पुरुषार्थ को ही ध्यान में रखकर लिखे गए प्रतीत होते हैं, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ उनके जीवन में क्रमिक आध्यात्मिक विकास की पहली कड़ी है। इसकी विषय-वस्तु में उनकी स्वानुभूति भी सहायक प्रतीत होती है। उन्होंने 'योगशास्त्र' के सम्बन्ध

में आकर ग्रन्थों से प्रमाणिक जानकारी संगृहीत की है और 'योग' शब्द किस किस प्रसंग में, पर्यायों में प्रयुक्त हुआ है; इसी प्रकार योग के अंगों के विषय में तथा राजयोग, हठयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, कर्मकौशल योग, समत्वयोग आदि सभी का यथासंभव सप्रमाण व्याख्यान किया है। इन्होंने केवल ईशादि दश मुख्य उपनिषद् ही नहीं अपितु 108 उपनिषदों का भी यथामति अध्ययन किया है और उन्हें यथास्थान उद्धृत भी किया है। वैदिक संहिता, रामायण, महाभारत, उपनिषद्, विविध स्मृति ग्रन्थ, पुराण साहित्य से भी उपयोगी सामग्री खोज निकाली है। इस प्रकार यह पुस्तक रोचक तो है ही, अपने प्रामाणिक शास्त्रीय उद्धरणों के कारण अध्यात्म सम्बन्धी पुष्कल जानकारी प्रस्तुत करने के कारण उपयोगी भी है। अब यह देखना है कि लेखक इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद किस अध्यात्म चिन्तन से प्रेरित होकर अगली पुस्तक लिखेंगे। उनकी लेखनरसिकता और सतत विद्याव्यासङ्ग के कारण उन्हें हार्दिक बधाई तथा प्रस्तुत प्रकाशन के लिये हार्दिक साधुवाद और आशीर्वाद।

(प्रो0 सुरेश चन्द्र पाण्डे)
पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

# आत्म निवेदन

योग और अध्यात्म का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। इस प्रकार दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध को देखते हुए और वर्तमान भौतिक युग में इसकी उपयोगिता, सार्थकता और प्रासंगिकता को देखते हुए इस पर कुछ लिखने का भाव मन में जागृत हुआ। अध्यात्म के क्षेत्र में जिन-जिन महापुरुषों ने आत्मोन्नति की है वे वस्तुतः महान् योगी ही थे। ऐसे महान् आत्माओं में महर्षि पतंजलि, आद्यशंकराचार्य, सदानन्दयोगीन्द्र, गुरु गोरखनाथ, रामकृष्णपरमहंस, महर्षि रमण, मत्स्येन्द्रनाथ, स्वामी विशुद्धानन्द, गोपीनाथ कविराज आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन्द्रियों के निग्रह के द्वारा आत्मा व परमात्मा में एकत्व की अनुभूति ही योग है और आत्मविषयिणी बुद्धि होना और आत्मस्थ होना ही अध्यात्म कहा जाता है। इस प्रकार योग और अध्यात्म एक दूसरे के पोषक व पूरक हैं। बिना यम-नियम आदि के पालन के योग में गति नहीं हो सकती और जिसने यम, नियम आदि को सिद्ध कर लिया है, उसे अध्यात्म के क्षेत्र में ऊँचाइयों पर पहुँचने में विलम्ब नहीं हो सकता।

आज भौतिकता अपने चरम पर है। धन और लौकिक भोग-विलासों में डूबे हुए प्रत्यक्षवादी, प्रेयस्कामी फलतः अनात्मवादी मनुष्यों के बारे में यमराज का कठोपनिषदोक्त निम्न कथन अत्यन्त प्रासंगिक है—

**न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।**
**अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥**

1-2-6

अर्थात् धन के व्यामोह में जकड़े हुए प्रमादी मनुष्य के हृदय में पारलौकिक विचारधारा का अभ्युदय नहीं होता। वह जीवन को प्रत्यक्षवाद पर ही आधारित मानता है। आध्यात्मिक जीवन के अस्तित्व को नकारने वाले

देहाभिमानी व्यक्ति बार-बार जन्ममरण के बन्धन अर्थात् हमारे (यमराज) वश में आते हैं।

ऐसा सम्भव नहीं है कि इस पुस्तक को पढ़ने से अनधिकारी, अज्ञानी, अनात्मवादी और मूढ़ व्यक्ति ज्ञानी व श्रेयस्कामी हो जाएँगे। परन्तु जैसे किसी तथ्य या तत्त्व को जानना उसको मानने व उसके अनुपालन करने की दिशा में पहला कदम होता ही है, उसी तरह आत्मा को ही शाश्वत सत्य मानने तथा आत्मा व परमात्मा के एकत्व की अनुभूति करने के लिए उसके बारे में श्रुतियाँ क्या कहती हैं उसको जानना आवश्यक है। क्योंकि सत्य व परमसत्ता के अन्वेषण व उसको जानने की प्रवृत्ति भारतीय मनीषा में अनादि काल से रही है। उन्हीं भारतीय प्राज्ञपुरुषों के जीवन दर्शन, जीवनानुभूति पर आधारित प्रस्तुत कृति है। क्या पता पुस्तक का कोई अंश किसी पाठक के जीवन में क्षण भर के लिए ही सही, संसार की नश्वरता और आत्मा की अमरता के बारे में चिन्तन करने को विवश कर दे और पाठक के जीवन में कुछ शान्ति, कुछ परार्थता और स्वल्प आनन्द के बीज अंकुरित हो जाएँ। स्वल्प आनन्द ही बाद में भूमानन्द या परमानन्द में परिणत होता है। पुस्तक का उद्देश्य व्यक्ति को अकर्मण्य व संसार से पलायनवादी बनाना नहीं है, अपितु श्रेष्ठ व निष्काम कर्म करते हुए फलाकांक्षी न होने, संसार में रहते हुए असंग रहने और आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना में दृढ़ विश्वास रखने की दिशा में चिन्तन करने तथा शनैः-शनैः अभ्यास करने को प्रेरित करना है।

इस प्रकार सद्गुरु की कृपा से योग और अध्यात्म के बारे में सरल, सटीक व आकरग्रन्थों के उद्धरणों के कारण प्रामाणिक जानकारी जनसामान्य तक पहुँचे, उसी दिशा में यह एक विनम्र लघु प्रयास है।

पुस्तक लेखन में परमपूज्य गुरुवर्य प्रो0 सुरेशचन्द्र पाण्डे, राष्ट्रपति सम्मानित ने जो अमूल्य सुझाव, सत्परामर्श व दिशा निर्देश पग-पग पर दिया है उनकी इस अहैतुकी कृपा के लिए मैं आजन्म उनका ऋणी रहूँगा। उनके निर्देशन, पर्यवेक्षण व शुभाशीष् के बिना पुस्तक का वर्तमान रूप में आना असम्भव था। मैं पुनः उनके श्रीचरणों में नतमस्तक होता हूँ।

पुस्तक रचना में अर्द्धांगिनी श्रीमती प्रेमा पाण्डेय ने गृह कार्यों से निश्चिन्त रखकर जो सहयोग दिया है उसके लिए वे भी साधुवाद की अधिकारिणी हैं। सुहृद्वर्य एवं अध्यात्म रसिक डॉ0 उमेश कुमार मिश्र ने

समय-समय पर मुझे उत्साहित कर पुस्तक लेखन को सुगम बनाया है अतः उनके प्रति भी आभारी हूँ। उदार व उत्साही प्रकाशक श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल व उनके सुपुत्र श्री विभोर अग्रवाल को भी धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य बनता है। पुस्तक में किसी भी प्रकार की त्रुटि व अल्पता के लिए अपना उत्तरदायित्व मानते हुए सुधी व विज्ञ पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हूँ। यदि मेरा यह तुच्छ प्रयास किञ्चिन्मात्र भी किसी को श्रेयः पथ के बारे में जिज्ञासु बना सका तो मेरा श्रम सार्थक होकर आनन्द बन जाएगा।

वैशाख पूर्णिमा
संवत् 2070
प्रयाग

विदुषां वशंवदः
**डॉ0 सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय**

# प्रकरण क्रम


| | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| आशीर्वचन | ... | 5 |
| आत्म निवेदन | ... | 7 |
| जीवन का लक्ष्य और योग का उद्‌भव | ... | 15 |
| परमसत्ता की जिज्ञासा | ... | 22 |
| परमात्मा का स्वरूप | ... | 26 |
| परमात्मा-अनुभूति का विषय | ... | 35 |
| योग का लक्षण व स्वरूप | ... | 42 |
| ॐकार | ... | 54 |
| मन का वैशिष्ट्य | ... | 65 |
| योग के अङ्ग | ... | 92 |
| यम | ... | 96 |
| नियम | ... | 109 |
| आसन का स्वरूप व संख्या | ... | 116 |
| प्राणायाम | ... | 133 |
| प्रत्याहार | ... | 149 |
| धारणा | ... | 152 |
| ध्यान | ... | 156 |
| समाधि | ... | 162 |
| कुछ प्रमुख योग | ... | 166 |
| योगी के लिए पथ्य | ... | 190 |
| योग के लिए अपेक्षित तत्त्व | ... | 194 |

पृष्ठ

योग से लाभ ... 197
प्रसिद्ध योगी ... 208
गीता और योग ... 211
योग सिद्धियाँ ... 223
आत्मा का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य ... 226
योग व अध्यात्म सुभाषितशतक ... 233
मनुष्यों के अठारह दोष ... 257
योग शब्दावली — हिन्दी ... 266
योग शब्दावली — अंग्रेजी ... 278
सन्दर्भग्रन्थ ... 285

ॐ

# योग और अध्यात्म

# जीवन का लक्ष्य और योग का उद्भव

भारतीय मनीषा ने आदिकाल से मानव जीवन का परम और चरम लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार को माना है। भारतीय साधना में मोक्ष ही केवल साध्य है। भारतीय प्राज्ञपुरुषों ने शेष तीन पुरुषार्थों को साधन और चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष को साध्य माना है। आत्मसाक्षात्कार, आत्मानुभूति को ही आत्मावलोकन, आत्मदर्शन, आप्तकामता, आत्मज्ञान, अपरोक्षानुभूति, परमानन्द, स्वानुभूति, कैवल्य, मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति, निर्वृति, जीवन्मुक्ति, ब्राह्मीस्थिति आदि पदों से अभिहित किया गया है। इसे ही निश्रेयस्, परमगति, अक्षयसुख की प्राप्ति, अपुनरावृत्ति, अपवर्ग, अमृत, ब्रह्मभवन, परलोकोन्नति या ईश्वर की प्राप्ति कहा गया है। जीवन्मुक्त को ही महाकर्ता व महाभोक्ता बताया गया है। ऐसे साधक को ही श्रुतियों में तत्त्वविद् व शान्तधी नाम दिया गया है। अमृत स्वरूप में स्थिति प्राप्त करने में ही जीवन की सार्थकता बतायी गई है। भारतीय ऋषियों ने इस अमृत स्वरूप में प्रतिष्ठा लाभ करना मानव मात्र का जन्म-सिद्ध अधिकार बताया है। आत्मा और परमात्मा का ऐक्य भाव या आत्मा का परमात्मा से अभेद ही अद्वैत अवस्था है। आत्मा का परमात्मा के साथ तदाकार हो जाना ही वैदिक योग साधना का भी ध्येय रहा है। परमेश्वर का साक्षात्कार ही साधक की अभीप्सा रही है। अद्वैत अवस्था ही सबसे ऊँची अवस्था है। समस्त साधनों का सार है जीव ब्रह्म की एकता। यही साधक का चरम लक्ष्य है।

सभी वेदों का प्रतिपाद्य परमात्मा (परमपद) ही है—

**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**
**तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति॥**

(कठोपनिषद् 1/2/15)

**अहं ब्रह्मास्मि** (बृहदारण्यकोपनिषद्), **तत्त्वमसि श्वेतकेतो** (छान्दोग्योपनिषद्), **सोऽयम् आत्मा एष ब्रह्म** (ऐतरेय0), **सर्वं च खल्विदं ब्रह्म** (महोपनिषद्), **सोऽहम् व अयमात्मा ब्रह्म** (माण्डूक्योपनिषद्) आदि

श्रुतिवाक्य जीव व ब्रह्म की एकता का ही उद्घोष करते हैं। उसी को ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् शब्द से भी कहते हैं—

**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते**

(श्रीमद्भागवत 1/2/11)

ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है। जीव ही ब्रह्म है अन्य कोई नहीं। सम्पूर्ण वेदान्त जीव व ब्रह्म की एकता का उपदेश भूरिशः देता है—

**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।** पञ्चदशी

जो उस परमात्मा को आत्मा में स्थित देखता है, वही बुद्धिमान है और उसे ही शाश्वत सुख (परमानन्द) अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है—

**तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति**
**धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥**

(कठोपनिषद् 2/2/12)

इस सम्बन्ध में योगवासिष्ठ का निम्न अंश उपादेय है—

**वस्तुतस्तु जगन्नास्ति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।**

—योगवासिष्ठ 4/40/30

वास्तव में जगत् है ही नहीं, सब केवल ब्रह्म ही है।

जो इस आत्मा को जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं—

**य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।**

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि जो आत्मवित् अर्थात् आत्मज्ञानी है वह सभी शोकों को पार कर लेता है—

**तरति शोकमात्मवित्।**

इसी प्रकार ईशावास्योपनिषद् में आत्मतत्त्व ही समस्त भूतों के रूप में प्रकट हुआ है, ऐसी अनुभूति करने वालों के लक्षण दिये गए हैं—

**तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।** (ईशा07)

अर्थात् आत्मा व परमात्मा में एकत्व की अनुभूति करने वाले को शोक व मोह नहीं होता।

आत्मसाक्षात्कार को परम लाभ बताते हुए आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा है कि **'आत्मलाभान्न परं विद्यते'**—(आपस्तम्ब धर्मसूत्र 8/12) अर्थात् आत्मलाभ (आत्मज्ञान) से बढ़कर कुछ भी नहीं है।

आत्मा ही परमात्मा है और वही चिन्त्य है। परमात्मा से अधिक आत्मीय

कोई नहीं है। ऐसा ही महाभारत में कहा गया है—

**आत्मा ह्येवात्मनो ह्येकःकोऽन्यस्तस्मात्परो भवेत्।**
**एवं मन्यस्व सततमन्यथा मा विचिन्तय॥**

शा0पर्व 318/104

इसमें भीष्म ने युधिष्ठिर को आत्मा के विपरीत अन्य किसी का चिन्तन न करने का उपदेश दिया है। स्वाध्याय में रत व तत्पर व्यक्ति ही नित्य, मुक्त, सद्, चित् और शुद्ध-बुद्ध परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी में मानव जीवन की चरितार्थता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् 4.4.6 में कहा गया है कि **'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'** अर्थात् वह ब्रह्म ही होकर ब्रह्म को प्राप्त होता है। वायुपुराण 104/32 में वर्णन है कि सब कुछ ब्रह्म है, जगत् में अनेक कुछ नहीं है—**सर्वं ब्रह्मैव नानात्वं नास्तीति निगमा जगुः।**

उद्धवगीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि आत्मा व परमात्मा में ऐक्य दर्शन ही ज्ञान हैं—**ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम्।**

भागवत महापुराण 3/26/2 में यह कहा गया है कि मानव निःश्रेयस् या मोक्ष का स्वरूप जानने के लिए आत्मोन्मुख बने। पुरुष का स्वंय को जानना अर्थात् आत्मदर्शन (आत्मज्ञान) ही मोक्ष का कारण है—

**ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम्।**

मुण्डकोपनिषद् 3/2/9 में कहा गया है कि जो ब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है—

**ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।**

ऐसा मनुष्य सभी पापों से पार होकर, अमरत्व को प्राप्त होता है—

**तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो भवति।**

—मुण्डको0 3/2:9

परशुरामकल्पसूत्र में वर्णित है कि 'स्व विमर्शः पुरुषार्थः' अर्थात् स्वात्म का विमर्श ही पुरुषार्थ है। अपने का ज्ञान (आत्मज्ञान) ही एक मात्र पुरुषार्थ है। इस प्रकार जीव का प्रधान कर्तव्य आत्मसाक्षात्कार ही है। आद्य शंकराचार्य यही कहते हैं—

**आत्मलाभात्परो नान्यो लाभः कश्चन विद्यते।**

उपदेशसाहस्री 17/4

अर्थात् आत्मलाभ (आत्मसाक्षात्कार) से बढ़कर दूसरा और कोई ज्ञान (लाभ) नहीं है।

विवेकचूड़ामणि में आदि शंकराचार्य कहते हैं कि ब्रह्म और आत्मा के एकत्व बोध के बिना मोक्ष नहीं सिद्ध हो सकता—

**ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा।** 58

और भी—

**आत्मैक्यबोधेन विनापि मुक्तिर्न सिद्ध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि।** 6

अर्थात् ब्रह्म-आत्मा के एकत्व ज्ञान के बिना ब्रह्मा के शतकल्प पर्यन्त भी मोक्ष की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।

योगवासिष्ठ में '**आत्मैवेदं जगत्सर्वम्**' 3/100/30 तथा '**न जगत्पृथगीश्वरात्**' 3/61/4 का उल्लेख आत्मा व परमात्मा की एकता का डिंडिमनाद है।

इस प्रकार यह निर्विवाद एवं सर्वमान्य मान्यता है कि भारतीय साधना की चरम सिद्धि मोक्ष प्राप्ति हैं। मोक्ष को चतुर्थ (चरम) पुरुषार्थ कहा जाता है।

स्वभाव में स्थित होना, सभी प्राणियों में एक ही आत्मा को देखना योग का प्रधान लक्ष्य है। इस महान् व दिव्य योग के आदिवक्ता हिरण्यगर्भ हैं। उनसे प्राचीन कोई इस शास्त्र का वक्ता नहीं है। महाभारत 339/68-69 के अनुसार योग के आदि उपदेष्टा हिरण्यगर्भ ही परमर्षि कपिल थे—

**कपिलं परमर्षिं च यं प्राहुर्यतयः सदा।**
**अग्निः स कपिलो नाम सांख्ययोगप्रवर्तकः।।**

**(महाभारत 11/3/65)**

भागवत 5/19/13 में भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी द्वारा मोक्ष प्राप्ति को ही योग साधना की कुशलता बताने वाला वर्णन प्राप्त होता है—

**इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत्।**
**यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः।।**

अहिर्बुध्न्यसंहिता 12/32 में भी यह कहा गया है—

**हिरण्यगर्भादुद्भूतं तस्य भेदानिमान्शृणु।**
**आदौ हिरण्यगर्भेण द्वे प्रोक्ते योगसंहिते।।**
**एका निरोधयोगाख्या कर्मयोगाह्वया परा।।**

अर्थात् यह योगानुशासन हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुआ है। प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ ने इसके दो भेद किये। एक संहिता निरोधयोग व दूसरी संहिता कर्मयोग के नाम से कही गई है।

इसी में लोक के आदि हिरण्यगर्भ के द्वारा आदिभूत उस सांख्यशास्त्र से योगशास्त्र को संक्षिप्त अंश के रूप में करने का उल्लेख है—

**हिरण्यगर्भो लोकादिर्यत् ततक्षादिशासनात्।**
**यमाद्यङ्गमभूदेतद् दिव्यं योगानुशासनम्॥**

अहिर्बुध्न्यसंहिता 11/60

भागवत 11/13/16 में योगशास्त्र के आदि वक्ता हिरण्यगर्भ को ही कहा गया है। हिरण्यगर्भ को ही ब्रह्माजी के रूप में बताया गया है।

**पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः।**
**पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम्॥**

महाभारत शान्तिपर्व में भी योगशास्त्र के आदि उपदेष्टा के रूप में हिरण्यगर्भ भगवान् को बताया गया है। वे परब्रह्म हैं।

**विद्यासहायवन्तं च आदित्यस्थं समाहितम्।**
**कपिलं प्राहुराचार्याः सांख्यनिश्चितनिश्चयाः॥**
**हिरण्यगर्भो भगवानेष च्छन्दसि सुष्टुतः।**
**सोऽहं योगरतिर्ब्रह्मन् योगशास्त्रेषु शब्दितः॥**

339/68-69

महाभारत में भगवान् का उद्घोष है कि योगियों में पूज्य हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ—

**हिरण्यगर्भो द्युतिमान् य एषच्छन्दति स्तुतः।**
**योगैः सम्पूज्यते नित्यं स एवाहं भुवि स्मृतः॥**

शा0पर्व 342/96

महाभारत शा0पर्व 349/65 में स्पष्ट रूप से योग का पुरातन वक्ता हिरण्यगर्भ को कहा गया है—

**हिरण्यगर्भो योगस्य वेत्ता नान्यः पुरातनः।**

इस प्रकार महाभारत के अनुसार हिरण्यगर्भ व कपिल (सांख्याचार्य) परमात्मा के ही स्वरूप हैं।

योगियाज्ञवल्क्य 12/5 में भी हिरण्यगर्भ को योगशास्त्र का पुरातन वक्ता कहा गया है—

**हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः।**

जब गीता 4/1 में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि इस योग विद्या को मैंने सूर्य (विवस्वान्) को दिया था, फिर सूर्य ने इसे मनु को व मनु ने इक्ष्वाकु को यह ज्ञान दिया था तो उससे भी यह प्रमाणित होता है कि योग के आदि उपदेष्टा स्वयं भगवान् ही हैं।

ऋग्वेद 10/121/1 में हिरण्यगर्भ को समस्त भूतों का पति बताते हुए उन्हें सर्वप्रथम उत्पन्न कहा गया है—

**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**

अद्भुतरामायण 15/6 में भी हिरण्यगर्भ को भगवान् ब्रह्मा माना गया है, और उन्हें ही योग का प्रवर्तक स्वीकार किया गया है—

**हिरण्यगर्भो भगवान् एष बुद्धिरिति स्मृतः।**
**महानिति च योगेषु विरंचीति तथाप्यजः॥**

इस प्रकार उत्पत्ति की दृष्टि से योगशास्त्र की अत्यन्त प्राचीनता सिद्ध होती है। मूल रूप से योग विद्या प्राचीन होते हुए भी इसको सर्वप्रथम द्वितीय शताब्दी ई-पूर्व में शास्त्रबद्ध करने वाले व सूत्र रूप में निबद्ध करने वाले प्रथम आचार्य महर्षि पतञ्जलि ही थे। कहा जाता है कि पतञ्जलि ही चरकसंहिता के लेखक चरक थे और व्याकरण महाभाष्य के लेखक भी थे। जैसा कि इस सुप्रसिद्ध श्लोक से विदित होता है—

**योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।**
**योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥**

हमारे देश की यह विशेषता है कि यहाँ ज्ञानी उसी को कहते हैं जो आत्मज्ञानी है। प्रायः व्यवहार जगत् के विस्तृत अध्ययन किए हुए और विभिन्न उपाधियों से युक्त व्यक्ति को लोग ज्ञानी समझ बैठते हैं किन्तु वस्तुतः अध्यात्म जगत् की दृष्टि से ऐसा व्यक्ति विद्वान् तो है परन्तु ज्ञानी नहीं है। वह ज्ञानी तभी होगा जब वह आत्मज्ञानी होगा। हमारे अहन्ता में आत्म-ज्ञान की तो सूक्ष्म झलक मिलती है किन्तु वस्तुतः वह आत्मज्ञान नहीं है क्योंकि उसमें अहम् (आत्मा) के साथ अन्य विविध वस्तुएँ (शरीर, व्यक्तित्व, शक्ति, सम्बन्ध, सांसारिक प्रतिष्ठा) जुड़ी हुई हैं। जैसा कि शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के अपने भाष्य के प्रारम्भ में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से बताया है—

**युष्मदस्मत्प्रत्ययगोचरयोर्विषयविषयिणोस्तमः प्रकाशवद् विरुद्धस्वभावयोरितरेतर भावानुपपत्तौ सिद्धायां तद्धर्माणामपि**

सुतरामितरेतर भावानुपपत्तिरित्यतोऽस्मत्प्रत्ययगोचरे विषयिणि चिदात्मके युष्मत्प्रत्ययगोचरस्य विषयस्य तद्धर्माणां चाध्यासः, तद्विपर्ययेण विषयिणस्तद्धर्माणां चविषयेऽध्यासो मिथ्येति भवितुं युक्तम्। 1/1

**तथाप्यन्योऽन्यस्मिन्नन्योन्यात्मकतामन्योन्य धर्माश्चाध्यस्येतरेतरा-विवेकेन, अत्यन्तविविक्तयोर्धर्मधर्मिणोर्मिथ्याज्ञाननिमित्तः सत्यानृते-मिथुनीकृत्य, अहमिदं ममेदमिति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहारः।** 1/2

इस प्रकार देह की नश्वरता (क्षणभंगुरता) व आत्मा-परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। इसी को परा विद्या कहा गया है। ऐसा ज्ञान भक्ति व योग के द्वारा ही व्यक्ति प्राप्त करता है। आत्म-ज्ञान ही मानव जीवन का लक्ष्य, साध्य व पुरुषार्थ माना गया है। योग ही वह एकमात्र साधन व मार्ग है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने लक्ष्य अर्थात् आत्मलाभ या परमपद तक पहुँच सकता है।

ॐ

# परमसत्ता की जिज्ञासा

आदिकाल से जहाँ एक ओर मानव मन में परमसत्ता, परमात्मा या परब्रह्म को जानने की जिज्ञासा, उत्कण्ठा रही है वहीं दूसरी ओर श्रुतियाँ भी परमात्मा को जानने का उपदेश देती रही हैं। परमसत्ता रूप सत्य के साक्षात्कार के सम्बन्ध में अनादिकाल से प्रयत्न और प्रयोग ऋषियों द्वारा किये जाते रहे हैं। परमात्मा रूपी सत्य एक है वह चेतना के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूपों में व्यक्त होता है। विचारवान् व्यक्ति के लिए उस अन्तिम व एकमात्र सत्य की जिज्ञासा होना स्वाभाविक एवं जिज्ञासा न होना अस्वाभाविक है। केनोपनिषद् 2/5 का यह कथन इस प्रसङ्ग में अवधेय है—

**इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।**

यदि इस मानव जन्म को पाकर परमात्मा को जान लिया तब तो ठीक है और यदि इस जन्म में उसे नहीं जाना तब तो बड़ी भारी हानि है। अर्थात् यदि इस जीवन में उसे नहीं जान पाया तो अमूल्य अवसर गवाँकर अपनी महती हानि की है।

ऋग्वेद 7-11-1 में वर्णन है कि परमेश्वर को प्राप्त किए बिना जीवात्मा आनन्द से वञ्चित रहता है **'न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।'** इसी प्रकार यजुर्वेद कहता है कि उसी परब्रह्म को जानकर मोक्ष मिलता है अन्य कोई साधन नहीं है—

**तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**

यजुर्वेद 31/18

मानव जीवन से बढ़कर श्रेष्ठ कोई और योनि नहीं है। अर्थात् सभी प्राणियों में मानव तन पाने से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं हैं—महाभारत ठीक ही कहता है—**नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।** महाभारत में ही अपने हृदय रूपी गुफा में परमात्मा को खोजने का उपदेश दिया गया है—**आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहस्ते क्व गताः पिता च।** शान्तिपर्व 175/38

कठोपनिषद् 1-3-14 में ऋषि ने आवाहन किया है कि हे मनुष्यों

जागो, उठो एवं खड़े होओ। श्रेष्ठ व ज्ञानी पुरुषों से ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा तत्त्व को जानो। **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।**

छान्दोग्योपनिषद् 3/14/1 में उसी ब्रह्म तत्त्व की शान्त भाव से उपासना करने का निर्देश दिया गया है—

**सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।**

तैत्तिरीयोपनिषद् 3/1 में उसी ब्रह्म की जिज्ञासा करने का उपदेश देव वरुण ने भृगुवारुणि को किया है—**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति।**

अर्थात् ये समस्त प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, जिससे जीवन धारण करते हैं और अन्त में जिसमें लय को प्राप्त होते हैं उस ब्रह्म को तत्त्वतः जानने की जिज्ञासा करो।

योगवासिष्ठ 33/36 में उपदेश दिया गया है कि जो लोग सर्वथा मोहाच्छन्न होने के कारण संसार का विचार नहीं करते वे निरे पशु हैं एवं पुनः पुनः जन्म-मृत्यु द्वारा दुःख को प्राप्त होते हैं—

**जन्ममृत्युजरादुःखमनुयान्ति पुनः पुनः।**
**विमृशन्ति न संसारं पशवः परिमोहिताः॥**

महा0 अनुशासनपर्व अध्याय 124 में कहा गया है कि सभी शास्त्रों का आलोडन करने से यह निष्कर्ष निकला कि सदा भगवान् नारायण का ही ध्यान करना चाहिए।

महाभारत शा0 पर्व 297/32 में कहा गया है कि मनुष्य की योनि वह अद्वितीय योनि है जिसे पाकर शुभ कर्मों के अनुष्ठान से आत्मा का उद्धार किया जा सकता है—

**इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते।**
**आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः॥**

अतः अनन्यचित्त होकर सर्वव्यापी, अजन्मा भगवान् नारायण का ध्यान करने का उपदेश भीष्म ने युधिष्ठिर को दिया—

**अनन्यचेता ध्यायस्व नारायाणमजं विभुम्।**

बृहदारण्यकोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को उपदेश देते हुए कहा कि लोक, देवता, समस्त प्राणी, सत्य, तेज, धर्म, मधु सब कुछ आत्मा है और यह आत्मा ही अविनाशी और सर्वस्वरूप ब्रह्म है। यह आत्मा ही

दर्शन करने योग्य, मनन करने योग्य, श्रवण करने योग्य और ध्यान करने योग्य है। इस आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और ध्यान से सभी का ज्ञान हो जाता है—

**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।।** 2/4/5

भागवत 11-20-17 में स्वयं भगवान् ने कहा कि जो मनुष्यशरीर पाकर भवसागर से पार उतरने का प्रयत्न नहीं करता, वह आत्मघाती है—

**पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा।**

कठोपनिषद् 1/3/15 में यमराज ने नचिकेता को उपदेश दिया कि इस परमतत्त्व को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से छूट जाता है—

**निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते।।**

इसी में आगे कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व उस प्राण रूप ब्रह्म से प्रकट होकर उसी में गतिशील है। जो उस महान् भयंकर वज्र की तरह ब्रह्म को जानते हैं वे अमृतत्व को प्राप्त करते हैं—

**महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।** 2/3/2

ध्यानबिन्दूपनिषद् के पन्द्रहवें मन्त्र में परमात्मा रूपी लक्ष्य को अप्रमत्त होकर प्राप्त करने का निर्देश है—

**अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।**

उपदेशसाहस्री 17/4 में शंकराचार्य का कथन हैं कि आत्मज्ञान से बढ़कर मानव्_जीवन में और कोई लाभ नहीं है—**आत्मलाभात्परो नान्यो लाभः कश्चन विद्यते।** इसी में और कहते हैं कि **'आत्मा ज्ञेयः परोह्यात्मा यस्मादन्यन्न विद्यते। सर्वज्ञः सर्वदृक् शुद्धस्तस्मै ज्ञेयात्मने नमः।** 17/1 शंकराचार्य ने विवेकचूडामणि 4 में लिखा है कि जो लोग आत्म-मुक्ति के लिए, मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करते वे मूढ़धी, आत्महा और आत्मघाती हैं। **अतो विमुक्त्यै प्रयतेत विद्वान्, उद्धरेदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ,** आदि वचनों द्वारा शंकराचार्य ने परमात्मा को जानने को मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य निरूपित किया है।

योगवासिष्ठ में महर्षिवसिष्ठ का कहना है कि जिसके मन में कभी मोक्ष की आकाङ्क्षा नहीं जागृत होती वह मानव मन्दबुद्धि है, कुत्ता या कीड़ा है—

**संसारवासनाभावरूपे सक्ता नु यस्य धीः।**

**मन्दो मोक्षे निराकाङ्क्षी स श्वा कीटोऽथवाजनः॥**

निर्वाणप्रकरण 95/26

वसिष्ठ ने भगवान् राम को उपदेश देते हुए कहा है कि सभी प्राणी आनन्द के लिए ही प्रयत्न करते हैं।

**आनन्दायैव भूतानि यतन्ते यानि कानिचित्।**

योगवासिष्ठ 3/1/108/20

शाश्वत आनन्द, पूर्ण आनन्द, असीम आनन्द, परमानन्द, भूमा आनन्द, अजस्र व आत्यन्तिक आनन्द चूँकि परमब्रह्म परमात्मा का अनुभव ही है अतः ब्रह्म की जिज्ञासा स्वाभाविक है। ब्रह्म की जिज्ञासा न करना ही अस्वाभाविक है। मानव जीवन का वास्तविक मूल्य परमात्मा का अनुभव ही है। परमात्मा का चिन्तन, मनन, ध्यान न करना और उसको अनुभव करने का प्रयास न करना अमूल्य मानव जीवन का मूल्य न समझना है और उसे व्यर्थ गवाँ देना है।

मानवयोनि मोक्ष की प्राप्ति के लिए सीढ़ी के समान है। इस दुर्लभ योनि को प्राप्त कर जो मनुष्य स्वयं का उद्धार नहीं करता, वह नितान्त पापी व मूढ़ है—

**सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।**
**यस्तारयति नात्मानं तस्मात् पापतरोऽत्र कः॥**

गरुडपुराण धर्मकाण्ड 49/15

इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय ने एक मत से परमात्मा (ब्रह्म) को ही जानने व उन्हीं का साक्षात्कार करने को जीवन का चरम व परम लक्ष्य बताया है। जो उस परमतत्त्व का अनुभव कर लेता है वह सभी दुःखों से मुक्त होकर परमशान्ति, परमसुख व अमृतत्व प्राप्त कर लेता है। इसे ही भूमा सुख, परमानन्द व परमस्थिति कहा गया है। यही श्रेष्ठतम मानव जीवन प्राप्त करने का उद्देश्य है। ऐसे (मुमुक्षु) मनुष्यों का जीवन सफल व सार्थक है। यही जीवन का सार है।

ॐ

# परमात्मा का स्वरूप

परमसत्ता, परमात्मा के बारे में भारतीय मनीषा ने आदिकाल से अपने-अपने ढङ्ग से चिन्तन और मनन किया है। अपने अनुभव, ज्ञान व तप के आधार पर ऋषियों, मुनियों एवं तत्त्वान्वेषी महात्माओं ने परब्रह्म परमात्मा के अनेक रूप, गुण, धर्म, स्वभाव व कार्य का वर्णन करते हुए उन्हें अनेक नामों से अभिहित किया है। ब्रह्म शब्द बृह् धातु से बना है, जिसका अर्थ 'व्यापक' होता है। जो दिक्, काल तथा मन की सीमा से अपरिच्छिन्न है। ब्रह्मसूत्र के भाष्य में आदिशंकर कहते हैं—**तावद् ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावम्, सर्वज्ञम्, सर्वशक्तिसमन्वितम्। ब्रह्मशब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य नित्यशुद्धत्वादयोऽर्थाः प्रतीयन्ते, बृहतेर्धातोरर्थानुगमात्।** 1-1-1

संक्षेप में परब्रह्म के स्वरूप का विवेचन विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर नीचे किया जा रहा है—

महाभारत शान्तिपर्व 47/100 में नारायण को परब्रह्म कहा गया है '**नारायणः परं ब्रह्म नारायणपरं तपः।**' इसी प्रकार अध्याय 124 में लिखा है '**नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः।**'

महाभारत शा0पर्व 162/5 व जाबालोपनिषद् 1/9-10 में सत्य को परं ब्रह्म कहा गया है। महाभारत में ही लिखा है कि आत्मा जब प्राकृत गुणों से मुक्त हो जाता है तब वह परमात्मा कहलाता है—

**आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।**
**तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः॥**

शा0पर्व 187/23

शान्तिपर्व 201/27 में अविनाशी परब्रह्म परमात्मा को अक्षर कहा गया है। 206/14 में अविनाशी विष्णु को ही परब्रह्म, परमधाम व परमपद कहा गया है। भगवान् के जितने भी गुण सम्बन्धी नाम हैं वे परमात्मा में औपचारिक हैं। परब्रह्म परमात्मा का ऐश्वर्य नाना रूपों में दिखाई देता है। परमात्मा से यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है। परमात्मा को मन, वाणी से अगोचर

बताया गया है। **'अगोचरत्वं वचसां युक्तमेव तथा शुभे'**, महा0शा0 पर्व0 220 अध्याय। **न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाक्गच्छति** (केन 1-3) तथा ऐसा ही तैत्ति0 02/4 में **'यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह'** कह कर उसे इन्द्रियातीत बताया गया है।

वेदान्तसार में सदानन्दयोगीन्द्र ने अखण्ड, सच्चिदानन्द ब्रह्म को अवाङ्मनसगोचर बताया है। अर्थात् परब्रह्म तक वाणी और मन की पहुँच नहीं है।

इस प्रकार विश्वरूप परमात्मा सबका परमकारण है। महाभारत में भी आत्मा को ही परमात्मा बताते हुए उसे जीवात्मा से भिन्न प्रतीत होना बताया गया है।

**आत्मा तथासौ परमात्मासावन्य इव भाति। एवमात्मा स एव गच्छति। सर्वमात्मा पश्यञ्शृणोति न जिघ्रति न भाषते।**

शान्तिपर्व अध्याय 222

परमात्मा ज्योतिस्वरूप, स्वयंप्रकट एवं अविनाशी है। संसार में सबको व्याप्तकर वे स्थित हैं। उनका हाथ-पैर मस्तक और मुख सब ओर है—

**सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोक्षिशिरोमुखम्।**
**सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥**

महा0 अनु0 पर्व 14/418, महा0शा0 302/17, गीता 13/13, श्वेताश्व 3/16

परमात्मा सबके नियन्ता, कल्याणमय और सर्वेश्वर हैं। वे परब्रह्म परमात्मा अनुपम विश्वरूप बुद्धितत्त्व को अपने में लीन कर लेते हैं।

महाभारत आश्वमेधिकपर्व अध्याय 35 में ज्ञान को ही परब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म को सत्य व तप बताया गया है। वह सर्वगत व सर्वव्यापक है।

ब्रह्मविद्या विषयक सभी उपनिषदों में आत्मा व परमात्मा (बह्म) का गम्भीर व विशद चिन्तन प्राप्त होता है। अथर्वशिर उपनिषद् में लिखा है कि परब्रह्म को ॐकार, प्रणव, सर्वव्यापी, अनन्त, तारक, शुक्ल, सूक्ष्म, वैद्युत किन-किन कारणों से कहा जाता है। इसे परब्रह्म कहने का कारण यह है कि यह पर, अपर और परायण को विशालता के माध्यम से व्यापक बनाता है। परब्रह्म को एक, रुद्र, ईशान और महेश्वर भी कहा जाता है। यह परब्रह्म आपः ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्मभूः, भुवः और स्वःरूप है।

आत्मबोधोपनिषद् 4 में परब्रह्म के बारे में कहा गया है कि वह सभी

अलग-अलग गुणों के कारण प्राप्त होते हैं। ईशावास्योपनिषद् का प्रस्तुत मन्त्र इस सम्बन्ध में पठनीय है—

**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।**
**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू**
**र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥** 8

अर्थात् वह परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापी, तेजस्वी है। वह देहरहित, स्नायुरहित एवं छिद्ररहित है। वह शुद्ध एवम् निष्पाप है। वह क्रान्तिदर्शी, मनीषी, सर्वजयी व स्वयम्भू है। उसने अनादिकाल से सबके लिए यथोचित (कर्मानुसार) पदार्थों की व्यवस्था की है। मनीषी अर्थात् मन का स्वामी एवं स्वयम्भू का अर्थ स्वयंजात है।

एकाक्षरोपनिषद् 13 में भी परब्रह्म को भूः भुवः स्वः आदि लोकों में प्रतिष्ठित स्वयम्भू एवं विश्वतोमुख कहा गया है—

**त्वं भूर्भुवः स्वस्त्वं हि स्वयंभूरथ विश्वतोमुखः।**

परमात्मा को संज्ञाभेद से नारायण, वासुदेव, विष्णु और आत्मा कहते हैं। नारायण के अतिरिक्त और कोई दूसरा परात्पर तत्त्व नहीं है।

अमृतस्वरूप परमात्मा न धर्मी है, न अधर्मी। वह द्वन्द्वों से अतीत व ईर्ष्या-द्वेष से शून्य है। वह परमात्मा युगों-युगों में व्यापक है।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 19 में युधिष्ठिर ने परमात्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा है कि कुछ लोग परमात्मा को अनिर्देश्य बताते हैं। उसे नेत्रों द्वारा न तो देखा जा सकता है और न ही वाणी द्वारा उसका कोई लक्षण बताया जा सकता है। युधिष्ठिर ने इसी प्रसङ्ग में नास्तिकवादियों का भी उल्लेख किया है जो आत्मा, धर्म, परलोक व मर्यादा आदि की सत्ता नहीं मानते—

**भवन्ति सुदुरावर्ता हेतुमन्तोऽपि पण्डिताः।**
**दृढपूर्वे स्मृता मूढा नैतदस्तीतिवादिनः॥ 19/23**

भीष्म ने श्रीकृष्ण की स्तुति में उन्हे अविनाशी परमात्मा बताते हुए कहा है कि उनका न आदि है, न अन्त है। उनको न देवता जानते हैं न ऋषि। उन्हीं में सम्पूर्ण प्राणी स्थित हैं। उन्ही ने सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की है। वे विश्व के परम आधार हैं। इन्ही को नारायण देव कहते हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म व स्थूल से भी स्थूल हैं। रुद्र, आदित्य, वसु, सिद्ध, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण ये सब उनकी विभूतियाँ हैं। **शान्तिपर्व अध्याय 47**

प्रश्वास रूप अजपाजप से युक्त हर शरीर में प्रतिष्ठित रहने वाला हंस नाम से युक्त परमात्मा है।

छान्दोग्योपनिषद् अध्याय 3/14 में सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्मस्वरूप बताते हुए उसी की उपासना का निर्देश है। इसमें कहा गया है कि वह परमात्मा प्राणस्वरूप, मनोमय शरीर वाला, देदीप्यमान, सत्संकल्पवान्, आकाश के समान विराट्, सम्पूर्ण जगत् का सर्जक, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, सर्वत्र संव्याप्त, वाणीरहित तथा भ्रमशून्य है।

शाण्डिल्योपनिषद् में अथर्वा मुनि ने शाण्डिल्य को उत्तर देते हुए कहा है कि यह सत्य है कि परब्रह्म निष्क्रिय एवं अक्षर रूप है, फिर भी इस अविनाशी परब्रह्म के तीन स्वरूप सकल, निष्कल एवं सकलनिष्कल हैं। 3-1-2

जो सच्चिदानन्द, विज्ञानयुक्त, अमर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अनिर्वचनीय है वह ब्रह्म का निष्कल रूप है।

ब्रह्म के सकल स्वरूप के बारे में लिखा है कि परब्रह्म की जो सहज, अविद्या, मूल प्रकृति और माया शक्ति है वह लाल, श्वेत एवं कृष्ण रङ्ग से युक्त है। उसकी सहायता से यह कृष्ण व पिगंल रङ्ग होकर सभी का ईश्वर व नियन्ता होता है।

ब्रह्म का सकल निष्कल रूप वह होता है जब उसने इच्छा की कि मै विभिन्न रूपों में प्रकट हो जाऊँ, तब उसने तप द्वारा समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न सर्वव्यापी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र एवं समस्त देवताओं एवं सभी प्राणियों के रूप में प्रादूर्भूत हुआ। इसी को **'एकोऽहं बहु स्याम्'** छान्दो0 6-2-3 से व्यक्त किया गया है।

ब्रह्मोपनिषद् में निम्न दो मन्त्रों में परमात्मा के स्वरूप व गुण, कर्म और स्वभाव का अतीव स्पष्ट व ग्रहणीय वर्णन हुआ है—

**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।**
**कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥**
**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।**
**तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥**

ब्रह्मोपनिषद् 16,17

इस प्रकार श्रुतियों एवं स्मृतियों में परबह्म परमात्मा के अनेक नाम उसके

भूतों में स्थित है। वही नारायण ही कारणरूप विराट् पुरुष है। वे स्वयं कारण रहित परब्रह्म हैं, वे प्रणव (ओंकार) स्वरूप हैं।

आत्मोपनिषद् में परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है कि परमात्मा नाम से सम्बोधित अक्षर ॐकार है। वह योग आदि द्वारा चिन्तन किया जाता हुआ प्राप्त भी होता है, नहीं भी होता है। वह क्रियारहित व संसार रहित है। वह सूक्ष्म, निरंजन, विकारहीन, गन्धहीन, ज्ञानरहित सर्वत्र व्याप्त है। इस जगत् के रूप में वस्तुतः ब्रह्म ही परिलक्षित होता है। ब्रह्म का कोई आवरक नहीं होता। वह अन्य के अभाव के कारण अनावृत है। वह परब्रह्म न जन्म लेता है न जन्मरहित है, न बन्धन में रहता है, न मोक्ष की इच्छा वाला है और न ही मुक्त है—

**न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।**
**न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥** 31

यही निषेध **'नेह नानास्ति किञ्चन'** (बृहदा0 4-4-19) में भी परमात्मा के बारे में प्राप्त होता है।

कठोपनिषद् में ब्रह्म को ॐ शब्दवाच्य बताकर उसे श्रेष्ठ आलम्बन कहा गया है। ब्रह्म में उत्पत्त्यभाव है। इसीलिए ब्रह्म में जरा मरण की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

कठरुद्रोपनिषद् 27 में कहा गया है कि परमात्मा ज्ञान एवं सत्यस्वरूप, अद्वितीय एवं सबका आश्रय स्थल है। सबका सार व रस रूप है।

कैवल्योपनिषद् 20 में कहा गया है कि परब्रह्म अणु से भी अणु, पुरातन पुरुष, विराट् पुरुष, ईश्वर, हिरण्यमय पुरुष और शिव स्वरूप है—

**अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमहं विचित्रम्।**
**पुरातनोऽहंपुरुषोऽहमीशोहिरण्यमयोऽहं शिवरूपमस्मि॥** 20

ब्रह्मविद्योपनिषद् में लिखा है कि जिस तत्त्व में शब्द और बुद्धि विलीन हो जाती है उसे अमृत स्वरूप परब्रह्म कहा जाता है। तात्पर्य यह कि परमतत्त्व शब्द और बुद्धि से परे है।

छान्दोग्योपनिषद् 7/25/2 में बताया गया है कि परमात्मा नीचे है, परमात्मा ही ऊपर है, परमात्मा पीछे है, परमात्मा ही आगे है, वह दायीं ओर है, वह ही बायीं ओर है। परमात्मा ही सब ओर है।

महावाक्योपनिषद् में बताया गया है कि यह आदित्यरूप ब्रह्म श्वास

ब्रह्माण्ड में जो भी मङ्गलमय, पवित्र, दिव्य, ऐश्वर्ययुक्त, सत्त्वगुण सम्पन्न व तेजोमय वस्तुएं, पदार्थ, क्रियायें हैं सब निष्कर्ष रूप में परब्रह्म परमात्मा के स्वरूपान्तर्गत हैं। गीता 10/41 में भी ऐसा ही उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया है। चार वेद, पाँच प्रकार के हविष्य, तीनों काल, यज्ञ, दिव्य अक्षर सभी ब्रह्म के गुण, धर्म व रूप हैं। वे चराचर जगत् के स्वामी, संसार के साक्षी व अविनाशी परमपद हैं। गीता में भी परब्रह्म को अव्यय, निर्विकार, एकाकार, शान्त एवं अखण्ड, असीम आनन्द का भण्डार बताया गया है।

योगवासिष्ठ 6/1/2/28 में परब्रह्म के विषय में कहा गया है कि आकाश, पाताल, भूतल सर्वत्र जो भी दृश्य है, सब कुछ परब्रह्म ही है—

**पाताले भूतले स्वर्गे तृणे प्राण्यम्बरेऽपि च।**
**दृश्यते तत्परं ब्रह्म चिद्रूपं नान्यदस्ति हि॥**

श्रुतियों में ब्रह्म का स्वरूप अलग-अलग प्रसङ्गों में अलग-अलग दृष्टियों से परिभाषित किया गया है—

| | |
|---|---|
| **अन्नं ब्रह्म।** | तै0 उप0 3/2/1 |
| **मनो ब्रह्म।** | छा0उप0 2/18/1 |
| **ओमिति ब्रह्म।** | तै0उप0 शिक्षावल्ली 8/1 |
| **प्राणो ब्रह्मेति।** | तै0उप0 3/3/1, कौषीतकी उप0 2/1 |
| **आनन्दो ब्रह्मेति।** | तै0उप0 3/6/1 |
| **तपो ब्रह्मेति।** | तै0उप0 3/5/1 |
| **मनो ब्रह्मेति।** | बृह0 4/1/6 |
| **विज्ञानमानन्दं ब्रह्म।** | बृह0 3/9/7 |
| **प्राणो वै ब्रह्मेति।** | बृह0 4/1/3 |
| **विज्ञानं ब्रह्म।** | तै0उप0 2/5/1 |
| **मह इति। तद्ब्रह्म।** | तै0उप0 1/5/1 |
| **आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति।** | छान्दो 8/3/4 |
| **प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति** | (छान्दो0 4-10-5) |
| **चक्षुर्वै ब्रह्मेति।** | बृह0 4/1/4 |
| **रसो वै सः।** | तै0 2/7 |
| **सत्यं ब्रह्मेति सत्यं ह्येव ब्रह्म।** | बृहदा0 5/4/1 |
| **हृदयं वै ब्रह्मेति।** | बृह0 4/1/7 |

**ब्रह्म ह्यग्नि।** शतपथ ब्रा0 8/5/1/12
**अग्निर्देवता ब्रह्म।** तैत्ति0आर0 10-33

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋग्वेद 1/164/46 के मन्त्र के भावार्थ में लिखा है कि अग्नि, इन्द्रादि जो वेदोक्त परमात्मा के नाम हैं उन्ही की भाँति परमात्मा के हजारों नाम हैं। परमेश्वर के जितने गुण, धर्म, स्वभाव हैं उतने ही उसके नाम हैं। विभिन्न देवता उसी एक अद्वितीय परमात्मा के गौण नाम हैं, जो उनकी विभिन्न शक्तियों तथा विभूतियों के परिचायक हैं।

अध्यात्मरामायण उत्तरकाण्ड में रामगीता में भगवान् राम द्वारा परमात्मा को नित्यमुक्त, विज्ञानस्वरूप, उपाधिहीन और निर्मल बताया गया है। उसे चिद्घनरूप, आनन्दस्वरूप व निरामय कहा गया है। श्रीराम ने परब्रह्म को अद्वितीय, इन्द्रियातीत और असङ्गरूप निरूपित किया है।

निरालम्बोपनिषद् में ब्रह्म के स्वरूप का अत्यन्त सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। महत् तत्त्व, अहं, पृथ्वी, आपः, तेजस्, वायु और आकाश रूप बृहद् ब्रह्माण्डकोश वाला, कर्म और ज्ञान के अर्थ से प्रतिभासित होने वाला, अद्वितीय, सम्पूर्ण उपाधियों से रहित सर्वशक्ति सम्पन्न, आदि-अन्त रहित, शुद्ध, शिव, शान्त, निर्गुण और अनिर्वचनीय चैतन्यस्वरूप परब्रह्म कहलाता है। यही ब्रह्म जब अपनी प्रकृति के सहारे लोकों का सृजन करता है, जब बुद्धि और इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है तब वह ईश्वर कहलाता है। देहादि से परे होने के कारण ब्रह्म को ही परमात्मा कहते हैं।

गीता 5/19 में 'निर्दोषं हि समं ब्रह्म' कहा गया है। अर्थात् ब्रह्म निष्कलंक और सम है। सम दर्शन का अर्थ ब्रह्मदर्शन है। आकाश की तरह ब्रह्म व्यापक और सर्वत्र समानतया अवस्थित है।

गोपथब्राह्मण में ब्रह्म को सब परमाणुओं में सर्वथा व्यापक कहा गया है। उसमें ब्रह्म को ही भृगु, अथर्वा और प्रजापति बताया गया है—पूर्वभाग प्र0 1/4, आगे ॐ को सर्वरक्षक, सर्वव्यापक परमात्मा कहा गया है। इसी में प्र0/6 में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौ, अग्नि, वायु, आदित्य आदि को परमेश्वर का नाम बताया गया है। प्रश्नोपनिषद् 5/2 में महर्षि पिप्पलाद मुनि सत्यकाम से कहते हैं कि यह ॐकार ही निश्चित रूप से परब्रह्म और अपर ब्रह्म है। जो विद्वान् इसे इस प्रकार जानता है वह इनमें से किसी एक ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। सौम्य को सम्बोधित करते हुए पिप्पलाद मुनि कहते हैं कि हे सौम्य। जिस अविनाशी परब्रह्म में समस्त देवगण, समस्त प्राण और समस्त भूत अच्छी

तरह प्रतिष्ठित होते हैं, उसी परमात्मा में उसको जानने वाला सर्वज्ञ भी प्रविष्ट हो जाता है।

मैत्रायण्युपनिषद् 5/3 में ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त दो रूप बताये गए हैं। मूर्तरूप को असत्य और अमूर्तरूप को सत्य कहा गया है। अमूर्तरूप ब्रह्म ही यथार्थ है। वही ज्योति है, वहीं आदित्य है, वही ओंकार है, वही आत्मा है। ॐ का ध्यान करते हुए पुरुष को चाहिए कि वह आत्मा का उसके साथ संयोजन करे।

मुण्डकोपनिषद् के प्रथम मुण्डक के प्रथम खण्ड के मंत्र 9 में परब्रह्म को सभी विद्याओं का सर्वज्ञ ज्ञानमय तप कहा गया है। उसी परमेश्वर से यह विराट्स्वरूप जगत्, नाम, रूप व अन्न उत्पन्न होते हैं—

**यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।**
**तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥**

माण्डूक्योपनिषद् की गौडपादीय कारिका 36 में ब्रह्म के स्वरूप व लक्षण के बारे में कहा गया है कि वह जन्म रहित, निद्रा रहित, स्वप्नशून्य, नामरूप रहित, नित्यप्रकाशस्वरूप, सर्वज्ञ, सभी प्रकार के चिन्तन से ऊपर, अचल, निर्भय, समाधिस्वरूप, वाग्व्यापार से रहित, उपादान व उत्सर्ग रहित है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/16-17 में परमात्मा को जगत् का स्वामी, रक्षक व शासक बताया गया है। उसे इस संसार का एक और अन्तिम कारण कहा गया है। इसी में परब्रह्म परमात्मा को आदि पुरुष कहा गया है।

**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।**
**स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥**
3-19

वह परमात्मा हाथ पैर से रहित होकर भी वेगपूर्वक गमन व सभी वस्तुओं को ग्रहण करता है। आँखो से रहित होकर भी देखता व कान से रहित होकर सुनता है। वह जानने वाली वस्तुओं को जानता है। उसे ज्ञानीजन श्रेष्ठ और आदि कहते हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् का ऋषि आत्मा और परब्रह्म को एक दूसरे में समाविष्ट देखता है—

**अयमात्मा, इदममृतम्, इदं ब्रह्म, इदं सर्वम्।** (बृह0 2-5-1)

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्म का स्वरूप विधेयात्मक व निषेधात्मक दोनों प्रकार से श्रुतियों में वर्णित है। ब्रह्म के लक्षण में अनेक स्थलों पर आलंकारिक व प्रतीकात्मक शब्दावली का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार जो भी चराचर जगत् में अस्ति व नास्ति बोधक वस्तुएं, तत्त्व, तत्त्वार्थ, प्रत्यक्ष, परोक्ष है सब कुछ ब्रह्म है। ब्रह्म सब कुछ है भी और सब कुछ नहीं भी है। उसको किसी परिभाषा, स्वरूप व लक्षण, गुण, धर्म, स्वभाव में बाँधना या सीमित करना कदापि उपयुक्त नहीं है।

सभी सम्प्रदाय, पंथ, मत, शास्त्र व विचारक अपनी-अपनी रुचि व दृष्टि से परमात्मा का नाम, रूप व वैशिष्ट्य भिन्न-भिन्न प्रतिपादित करते हैं, लेकिन सबका लक्ष्य, प्राप्य, साध्य व गन्तव्य एक ही है। इस सम्बन्ध में गन्धर्वराज श्री पुष्पदन्त प्रणीत निम्न श्लोक पठनीय है—

**त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति**
**प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।**
**रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां**
**नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥**

7. शिवमहिम्नः स्तोत्र

योगवासिष्ठ में भगवान् राम को उपदेश देते हुए वसिष्ठमुनि ने कहा है कि करण, कर्म, कर्ता, जन्म, मरण-स्थिति सब कुछ ब्रह्म ही है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जगत् में दृश्यमान सब कुछ ब्रह्म ही है। वह चिन्मात्र सत्ता है। वह आनन्द भी है।

**करणं कर्म कर्ता च जननं मरणं स्थितिः।**
**सर्वं ब्रह्मैव नह्यस्ति तद्विना कल्पनेतरा॥** 3/100/30

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ब्रह्म ही परमतत्त्व है। उससे ही सबका जीवन है। वह सबमें है और उसमें सब वस्तुयें हैं। सम्पूर्ण लोक उसी से संचालित, अनुशासित व प्रेरित है। ब्रह्म अनुभव किया जा सकता है। वह अवाच्य, अनभिव्यक्त, इन्द्रियातीत है। वह अनाम, अचिह्न, अरूप है। वह प्रमाणगम्य भी नहीं है।

ॐ

# परमात्मा-अनुभूति का विषय

आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म जो कि अन्तिम सत्य व चरम सत्ता का बोधक शब्द है वह अनुभवगम्य है। उसका अनुभव करने के लिए व्यक्ति या साधक किस-किस योग, साधना, भक्ति, ज्ञान एवं तप का आश्रय ले—इसका विवेचन श्रुतियों व अन्य ग्रन्थों के आलोक में प्रस्तुत किया जा रहा है—

महाभारत शान्तिपर्व 174/51-54 में परमात्मा की प्राप्ति के लिए लिखा है कि जो धीर पुरुष किसी भी प्राणी के प्रति मन, वाणी और क्रिया द्वारा पापपूर्ण बर्ताव नहीं करता, वह परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति अपनी सभी कामनाओं को त्याग देता है वह परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है। जो किसी को भय नहीं देता तथा जिससे लोग भय नहीं खाते, जो राग-द्वेष से मुक्त है वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। जो हर्ष-शोक, प्रिय-अप्रिय, सत्य-असत्य, भय-अभय सभी द्वन्द्वों का परित्याग कर देता है, वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

अथर्ववेद 10/7/17 में लिखा है कि जो मनुष्य में ही ब्रह्म का दर्शन करते हैं वे ही विश्व में परमेष्ठी प्रजापति परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं—**ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुःपरमेष्ठिनम्।**

महाभारत शान्तिपर्व 206/25 में लिखा है कि ज्ञान के द्वारा बुद्धि को, बुद्धि के द्वारा मन को, मन के द्वारा इन्द्रिय समूह को निर्मल एवं शुद्ध करके अविनाशी परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है। महाभारत शान्तिपर्व 239/16 में बताया गया है कि विशुद्ध मन रूपी दीपक से परमात्मा प्रकाशित होता है—**मनसा तु प्रदीपेन महानात्मा प्रकाशते।**

पुरुष ज्ञानमय प्रदीप के द्वारा अपने में ही परमात्मा का दर्शन करता है। यह परमात्मा धूमरहित अग्नि के समान देदीप्यमान है। महात्मा ज्ञानी ब्राह्मण ही उसे देख पाता है।

आध्यात्मोपनिषद् 48 में कहा गया हैं कि जिसके द्वारा ब्रह्मतत्त्व जान

लिया गया है, उसकी दृष्टि संसार के प्रति परिवर्तित हो जाती है। यदि वह संसार को पूर्वभाव से ही देखता है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि उसने अभी तक ब्रह्म भाव को समझा नहीं है।

कठरुद्रोपनिषद् 14 में कहा गया है कि उस ब्रह्म को मात्र विद्या के माध्यम से जाना जाता है।

कुण्डिकोपनिषद् 20 के अनुसार जो ब्रह्म का चिन्तन करता है, वह स्वयं ब्रह्म रूप हो जाता है तथा वही शिव है।

कैवल्योपनिषद् 2 के मत से परमात्मा को श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग से जानने का प्रयास करना चाहिए।

ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में परब्रह्म को जानने के साधन का उल्लेख करते हुए कहा है कि दो विद्याएं जानने योग्य हैं। प्रथम विद्या को शब्दब्रह्म और दूसरी विद्या को परब्रह्म के नाम से जाना जाता है। शब्दब्रह्म (वेद शास्त्र) में निष्णात होने पर विद्वान् मनुष्य परब्रह्म को जान लेता है—

**द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्।**
**शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।** 17

ब्रह्मविद्योपनिषद् के अनुसार ज्ञान के माध्यम से ब्रह्म का परम स्वरूप हंस मंत्र प्राप्त किया जा सकता है। सभी देवताओं के मध्य में हंस ही परमेश्वर है। देवर्षि नारद ने शुकदेव को उपदेश देते हुए कहा है कि जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों की चिन्ता छोड़ देता है वह अक्षय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

**परित्यजति यो दुःखं सुखं वाप्युभयं नरः।**
**अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं न तं शोचन्ति पण्डिताः।।**

महा0शा0पर्व 330/17

परमात्मा को जानना व साक्षात्कार करना इतना दुरुह है कि देवाधिदेव महादेव शंकर ने उमा से कहा है कि ऋषि और देवता भी परमात्मा को प्रत्यक्ष नहीं देख पाते। जो वास्तव में परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है, वह पुनः इस संसार में नहीं आता। अर्थात् वह जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है। उसे परमात्मा के दर्शन से परमगति प्राप्त हो जाती है—महा0शान्तिपर्व। मैत्रेय्युपनिषद् के अनुसार यह अविनाशी परमात्मा मन व वाणी से नहीं जाना जा सकता। यह आदि और अन्त से रहित है। यह सतत प्रकाशित व

कल्पनातीत है। यह शान्त, स्थिर एवं गम्भीर है। कठोपनिषद् 2/3/12 में भी ऐसा ही वर्णन ब्रह्म के सन्दर्भ में प्राप्त होता है।

योगवासिष्ठ में ब्रह्मसाक्षात्कार अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए चार द्वारपाल बताए गए हैं। ये हैं—शम, सन्तोष, साधुसङ्ग और विचार।

**मोक्षद्वारे द्वारपालाश्चत्वारः परिकीर्तिताः।**
**शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधुसंगमः।।** मुमुक्षु0 11/59

इनका सेवन करने से मोक्ष रूपी राजमहल का दरवाजा खुल जाता है। विचार का अर्थ विवेक व ज्ञान है। आत्मज्ञान को ही श्रुतियाँ ज्ञान कहती हैं।

इसी ग्रन्थ में आगे श्रीराम के पूछने पर श्रीवसिष्ठ ने परमात्मा के यथार्थ ज्ञान के लिए सत् शास्त्रों का अभ्यास और सत्पुरुषों का सङ्ग रूपी दो उपाय बताया है।

तैत्तिरीयोपनिषद् 3-1-2 में तप को ब्रह्म बताते हुए तप के द्वारा ब्रह्म को जानने का प्रयास करने का उपदेश शिष्य को गुरु ने दिया है—

**तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति।**

परमात्मा का अनुभव करने के लिए तितिक्षु होना आवश्यक है। बिना तितिक्षा के ज्ञान दुर्लभ है। क्योंकि तितिक्षा ज्ञान के स्वरूप के अन्तर्गत ही है। इसी प्रकार मुमुक्षु की प्रबल भावना भी साधक के मन में होनी चाहिए।

परमात्मा का अनुभव करने के लिए साधक में अनात्मबुद्धि का समूल नष्ट होना पहली शर्त है। अनात्मबुद्धि के नाश के लिए अप्रमत्त व जितेन्द्रिय होकर शमादिषट्सम्पत्ति का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए।

बिना देहाभिमान के छूटे व्यक्ति को ज्ञान लाभ असम्भव है। बिना ज्ञान के परमात्मा लाभ अकल्पनीय है। देहाभिमान के शीघ्र नष्ट होने के लिए भगवन्नाम स्मरण, अनासक्ति की भावना का विकास व सब प्राणियों के प्रति समदृष्टि आवश्यक है। निरन्तर योगाभ्यास व मनोनाश के द्वारा व्यक्ति परमात्मा के अनुभव के लिए अर्ह बनता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार योग वह विज्ञान है, जिसके द्वारा हम चित्त को अनेक वृत्तियों का रूप धारण करने अथवा उसमें रूपान्तरित होने से रोकते हैं। जब चित्त अथवा मन संयम द्वारा सम्पूर्ण रूप से शान्त हो जाता है, तभी आत्मा का साक्षात्कार होता है।

शुकरहस्योपनिषद् 46 में लिखा है कि ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त अन्य विद्याएं नश्वर होती हैं—

**अन्यविद्यापरिज्ञानमवश्यं नश्वरं भवेत्।**
**ब्रह्मविद्यापरिज्ञानं ब्रह्मप्राप्तिकरं स्थितम्।।**

महानारायणोपनिषद् 8 के अनुसार भक्ति के विना ब्रह्मज्ञान कदापि सम्भव नहीं है—

**भक्त्या बिना ब्रह्मज्ञानं न कदापि जायते।**

भक्ति की परिभाषा शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में देते हुए लिखा है कि जो परमात्मा के प्रति पराकोटि की अनुरक्ति है वही भक्ति है—

**या परा अनुरक्तिः ईश्वरं सा भक्तिः।।**

महाभारत शा0 पर्व 298/22 में उपदेश किया गया है कि जब मनुष्य योग में सिद्धि प्राप्त कर लेता है तब वह उस परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है—

**युक्तो यदा स भवति तदा तं पश्यते परम्।**

गीता 5/26 में ब्रह्मज्ञान के लिए साधक के लिए क्षीणकल्मष, क्षिन्नद्वैध, यतात्मा, यतचेता, सर्वभूतहितेरत व क्रामक्रोध वियुक्त होना आवश्यक बताया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मज्ञान सभी शास्त्रों के अर्थों से परे है। ब्रह्म की प्राप्ति न होकर ब्रह्म के प्राप्ति का अनुभव होता है। इसीलिए ब्रह्म प्राप्ति का विषय अवाच्य होने के कारण सभी शास्त्रों में नहीं मिलता। चित्त शुद्ध होने पर अपने आप परमपद का अनुभव होने लगता है। इस प्रकार परमात्मा अनुभव का विषय है। इस अनुभव की प्राप्ति के लिए मुमुक्षु होना, शास्त्रज्ञान, गुरुवचन व चित्त की शुद्धि आवश्यक है। आत्मविषयिणी बुद्धि का विकास व परमतत्त्व में अटल एवं अगाध श्रद्धा साधक में होनी चाहिये।

विवेकचूड़ामणि 20 में शंकराचार्य ने ब्रह्म की प्राप्ति के लिए निम्न साधन बताये हैं—

1. नित्यानित्यवस्तुविवेक
2. इहामुत्रार्थफलभोगविराग
3. शमादिषट्कसम्पत्ति

4. मुमुक्षुत्व

शंकराचार्य के अनुसार साधक के मन में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का दृढ़ भाव और विनिश्चय होना चाहिए। उन्होने बहिरङ्ग साधनों को ब्रह्म प्राप्ति में अनुपयोगी बताया है।

उपदेशसार 4 में महर्षि रमण ने **'कायवाङ्मनः कार्यमुत्तमं पूजनं जपश्चिन्तनं क्रमात्'** कहा है। इसका तात्पर्य हुआ कि पूजन, जप और चिन्तन जो क्रमशः शरीर से, वाणी से और मन से किया जाता है वह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है। अर्थात् मन से किए गये पूजा, जप और चिन्तन सर्वश्रेष्ठ होते हैं।

केनोपनिषद् 4/8 में तप, दम (इन्द्रियों का नियन्त्रण) और निष्काम कर्म को ब्रह्म प्राप्ति का साधन (आधार) बताया गया है। वह ब्रह्म सभी वेदों व सत्य में प्रतिष्ठित है—

**तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्॥**

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् सुस्पष्ट रूप से ब्रह्मप्राप्ति के लिए दो महत्त्वपूर्ण उपाय बताते हैं—एक है निर्मम (ममता रहित) अर्थात् अनासक्ति व दूसरा है शान्त अर्थात् जितेन्द्रिय होना—

**निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।** 18/53

## शरीरान्तर्गत वायु व उनके कार्य

| क्रमांक | वायु का नाम | शरीर में उसकी स्थिति | उसका कार्य |
|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | 4 |
| 1 | प्राण | मुख, नासिका, गला, नाभि, पैर के दोनों अङ्गूठे, कुण्डलिनी के नीचे एवं ऊर्ध्व भाग | श्वॉस, उच्छ्वास, खाँसी |
| 2 | अपान | गुदा, लिङ्ग, जानु, पेट, वृषण, नाभि एवं कटि भाग | मल, मूत्र का निष्कासन (उत्सर्जन) |
| 3 | उदान | सभी संधि स्थान में | शरीर की उन्नति |
| 4 | समान | पैर, हाथ, समस्त शरीर | शरीर का पोषण, अन्न के रस को शरीर के अग्नि के साथ व्याप्त करना |
| 5 | व्यान | कर्णेन्द्रिय, नेत्र, कमर, गुल्फ नाक, गला एवं कूल्हे में | त्याग करना एवं स्वीकार करना |
| 6 | नाग | त्वचा, अस्थि | डकार उत्पन्न करना, उद्गिरण, चैतन्यता, वमन |
| 7 | कूर्म | त्वचा, अस्थि | पलकें झपकाना, (निमेषण) उन्मीलन, निमीलन |
| 8 | कृकर (कृकल) | त्वचा, अस्थि | भूख लगना, प्यास लगना |
| 9 | देवदत्त | त्वचा, अस्थि | आलस्य पैदा करना, जम्भाई, तन्द्रा |
| 10 | धनंजय | त्वचा, अस्थि | कफ उत्पन्न करना, शब्द उत्पन्न करना |

घेरण्डसंहिता 5/61 में नाग आदि अन्तिम पाँच को उप प्राण कहा गया है; प्राण आदि पाँच वायु को प्रमुख बताया गया है। प्राण वायु से ही जीव जीवित रहता है और वह प्राणी कहलाता है। इन पाँचों में भी प्राण और अपान वायु को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।

महाभारत शान्तिपर्व में सभी प्रकार के वायु का कार्य अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग

से वर्णित है। प्राण से प्राणी चलने फिरने का कार्य करता हैं, व्यान से व्यायाम करता है, अपान वायु ऊपर से नीचे की ओर जाती है, समान वायु हृदय में स्थित रहती है, उदान से पुरुष उच्छ्वास लेता है और कण्ठ, तालु आदि भेद से अक्षरों का उच्चारण करता है। इस प्रकार ये पाँच वायु के परिणाम हैं जो मनुष्य को चेष्टाशील व गतिशील बनाते हैं। 184/24-25

**इन्द्रियाँ व उनके विषय**

| इन्द्रिय | | | विषय | नियन्त्रण देवता |
|---|---|---|---|---|
| ज्ञानेन्द्रिय | 1 | श्रोत्र (कान) | शब्द | दिक् (आकाश) |
| | 2 | त्वक् (त्वचा) | स्पर्श | वायु |
| | 3 | चक्षु (आँख) | रूप | सूर्य |
| | 4 | रसना (जिह्वा) | रस | वरुण |
| | 5 | घ्राण (नाक) | गन्ध | अश्विनी कुमार |
| कर्मेन्द्रिय | 6 | वाक् (वाणी) | बोलना | अग्नि |
| | 7 | पाणि (हाथ) | ग्रहण करना | इन्द्र |
| | 8 | पाद (पैर) | चलना | उपेन्द्र (विष्णु) |
| | 9 | पायु (गुदा) | मलत्याग, विसर्ग | यम |
| | 10 | उपस्थ (जननेन्द्रिय) | मैथुन, आनन्द | प्रजापति |

मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है। इसे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों श्रेणियों में रखा गया है। मन सभी इन्द्रियों का सूत्रधार है।

चरकसंहिता सूत्रस्थान अध्याय 8/5-6 में कहा गया है कि पाँच इन्द्रियाँ चक्षु, श्रवण, घ्राण, रसन और स्पर्श हैं। तेज, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु इन्द्रियों के पांच द्रव्य हैं। आँख, कान, नासिका, जीभ, त्वचा ये पाँच इन्द्रियों के अधिष्ठान हैं। रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श यह क्रम से पाँचों इन्द्रियों के विषय (अर्थ) हैं। देखने की बुद्धि, सुनने की बुद्धि, गंध लेने की बुद्धि, रसज्ञान की बुद्धि, स्पर्श की बुद्धि यह क्रम से पाँच इन्द्रियों की बुद्धि हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु ये पाँच द्रव्य क्रमशः सूक्ष्मतर हैं।

इनके विषयों का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग होने से मन और इन्द्रियाँ विकृत हो जाती हैं और बुद्धि भी नाश को प्राप्त हो जाती है। समयोग होने से मन और इन्द्रियाँ ठीक प्रकृतिस्थ रहते हैं और बुद्धि भी बढ़ती है। मन और बुद्धि का अतियोग, मिथ्यायोग और अयोग विकृति (व्याधि) का कारण होता है।

# योग का लक्षण व स्वरूप

सभी भारतीय दर्शन व श्रुतियाँ एकमत से योग को मानव कल्याण का मुख्य साधन स्वीकार करती हैं। योग मानवमात्र के ऐहिक और आमुष्मिक कल्याण का हेतु है। योग इस लोक में जहाँ मनुष्य को स्वास्थ्य, ज्ञान और अनासक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है वहीं परलोक में मुक्ति व निर्वाण का दाता है। योग शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। चारों वेदों में योग शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है—

1. ऋग्वेद 1/18/7

**यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।**
**स धीनां योगमिन्वति।**

यहाँ पर योग शब्द का तात्पर्य युक्त करने से है। धीनां योग का अर्थ बुद्धि का योग है।

2. यजुर्वेद 11/2

**युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।**
**स्वर्ग्याय शक्त्या।**

यहाँ पर भी युक्तेन मनसा का भावार्थ परमेश्वर में लगे हुए (युक्त) मन से है। अर्थात् ऐसा मन जो परमात्मा की अर्चना, आराधना में लीन है। परमात्मा में संपृक्त मन से तात्पर्य है। योगारूढ़ व्यक्ति का मन युक्तमन होता है।

3. सामवेद उत्तरभाग 1/2/11/1, अथर्ववेद 19/24/7

**योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये।**

यहाँ पर योग का अर्थ योगानुष्ठान या योग कर्म से है।

4. अथर्ववेद 19/1/8/2

**अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।**
**योगं प्र पद्ये क्षेमं च प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु।।**

यहाँ पर योग का अर्थ केवल अलभ्य वस्तु की प्राप्ति से है।

इस प्रकार योग शब्द जिस भावार्थ में आज प्रचलित व मान्य है लगभग उसी भावार्थ में वैदिक काल में भी प्रयुक्त होता था। इस आधार पर हम यह निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि वर्तमान रूप में स्वीकृत योग का जन्म स्थल भारत ही था।

योग शब्द की निष्पत्ति युज् धातु से हुई है। अष्टाध्यायी के गणपाठ में युज् धातु तीन वार प्रयुक्त हुई है।

1. दिवादिगणी 'युज्' धातु का अर्थ समाधि है।

**युज् समाधौ**

यह अकर्मक—अनिट् है। इसका रूप आत्मनेपदी में चलता है—युज्यते युज्येते युज्यन्ते।

2. रुधादिगण में 'युज्' धातु का अर्थ संयोग है।

**युजिर् योगे**

यह सकर्मक—अनिट् हैं। यह उभयपदी धातु है—युनक्ति युंक्तः युञ्जन्ति। युंक्ते युञ्जाते युञ्जते।

3. चुरादिगण में 'युज्' धातु का अर्थ निग्रह या नियमन से है।

**युज् संयमने**

यहाँ युज् संयमने 'चुरादिगणी' है। यह सकर्मक, उभयपदी है। इसका रूप बनता है—योजयति व योजयते।

सभी में युज् धातु में घञ् प्रत्यय करने पर योगः शब्द ब्रनता है। घञ् प्रत्यय में ज को ग आदेश हो जाता है।

सर्वांगीण रूप से विचार करने पर हम कह सकते हैं कि योग शब्द का अर्थ प्रसङ्गभेद से निम्न प्रकार से विविधग्रन्थों में प्राप्त होता है—

1. समाधि; 2. संयोग, मिलन, जुड़ना, एकत्व, अभेद; 3. युक्ति, उपाय; 4. संयमन, नियमन, निग्रह, निरोध; 5. सन्नहन, सन्नद्धहोना; 6. अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति, लब्धि; 7. कार्य, व्यापार; 8. नियम, विधि; 9. परिणाम; 10. साधन, पद्धति; 11. ध्यान; 12. सङ्गति

सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में उपर्युक्त अर्थों को लेकर भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में योग का स्वरूप व लक्षण इस प्रकार वर्णित है—

1. **समत्वं योग उच्यते** -गीता 2/48

जय-पराजय, हानि-लाभ, सिद्धि-असिद्धि में समभाव रखना ही योग है।

सभी प्राणियों में व सभी परिस्थितियों में नित्य समभाव रखना चाहिए। समता श्रेष्ठ पुरुष का लक्षण है।

2. **योगः कर्मसु कौशलम्।** गीता 2/50

सम बुद्धि होकर निष्काम कर्मों में कुशलता ही योग है।

निष्कामकर्म बन्धन का कारण नहीं बनते। इसमें कर्तापन का अभाव होता है।

3. **योगो निःस्पृहता स्मृता।**

निस्पृह (निष्काम, एषणाविहीन) होना ही योग है।

उल्लेखनीय है कि कामनायें व एषणायें, बन्धन का कारण बनती हैं। मुख्य रूप से तीन एषणायें वित्तैषणा, पुत्रैषणा व लोकैषणा होती हैं।

4. **यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।** गीता 6/2

जो संन्यास (मन, बुद्धि, शरीर व इन्द्रियों द्वारा सभी कर्मों में कर्तापन का अभाव व उनके फल का त्याग) है वही योग है।

यहाँ योग का भावार्थ परब्रह्म से युक्त हो जाने से है।

5. **तं विद्याद्दुःखंसयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।** गीता 6/23

जो दुखः रूप संसार के संयोग से रहित है वह योग है।

6. **योगात् संजायते ज्ञानं योगो मय्येकचित्तता।**

सूर्यपुराण। 9/23

योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और योग मेरे में (ईश्वर में) चित्त की एकाग्रता है।

तुलनीय गीता 18/65 **'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'**।

7. **मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते।** महोपनिषद् 5/42

मन के पूर्णतया शान्त होने के उपाय को योग कहा जाता है।

यहाँ योग उपाय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मनोलय (अमनस्क) ही मन का शान्त होना है।

8. **न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले।**
**ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः।।** देवीभागवत 7/35/2

योग न तो आकाश में है, न तो पृथ्वी पर और न पाताल में ही। जीवात्मा और परमात्मा की एकता साधन करने को ही योग कहते हैं। यहाँ पर योग से एकत्व अभिप्रेत है।

9. **आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।**
**मनश्चेन्द्रियाणां च संयोगो योग उच्यते।।** ब्रह्मपुराण 235/28

आत्मज्ञान के प्रयत्नभूत मन की जो विशिष्ट गति (स्पन्दन) है, ऐसे मन और इन्द्रियों का संयोग (एकाग्रता) ही योग है।

10. **तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।**

श्रीविष्णुपुराण 6/7/31

तस्या अर्थात् उसका (मनोगति का) ब्रह्म के साथ संयोग होना ही योग कहलाता है।

मन का ब्रह्म के साथ संयोग तभी होगा जब मन पर विजय प्राप्त कर लिया गया हो।

**योगवासिष्ठ 5/78/8**

11. **योगस्तु वृत्तिरोधोहि।** शाण्डिल्योपनिषद् 1/7/24

चित्त वृत्तियों का रोध (अवरुद्ध होना) ही योग है।

12. **पुंप्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्युदितो यया।** भोजवृत्ति-3

पुरुष और प्रकृति का वियोग (पृथक्त्व) ही योग है।

प्रकृति से पृथक् होकर ही पुरुष स्वरूप (कैवल्य) में स्थित होता है।

तुलनीय—महाभारत शान्तिपर्व 304/7

**सा ह्यस्य प्रकृतिर्दृष्टा तत्क्षयान्मोक्ष उच्यते।**

अर्थात् जीव की प्रकृति का कारण कलारूप प्रकृति है।

उसके संयोग का क्षय होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

13. **संसारोत्तरणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते।**

योगवासिष्ठ 6/1/13/3

संसार सागर को पार करने की युक्ति ही योग कही जाती है।

यहाँ पर योग युक्ति/उपाय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

14. **योगस्तद्वृत्तिरोधी हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्।**

योगवासिष्ठ 5/78/8

चित्त वृत्ति का निरोध ही योग है। सम्यक्दर्शन ज्ञान है।

चित्त का प्रपञ्च ही संसार है। अतः सांसारिक विलास-प्रपञ्चों से चित्त को हटाना ही योग है।

15. **अवेदनं विदुर्योगं चित्तक्षयमकृत्रिमम्।**

अक्ष्युपनिषद् 2/3

अवेदन अर्थात् आत्मा और परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का आभास न हो, इसी का नाम योग है। यही यथार्थ चित्तक्षय है।

समस्त प्राणियों में एक, शान्त, शाश्वत, अज, अनन्त, अव्यय, नित्य, कूटस्थ, चिद्रूप आत्मा को देखना सम्यगवेक्षण हुआ।

16. **समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः।**
**संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः॥**

याज्ञवल्क्यस्मृति, वसिष्ठसंहिता

जीवात्मा व परमात्मा की समतावस्था समाधि है और जीवात्मा व परमात्मा का संयोग योग कहा जाता है।

उपर्युक्त संयोग एकत्वबुद्धि (अद्वैतभाव) से ही सम्भव है।

17. **ज्ञानयुक्तयमाद्यष्टाङ्गयोग उच्यते।** मण्डलब्राह्मणोपनिषद् 1/2

तत्त्वज्ञान सहित यम-नियम आदि को अष्टाङ्ग योग कहा जाता है।

तत्त्वज्ञान से तात्पर्य आत्मा व परमात्मा में अभेद दर्शन है। इसके लिए यम, नियम आदि अष्टाङ्गयोग का पालन अपरिहार्य है।

यम पाँच व नियम भी पाँच हैं। कुछ ग्रन्थों में इनकी संख्या 10-10 बताई गयी है।

18. **तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरमिन्द्रियधारणाम्।**

कात्यायनस्मृति 2/10, कठोपनिषद् 02.03.11

इन्द्रियों, मन एवं बुद्धि की स्थिर धारणा का नाम ही योग है।

इन्द्रियों की स्थिरता के लिए मन पर नियन्त्रण अपरिहार्य है, क्योंकि मन सभी इन्द्रियों का स्वामी व सूत्रधार है।

19. **सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।** योगशास्त्र

सभी चिन्ताओं का परित्याग कर देने पर व्यक्ति के मन की लाभावस्था ही योग है।

परमात्मा में एकाग्रता, एकचित्तता व एकनिष्ठता होने पर व्यक्ति सर्वचिन्ताविमुक्त हो जाता है।

20. **सर्वार्थज्ञाननिष्पत्तिरात्मनो योग उच्यते।** लिङ्गपुराण 8/3

आत्मा में उद्‌भूत सभी विषयों का ज्ञान ही योग है।

21. **परो हि योगो मनसः समाधिः।** भागवत 11/23/46

मन का समाहित और शान्त होना ही परम योग है।

यहाँ पर योग समाधि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

22. **वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि।**
**एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते।।**

**दक्षस्मृति 7/15**

मन को वृत्तियों से हटाकर जीव को परमात्मा में एकीभाव को प्राप्त कराकर मनुष्य जीवन मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है, यही मुख्य योग है।

23. **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** पातञ्जलयोगसूत्र समाधिपाद 2

चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है।

वृत्ति का अर्थ है व्यापार, कार्य। चित्त की पाँच वृत्तियाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति हैं।

24. **योगसन्न्यस्तकर्माणम्।** गीता 4/41

कर्मों में सन्न्यस्त (निष्काम कर्म करना) ही योग है।

कर्म संन्यास तभी सम्भव है जब निष्काम कर्म किया जाए व कर्मफल का हेतु न बना जाय। अर्थात् कर्तृत्व का भाव न आए। संन्यस्त का तात्पर्य कर्मों को परमात्मा में अर्पण करना है।

25. **अक्षरं सर्वभूतस्थं तद्‌विष्णोः परमं पदम्।**
**तत्प्राप्तिसाधनं योगः कर्म च श्रुतिचोदितम्।।**

अहिर्बुध्न्य संहिता 31/11-12

अक्षर एवं सर्वभूतस्थ आत्मा रूप विष्णु के परमपद स्वरूप को प्राप्त

करने के साधन को योग कहा जाता है। वह कर्म वेदविहित है।

योग का लक्ष्य ही है परमात्मा का ज्ञान अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति।

यहाँ योग का अर्थ साधन, उपाय, युक्ति है।

26. **परमात्मात्मनोर्योऽयमविभागः परंतप।**
**स एव तु परो योगः समासात्कथितस्तव।।**

-स्कन्दपुराण माहेश्वर खण्ड

परमात्मा और आत्मा का जो संयोग (अविभाग) है वह संक्षेप में परम योग कहा गया है।

यहाँ योग का अर्थ ऐक्य भाव से है।

27. **अप्राप्तस्य प्रापणं योगः।**

अप्राप्ति की प्राप्ति ही योग है।

28. **योऽपानप्राणयोर्योगः स्व रजोरेतसोस्तथा।**
**सूर्यचन्द्रमसोर्योगो जीवात्मपरमात्मनोः।**
**एवं तद् द्वन्द्वजालस्य संयोगो योग उच्यते।।** योगबीज

प्राण और अपान का, अपने रज. और वीर्य का, सूर्यनाड़ी व चन्द्रनाड़ी से प्रवाहित होने वाले प्राणवायु का, जीवात्मा और परमात्मा का और इस प्रकार विविध द्वन्द्वों का मिलन करा देना योग है।

यहाँ योग संयोग, मिलन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

29. **विषयेषु प्रविष्टानामिन्द्रियाणां मुनीश्वर।**
**निग्रहो योग इत्युक्तः कैश्चिदत्र महर्षिभिः।।** सिद्धराजयोग 4

विभिन्न इन्द्रियों का उनके विषयों से निग्रह योग कहा जाता है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ व मन (उभयकोटिक) कुल ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। दस इन्द्रियाँ मन के माध्यम से अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ होती हैं।

30. **इति चान्ये योगिभिश्च स एवमभिवर्ण्यते।**
**निगृहीतस्य मनसः सम्बन्धो महता सह।।** सिद्धराजयोग 6

निगृहीत मन का महत् (परमात्मा) से सम्बन्ध योग कहलाता है।

महत् के लिए तुलनीय कठोपनिषद् 2/20 'अणोरणीयान् महतो महीयान्'।

31. **अथ तद्दर्शनाभ्युपायो योगः।**

उस परमात्मा के दर्शन (ज्ञान) का उपाय योग है।

32. **तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।**

पातञ्जल योगसूत्र 2/1

तप, स्वाध्याय और ईश्वर में प्रपत्ति क्रियायोग है।

33. **संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।**

श्रीवाचस्पतिमिश्र, अहिर्बुध्न्यसंहिता 31/15

जीवात्मा और परमात्मा का संयोग योग कहा जाता है।

34. **सार्वभौभश्चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणो योगः।** श्रीवाचस्पति मिश्र

सर्वत्र, सार्वकालिक और सभी सांसरिक वस्तुओं के प्रति चित्तवृत्ति का निरोध होना ही योग का लक्षण है।

चित्त की एकाग्र और निरुद्ध भूमि में वृत्तियों का जो निरोध है वह योग कहा जाता है। चित्त की पाँच स्थितियाँ/भूमियाँ क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध हैं।

35. **निवर्त्तते तदुभयं वशित्वञ्चोपजायते।**
**सशरीरस्य योगज्ञास्तं योगमृषयो विदुः॥**

चरकसंहिता शारीरस्थान 1/139

योगावस्था में सुख-दुःख की निवृत्ति हो जाती है और वशित्व उत्पन्न हो जाता है।

सभी इन्द्रियों एवं मन को वश में कर लेना ही ऋषियों द्वारा योग कहा गया है।

36. **योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्त्तनम्।**
**मोक्षो निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्त्तकः॥**

चरकसंहिता शारीरस्थान 1/137

योग और मोक्ष में किसी प्रकार के दुःखादि भाव नहीं उत्पन्न होते। मोक्ष तो निःशेष रूप से दुःख की निवृत्ति ही है और योग द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

37. **आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।**

**तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।।**

नारदीयपुराण 47/7, श्रीविष्णुपुराण 6/7/31

आत्मज्ञान के प्रयत्नभूत यम, नियम आदि की अपेक्षा रखने वाली जो मन की विशिष्ट गति (स्पन्दन) है उसका ब्रह्म के साथ संयोग (युक्त) होना ही योग कहलाता है।

38. **योगोपायमतो वक्ष्ये संसारविनिवर्तकम्।**
**योगो ज्ञानं विशुद्धं स्यात्तज्ज्ञानं मोक्षदं विदुः।।** नारदीयपुराण

संसार में मुक्ति दिलाने वाले योग को बता रहा हूँ। विशुद्ध ज्ञान ही योग है। वही ज्ञान मोक्षदाता कहा जाता है।

39. **तयोरभेदविज्ञानं योग इत्यभिधीयते।** नारदीयपुराण 33/57

ब्रह्म और आत्मा में अभेद बुद्धि रखना ही योग है।

अहं ब्रह्मास्मि का घोष सभी उपनिषदो में प्राप्त होता है। यही ब्रह्म व आत्मा में अद्वैतावस्था मानी गई है।

40. **इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद् दिवानिशम्।** मनुस्मृति 7/44

इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना ही योग है। रात दिन इसका प्रयास करना चाहिए।

तुलनीय् गीता 2/68 इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

41. **श्रुताद् हि प्रज्ञोपजायते, प्रज्ञाया योगो योगादात्मवत्तेति।**

कौटिल्य का अर्थशास्त्र 2/4

शास्त्र श्रवण से बुद्धि का विकास होता है। प्रज्ञा से योग और योग से आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

आत्मज्ञान से तात्पर्य मोक्ष से है।

शास्त्रों में वर्णित है कि बिना तत्त्वज्ञान के मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता।

42. **अलभ्यलाभो योगः स्यात् क्षेमोपलब्धस्य पालनम्।**

याज्ञवल्क्यस्मृति 1/100

अप्राप्त को प्राप्त करना योग है और प्राप्त का संरक्षण करना क्षेम है।

43. **मय्येकचित्तता योगो वृत्त्यन्तरनिरोधतः।** कूर्मपुराण उ0वि0 11/12

अन्य विषयों से वृत्तियों का निरोधकर मेरे में (अर्थात् परमात्मा में) एकचित्तता (एकाग्रता) ही योग है।

परमात्मा की प्राप्ति अर्थात् मोक्ष ही जीवन का परमलक्ष्य (पुरुषार्थ) है। यह योग से ही सम्भव है।

44. **विविक्तात्मपरिज्ञानं योगात्संजायते यतः।**
**स योगो योगिभिर्गीतो योगनिर्धूतपातकैः॥**

योगसार—प्राभृत 9/10

जिस योग में ध्यान से कर्मकलंकमुक्त आत्मा का ज्ञान होता है वह योगियों द्वारा योग कहा गया है।

आत्मा नित्यशुद्धबुद्ध होता है। आत्मा ज्ञान ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

45. **योगः समाधिरुदितो वृत्तिनिरोधः सचित्ततत्त्वस्य।**

योगरत्नावली 1/3

चित्त तत्त्व की वृत्तियों में निरोध रूपी समाधि को योग कहा जाता है।

46. **मय्येकचित्तता योग इति पूर्वं निरूपितम्।**
**साधनान्यष्टधा तस्य प्रवक्ष्याम्यधुना शृणु॥** ब्रह्मपुराण 12/1

पूर्व में यह कहा गया है कि ईश्वर में एकनिष्ठता ही योग है। इसके आठ साधन (अष्टाङ्गयोग) हैं।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधि ये योग के आठ अङ्ग हैं।

47. **आत्मौपम्येन सर्वत्र योगस्तु समदर्शनम्।** गीता 6/32 पर भाष्य

अपनी भाँति सभी भूतों में समान आत्मा देखना योग है।

अर्थात् 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का भाव रखना योग है।

48. **विषयेभ्यो निवर्त्याभिप्रेतेऽर्थेमनसोऽवस्थापनं योगः।** देवल धर्मसूत्र

विषयों से हटाकर मन को अभिप्रेत अर्थ में स्थापना योग है।

अभिप्रेत अर्थ से तात्पर्य अभीप्सितार्थ से है, और वह है आत्मोपलब्धि (आत्मज्ञान)

49. **चतुर्वर्गेऽग्रणी मोक्षो योगस्तस्य च कारणम्।**
**ज्ञान-श्रद्धान-चारित्रं रूपं रत्नत्रयं हि सः॥** योगशास्त्र 1/15

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष अग्रणी है। योग उस मोक्ष के कारण को कहते हैं। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक्

चरित्र रूप रत्नत्रय ही योग है।

इस प्रकार जिन हेतुओं से मोक्ष प्राप्त हो, उन्हें योग कहते हैं।

50. **तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः स योगः।**

वैशेषिकदर्शन 5/2/16

अर्थात् मन का आत्मा में स्थित होने पर मन के कार्य का अनारम्भ होना योग है, जो शरीर के दुःख के अभाव का हेतु है।

तात्पर्य यह है कि मन का कार्य ही दुःख का कारण हैं। मन जब कार्य करना बन्द कर देता है अर्थात् शान्त हो जाता है तब मन का शान्त होना ही योग है। योग से दुःख का अभाव हो जाता है। अभ्यास, वैराग्य द्वारा गन्धादि विषयों में मानस वृत्ति के अभाव से दुःखाभाव होना ही योग है।

51. **एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः।**
**सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा॥**

श्रीमद्भागवत 11/13/14

मेरे शिष्य सनकादि ऋषियों ने योग का यही स्वरूप बताया है कि साधक अपने मन को सभी ओर से खींचकर साक्षात् मुझमें ही पूर्ण रूप से लगा दे।

इसमें मन को विषयों से खींचकर परमात्मा में एकाग्र करना ही योग कहा गया है।

52. **प्रवृत्तिलक्षणो योगः ज्ञानं संन्यासलक्षणम्।**

महाभारत आश्वमेधिकपर्व 43/2

योग का अर्थ प्रवृत्ति मार्ग और ज्ञान का अर्थ संन्यास या निवृत्ति मार्ग है।

यहाँ योग शब्द प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् कर्मयोग के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

53. **योगं सम्यग्दर्शनोपायं कर्मानुष्ठानम्।** शांकरभाष्य गीता 4/42

आत्मा के सम्यक् दर्शन का उपायभूत कर्मानुष्ठान ही योग है। यहाँ योग उपाय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

54. **योगः समाधिः।** योगसूत्र 1/1 पर व्यास भाष्य

अर्थात् समाधि योग है। एकाग्र और निरुद्ध नामक चित्त की भूमिका में

होने वाली समाधि को योग कहा जाता है।

55. **इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रत्याहृत्येन्द्रियेभ्यो मनः प्रत्याहृत्य साक्षात्कर्तव्ये वस्तुनि मनः प्रणिधानं योगः।**

नीलकण्ठी

इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच कर व मन को इन्द्रियों से वापस खींच कर मन को अपने लक्ष्य वस्तु में लगाना योग है।

56. **योगो युक्तिः समाधानम्।** तैत0उप0 ब्र0व0 2/5 शांकरभाष्य

योग समाधि की युक्ति है।

इस प्रकार उपर्युक्त योग विषयक परिभाषाओं एवं लक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि अलग-अलग ऋषियों, आचार्यों एवं शास्त्रकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से योग के अलग-अलग अर्थ ग्रहण व व्यक्त किए हैं जैसे संयोग, हेतु, ध्यान, समाधि, साधन, सङ्गति, निरोध, युक्ति, एकत्व, अभेद आदि। लेकिन सभी का लक्ष्य एक है और वह है आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन, ऐक्य व अभेद की अनुभूति।

ॐ

# ॐकार

सृष्टि संरचना के समय प्रजापति ने लोकों का तत्त्व जानने एवं उसे ग्रहण करने के उद्देश्य से अतिशय कठोर तप किया। उनके तप के प्रभाव से लोकों से ऋक्, यजुः एवं साम यह त्रयी विद्या उत्पन्न हुई। पुनः उस त्रयी से भूः, भुवः एवं स्वः ये तीन अक्षर निकले। इन तीनों अक्षरों का सार ॐकार को उन्होंने ही तपश्चर्या से प्राप्त किया। ॐ वेद का आदि अक्षर है। ॐकार से सम्पूर्ण वाक् व्याप्त है। ॐकार ही सम्पूर्ण जगत् है। ॐ ही सम्पूर्ण आकाश है। ॐकार को ब्रह्मवेत्ताओं ने अद्वितीय, अविनाशी ब्रह्म कहा है। ॐकार रूप ब्रह्म में ब्रह्मा, विष्णु, महेश (त्रिदेव); भूः, भूवः और स्वः (त्रिलोक); ऋक्, यजुष् और साम (वेदत्रयी); तीन अग्नियाँ (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय); तीन पूर्ण मात्रा (अ, उ, म); एक अर्ध मात्रा (अनुस्वार) समाहित हैं। एकाक्षरोपनिषद् 6 के अनुसार परमात्मा परमाक्षर (ॐ) रूप में विद्यमान है।

श्री शंकराचार्य ने पञ्चदशी दीपप्रकरण में ओम् की महिमा के सम्बन्ध में लिखा है 'य उपास्ते त्रिमात्रेण ब्रह्मलोके स नीयते'। वेदों में प्रणव की उपासना प्रायः निर्गुण ही कही गई है किन्तु कहीं-कहीं प्रणवोपासना की सगुणता का भी उल्लेख मिलता है।

उपनिषदों में कहा गया है कि ॐकार से जो व्यक्ति अनभिज्ञ है उसे ब्राह्मण नहीं कहा जाता। ॐकार से देवों की उत्पत्ति, ॐकार से स्वर की उत्पत्ति और ॐकार से त्रिलोक के सभी स्थावर जङ्गम की उत्पत्ति हुई है— ध्यानबिन्दूपनिषद् 16। आदि काल से ॐकार ही सभी मुमुक्षुओं का लक्ष्य रहा है। ॐ ही ऋषियों, मुनियों एवं ज्ञानियों की जिज्ञासा, ज्ञान, ध्यान और तप का केन्द्र बिन्दु रहा है। ॐ का जप सबसे बड़ा जप बताया गया है। ॐकार उच्चारण करते हुए ब्रह्म रूपी अग्नि में ही आत्मा की आहुति दी जाती है। यह ॐकार ही सभी श्रेष्ठ यज्ञों से भी उत्तम ज्ञानयज्ञ कहा गया है। यह विश्व ॐकार से धारण किया जाता है।

गीता 10/33 में **'अक्षराणामकारोऽस्मि'** कहकर भगवान् ने अकार की महत्ता बताई है। गीता में भगवान् कहते हैं—

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।**
**यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।**

**8/13**

अर्थात् जो पुरुष ॐ इस एकाक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्यागता है, वह पुरुष परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होता है। भगवान् ने अपने को साक्षात् ॐकार ही बता दिया है—

**वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च।।** गीता 9/17

ऋग्वेद 1/114/39 में कहा गया है कि वेदों का सार ॐकार है। छान्दोग्य उपनिषद् 2/22/3 में ॐकार को सम्पूर्ण वाक् बताया गया है। वायुपुराण 30/229 में ॐकार के बारे में वर्णन है कि ब्रह्मवादी परमात्मा को ऋक्, साम और ॐकार कहा करते हैं। वायुपुराण 61/108 में प्रणव अर्थात् ॐकार के बारे में लिखा है—

**प्रणवावस्थितं भूयो भूर्भुवः स्वरिति स्मृतम्।**
**ऋग्यजुः सामाथर्वाणं यत्तस्मै ब्रह्मणे नमः।।**

इसी पुराण 20/5-10 में लिखा है कि ॐकार रूपी एकाक्षर ब्रह्म बुद्धिरूपी गुहा में स्थित है। वही परम पद है। ॐकार ही तीनों वेद, तीनों लोक और तीनों अग्नि है। यह त्रिविक्रम के तीनों पाद ऋक्, यजुः और साम है। ॐकार में चार मात्राएं हैं। ॐकार से युक्त होने वाला योगी ब्रह्म सारूप्य प्राप्त करता है। इसी पुराण के 61वें अध्याय में ॐकार को चराचर जगत् की उत्पत्ति, तथा प्रलय का कारण बताया गया है। इसे महान् से भी महत्तम, परमगुह्य व सुब्रह्म बताया गया है। इसे अमृत, शाश्वत, स्वयम्भू एवं प्रधान कहा गया है।

बृहन्नारदीयपुराण 1/51/10 में ॐकार का वर्णन करते हुए लिखा है—

**ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।**
**कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ।।**

अर्थात् पहले ओंकार व अथ शब्द ब्रह्मा के कण्ठ से उद्गरित हुए। इसी में आगे कहा गया है कि ॐकार में अकार ब्रह्मा का रूप, उकार विष्णु का

रूप, मकार रुद्र का रूप और अर्द्धमात्रा परमात्मा का रूप है—

**अकारं ब्रह्मणो रूपमुकारं विष्णुरूपवत्।**
**मकारं रुद्ररूपं स्यादर्धमात्र परात्मकम्।।** बृहन्नारदीयपुराण

प्रश्नोपनिषद् एवम् माण्डूक्योपनिषद् में ॐकार की मात्रिक उपासना का विस्तृत वर्णन है।

प्रश्नोपनिषद् में पर ब्रह्म और अपर ब्रह्म को ॐकार कहा गया है।

**परं चापरं ब्रह्म यदोङ्कारः।** प्रश्नोपनिषद् 5/2

सभी वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों व पुराणों में अनेकशः ॐकार की महत्ता प्रख्यापित है। वेदाध्ययन के पूर्व ॐ का उच्चारण करना आवश्यक बताया गया है। बिना ॐ का उच्चारण किए वेदाध्ययन का पूर्ण फल नहीं प्राप्त होता—

**ॐकारः पूर्वमुच्चार्यस्ततो वेदमधीयते।**

छान्दोग्य उपनिषद् शांकरभाष्य 1/1/1 में कहा गया है—

**ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधायकं नेदिष्ठम् तस्मिन् हि प्रयुज्यमाने स प्रसीदति प्रियनाम ग्रहण इव लोकः।**

अर्थात् ओम् यह परमात्मा का अति सन्निहित नाम है। इस नाम के लेने से वे उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं जैसे प्रिय नाम लेने से लोग प्रसन्न होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि ओम् उच्चारण परमात्मा को प्रसन्न करने का सर्वाधिक प्रभावपूर्ण माध्यम है। इन तीन अक्षरों में सब कुछ विद्यमान है। यही सत्य स्वरूप है। यही शाश्वत परमपद है।

इसी में आगे कहा गया है कि जो ज्ञानी इस अक्षर ब्रह्म ॐ की उपासना करता है, वह अमृत और अभयरूप स्वर ब्रह्म ॐ में प्रविष्ट करता है। जिस प्रकार उसमें प्रविष्ट होकर देवगण अमरत्व को प्राप्त हुए उसी प्रकार वह भी अमरत्व को प्राप्त होता है।

भोजवृत्ति में कहा गया है कि भक्त जिसकी उत्तमता से स्तुति करता है वह प्रणव कहलाता है और वह ओऽम् ही है—

**प्रकर्षेण नूयतेस्तूयतेऽनेनेति नौति स्तौति वा प्रणवः ॐकारः।**

ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में ॐकार इन तीन अक्षरों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि शब्दब्रह्म (प्रणव) और परब्रह्म दोनों ही अक्षर हैं। विद्वान् यदि शान्ति चाहते हों तो उन्हें उस अक्षर रूप परब्रह्म का ही चिन्तन करना चाहिए।

सूर्यपुराण 24/35-36 में कहा गया है कि जो ऊर्ध्व भाग में उन्नमित कराता है, वही ओङ्कार प्रकीर्तित हुआ। वह ॐ प्राणों का नयन किया करता है इसी कारण उसको प्रणव परिभाषित किया गया है।

आत्मबोधोपनिषद् में तीन अक्षरों वाले ॐकार को प्रणव का स्वरूप बताया गया है। इसका जप करने से योगीजन सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। भगवान् नारायण परब्रह्म हैं और वे ही ॐकार स्वरूप हैं—

**सर्वभूतस्थमेकं नारायणं कारणपुरुषमकारणं परं बह्योम्।** 4

मार्कण्डेयपुराण 42/14-15 में भी उपर्युक्त कथन ओंकार के बारे में प्राप्त होते हैं। पुराणकार के अनुसार अक्षर ब्रह्म ही ॐकार कहा जाता है। जो इस श्रेष्ठ को सम्यक् जान लेता है तथा इसका ध्यान करता है वह त्रिविध बन्धनों (आधिदैविक, आधिभौतिक व आधिदैहिक) से मुक्त होकर एवं भवसागर के आवागमन चक्र से मुक्त होकर ब्रह्म साक्षात्कार कर लेता है और परमात्मा में विलीन हो जाता है।

महाभारत शान्तिपर्व 268/35 में कहा गया है कि ॐ यह वेद का मूलकारण है। यह जिस यज्ञ में प्रयुक्त होता है उसी का यज्ञ साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न होता है।

श्रीविष्णुपुराण में लिखा है कि 'सत्' पद जिसका वाचक हैं वह ॐ अक्षर आपका परम स्वरूप है।

श्रीमद्भागवत 12/6/39-41 में कहा गया है कि एकाग्रचित्त होने पर ब्रह्मा जी के हृदयाकाश से विलक्षण अनाहत नाद प्रकट हुआ। उसी से अ, उ और म कार रूप तीन मात्राओं से युक्त ॐकार प्रकट हुआ। ॐकार स्वयं अव्यक्त और अनादि है। यह परमात्मा स्वरूप होने से स्वयंप्रकाश भी है। भगवान्, ब्रह्म या परमात्मा सभी के स्वरूप का बोध ॐकार द्वारा ही होता है। ॐकार अपने आश्रय परमात्मा परब्रह्म का साक्षात् वाचक है। यह सम्पूर्ण मन्त्र, उपनिषद् और वेदों का सनातन बीज है।

इसी में भगवान् कहते हैं कि मै वेदों का अभिव्यक्त स्थान हिरण्यगर्भ हूँ और मन्त्रों में तीन मात्राओं वाला ॐकार हूँ—

**हिरण्यगर्भो वेदानां मन्त्राणां प्रणवस्त्रिवत्।।** 11-16-12

योगशास्त्र में ॐ को ईश्वर का बोधक शब्द बताया गया हैं। ॐ के जप के साथ ॐ को पिता और अपने को पुत्र समझना ऐसी भावना से उसका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है —योगसूत्र 1/28

माण्डूक्योपनिषद् 1 में भी ॐ को ब्रह्म बताया गया है। ॐ यह अक्षर (अविनाशी) है, उसकी महिमा प्रकट करने वाला यह विश्व ब्रह्माण्ड है। भूत, भविष्य और वर्तमान तीन कालों वाला यह संसार भी ॐकार है और तीन कालों से जो अल्प तत्त्व हैं, वह भी ॐकार ही है—

**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानभूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।**

**यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।**

प्रणवोपनिषद् व ब्रह्मविद्योपनिषद् के अनुसार ब्रह्मज्ञानियों ने ब्रह्म को प्रणव के एक अक्षर (ॐ) के रूप में बताया है—

**ओमित्येकाक्षंर ब्रह्म यदुक्तं ब्रह्मवादिभिः।** प्रणवोपनिषद् 2

इसी में आगे कहा गया है—

**तत्र देवास्त्रयः प्रोक्ता लोका वेदास्त्रयोऽग्नयः।**

**तिस्त्रो मात्रार्धमात्रा च प्रत्यक्षस्य शिवस्य तत्।।** 3

अर्थात् उस ओंकार में तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश); तीन लोक (भूः, भुवः, स्वः); तीन वेद (ऋक्, यजुः, साम) और तीन अग्नियाँ (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय) हैं। शिव स्वरूप इस अक्षर की तीन और आधी मात्राएं (अकार, उकार, मकार और अनुस्वार) हैं।

**नारदपरिव्राजकोपनिषद् अष्टमोपदेशः** में **'ओमिति ब्रह्म। ओमित्येकाक्षरमन्तः प्रणवं विद्धि। स चाष्टधा भिद्यते। अकारोकारमकारार्धमात्रानादबिन्दुकलाशक्तिश्चेति'** ऐसा कहा गया है। इसमें इसी का विस्तार करते हुए वर्णित है कि यह ॐकार रूप ब्रह्म अविनाशी, परमात्मतत्त्व, सबका आश्रयभूत एवं परमप्रकाश स्वरूप है। यह ॐ समस्त जीवों का ईश्वर एवं सर्वत्र व्यापक है। प्रकृति को ॐ के गर्भ में बताते हुए इसे समस्त देवों का प्रतिरूप कहा गया है। ओंकार ही मुक्ति प्रदान करने वाला है।

महानारायणोपनिषद् में **'ओमिति युञ्जीत'** कहकर ओम् की उपासना करने का निर्देश है।

ब्रह्मविद्योपनिषद् 12 में कहा गया है कि ॐकार की साधना से सभी प्रकार की इच्छाएं शान्त हो जाती हैं—

**ॐकारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता।**

अमृतनादोपनिषद् में कहा गया है कि प्राणायाम के समय तेजः स्वरूप शब्द ओंकार का ही चिन्तन करें।

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येतन्न रेचयेत्।**
**दिव्यमन्त्रेण बहुधा कुर्यादामलमुक्तये॥** 21

अर्थात् शब्द रूप एकाक्षर ॐ ही ब्रह्म है। इसी ब्रह्म ॐकार का ध्यान करते हुए रेचक क्रिया करें। अनेकशः इस ओंकार रूप दिव्य मन्त्र से अपने चित्त को सभी विकारों से मुक्त करें।

योगशिखोपनिषद् 1-3 में ध्यान के समय मन को संयमित करके ॐकार के चिन्तन का उपदेश प्राप्त होता है—

**मनः सर्वत्र संयम्य ओंकारं तत्र चिन्तयेत्।**
**ध्यायेत् सततं प्राज्ञो हृत्कृत्वा परमेष्ठिनम्॥**

अध्यात्मरामायण पञ्चमसर्ग में लिखा है कि सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल ॐकार मात्र है। यह संसार वाच्य है और ॐकार इसका वाचक।

अथर्वशिरः उपनिषद् में ओंकार को प्रणव बताते हुए उसे सर्वव्यापी तारकस्वरूप सूक्ष्म, शुक्ल, परब्रह्म व अनन्त कहा गया है—

**य ओंकारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्वव्यापी यः सर्वव्यापी सोऽनन्तोयोऽनन्तस्तत्तारं यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं ब्रह्म यत्परं ब्रह्म स एकः.....।**

तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली 8/1 में ओम् की महिमा के बारे में वर्णित है कि ॐ ही ब्रह्म है। ॐ ही प्रत्यक्ष जगत् है। ॐ ही इस प्रत्यक्ष जगत् की अनुकृति भी है। ॐ से प्रारम्भ करके सामगायक सामगान करते हैं। ॐ ॐ कहते हुए शस्त्र रूप मन्त्रों का पाठ किया जाता है। ॐ से ही अध्वर्यु प्रतिगर मन्त्रों का उच्चारण करता है। ॐ कहकर ही अग्निहोम प्रारम्भ किया जाता है।

**ओमित्युक्त्वा वृत्तान्तशः शमित्येवमादीञ्छब्दान् पठन्ति—**
—व्याकरणमहाभाष्य 1-1-1

ॐ के द्वारा ही ब्रह्म को प्राप्त किया जाता है।

**ओमिति ब्रह्म। ओमितीदंसर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्हस्म।**
तैत्ति0उप0 8/1

सूर्योपनिषद् में भी **'ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म'** कहा गया है। ॐ रूप में जिसे अभिव्यक्त किया जाता है, वह परब्रह्म स्वंय में सर्व प्रकार से पूर्ण है। उसी ॐ रूप पूर्ण तत्त्व से इस विश्व की सृष्टि हुई है।

माण्डूक्योपनिषद् की गौडपादीयकारिका में ओंकारार्थज्ञ को ही मुनि माना गया है। ओंकार निर्भय पद है। वह परब्रह्म और अपरब्रह्म है। प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है। उसकी इयत्ता का परिच्छेद नहीं किया जा सकता।

दत्तात्रेय ने अपने योगशास्त्र में प्रणव को सभी पापों, दोषों व विघ्नों को हरण करने वाला कहा है—

**सर्वविघ्नहरश्चायं प्रणवः सर्वदोषहा।** 175

शुकरहस्योपनिषद् में लिखा है कि वेद के आरम्भ में भी स्वर रूप ॐकार उच्चारण होता है तथा जो वेदान्त में प्रतिष्ठित है एवं प्रकृति में लीन होकर भी उससे परे है, वही महेश्वर है—

**यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः।**
**तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः।।** 48

गोपथब्राह्मण उत्तर भाग 3/11 में प्रणव को अमृत (अविनाशी), मृत्यु को पार करने वाला व स्तुति योग्य कहा गया है। ब्रह्म ही निश्चय करके प्रणव है।

**अमृतं वै प्रणवः, अमृतेनैव तत् मृत्युं तरति।**
**ब्रह्म ह वै प्रणवः, ब्रह्मणैवास्मै तद् ब्रह्मोपसन्तनोति।**

आत्म ज्ञान का अधिकरण, आत्मा का औषध और आत्मा का मोक्षसुख ओंकार है—

**अध्यात्ममात्मभैषज्यमात्मकैवल्यमोंकारः।**

गोपथ ब्रा0पूर्वभाग 1/30

ईशोपनिषद् में ओम् का निरन्तर स्मरण करने के लिए कहा गया है—

**ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतोस्मर कृतं स्मर।।** 17

शाट्यायनीयोपनिषद् में ॐ को सभी श्रेष्ठ यज्ञो से भी उत्तम ज्ञानयज्ञ कहा गया है। ॐ का उच्चारण करते हुए ब्रह्मरूपी अग्नि में ही आत्मा की आहुति दी जाती है।

योगचूडामण्युपनिषद् में ॐ को निरंजन, निर्विकल्प, नामरहित, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, अनादिनिधन, एक, तुरीय, भूत, भविष्यत् और वर्तमान बताया गया है। इसके तीन अक्षर 'अ' कार, 'उ' कार एवं 'म' कार तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण (सत्, रज, तम), तीन अक्षर और तीन स्वर के रूप में प्रणव (ओंकार) प्रकाशमान बताया गया है। अ कार जाग्रत अवस्था में समस्त जीवों

के नेत्रों में, स्वप्नावस्था के समय 'ॐ' कार समस्त प्राणियों के कण्ठ में और 'म' कार सुषुप्ति अवस्था में सभी प्राणियों के हृदय प्रदेश में निवास करता है।

इसी उपनिषद् में प्रणव अर्थात् ॐ को ब्रह्म, विष्णु व रुद्र की उत्पत्ति का कारण बताया गया है। यह ॐ सर्वत्र प्रतिष्ठित, व्यापक और प्रकाशमान है। जो इसको अर्थात् प्रणव (ॐ) को जानता है, वही वेद को जानता है। सूर्य, चन्द्र और अग्निदेव एवं भूः, भुवः स्वः लोक जिसकी मात्राओं में रहते हैं वह ओंकार परमप्रकाशमान है। इस ओंकार की तीन मात्राओं में क्रिया, इच्छा और ज्ञान तथा ब्राह्मी, रौद्री और वैष्णवी शक्तियाँ समाहित हैं। वाणी से ॐ का ही जप करें, शरीर से उसी के प्रति आचरण करें और मन से भी उसी का जप करते हुए उसी परम ज्योति स्वरूप ॐकार में स्थित हों।

**भूर्भुवः स्वरिमे लोकाः सोमसूर्याग्निदेवताः।**
**यस्य मात्रासु तिष्ठन्ति तत्परं ज्योतिरोमिति॥**
**क्रिया इच्छा तथा ज्ञानं ब्राह्मी रौद्री च वैष्णवी।**
**विद्या मात्रास्थितिर्यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति॥**
**वचसा तज्जपेन्नित्यं वपुषा तत्समभ्यसेत्।**
**मनसा तज्जपेन्नित्यं तत्परं ज्योतिरोमिति॥**

योगचूडामण्युपनिषद् 85-86-87

प्रणव (ॐ) को उद्गीथ भी कहा गया है और इसकी उपासना करने का निर्देश दिया गया है।

**ओमित्येतक्षरमुद्गीथमुपासीत।** (छान्दोग्य 1/1/5)

अक्षर ॐ परम पद है। **अक्षरं परमं पदम्** (महाना0 11/1)

**अक्षरोऽहमोङ्कारोऽमरोऽभयोऽमृतो ब्रह्माभयं हि वै।**

(गो0मु0प0)

श्रीलिङ्गमहापुराण 9/9 अध्याय में ॐ की महिमा बताते हुए कहा गया है कि जो योगी ॐ का उचारण करता है, वह देव के समरूप हो जाता है।

**मात्रा चार्धं च तिस्त्रस्तु विज्ञेयः परमार्थतः।**
**तत्प्रयुक्तस्तु यो योगी तस्य सालोक्यमाप्नुयात्॥** 52

गीता 8/3 में श्री भगवान् परम अक्षर को ब्रह्म कहते हुए अर्जुन को उपदेश देते हैं—

**'अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते॥'**

अर्थात् परम अक्षर (ॐ) ब्रह्म है। अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा

अध्यात्म कहा गया है। गीता 17/23 में ही श्रीकृष्ण कहते हैं कि ॐ, तत्, सत् यह तीन नाम ब्रह्म का है—**ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।** गीता 17/24 में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि चूँकि ॐ ब्रह्म का वाचक है, इसीलिए यज्ञ, दान और तप आदि क्रियाएँ ॐ इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके आरम्भ होती हैं अर्थात् सभी शुभ कार्य सदा भगवान् के पवित्र नाम ॐ का उच्चारण किये बिना नहीं प्रारम्भ करना चाहिए। सभी देवताओं के मंत्र चाहे वह शिव का पंचाक्षर मन्त्र ॐ नमः शिवाय हो, या नारायण का अष्टाक्षर मन्त्र ॐ नमो नारायणाय हो, या श्रीकृष्ण का अष्टादशाक्षर मन्त्र ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनबल्लभाय स्वाहा, या द्वादशाक्षर मन्त्र ॐ नमो भगवते वासुदेवाय या सूर्य का ॐ घृणिः सूर्याय नमः या दुर्गा का ॐ नमश्चण्डिकायै या गणेश का ॐ श्री गणेशाय नमः हो या राम का ॐ रामाय नमः या हनुमान का ॐ हनुमते नमः; सभी के प्रारम्भ में ॐ जुड़ा रहता है। गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद् में कहा गया है—

**ओंकारेणान्वितं ये जपन्ति गोविन्दस्य पञ्चपदं मनुम्।**
**तेषामसौ दर्शयेदात्मरूपं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्यै।।** 23

अर्थात् जो साधक श्री गोविन्द के पाँच पद से युक्त अष्टदशाक्षर मन्त्र को प्रणव (ॐ) से सम्पुटित करके जप करते हैं, उन्हीं को वे अपने रूप का दर्शन देते हैं। अतः संसार के भव बन्धनों से मुक्त होने के इच्छुक मनुष्य को नित्य शान्ति की प्राप्ति हेतु ऊपर कहे गए मन्त्र का जप करना चाहिए।

इसी उपनिषद् में आगे कहा गया है "**ओंकारालिकुं मनुमावर्तयेत्**" अर्थात् ओंकार द्वारा सम्पुटित मन्त्र का जप एवं ध्यान करना चाहिए। नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् में ओंकार को सम्पूर्ण विश्व बताते हुए मन्त्र के पीछे ॐकार लगाने का निर्देश दिया गया है—

**ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्मात्प्रत्यक्षरमुभयत ओंकारो भवति।**
**अक्षराणां न्यासमुपदिशन्ति ब्रह्मवादिनः।** 2/5

मनुस्मृति 2/77 में ओऽम् के बारे में लिखा है कि गुरु का यह कर्तव्य है कि अध्ययन अध्यापन के प्रारम्भ में और समाप्ति पर शिष्य से ॐ का उच्चारण कराए। दोनों ही समय ॐ का उच्चारण न करने से पढ़ा हुआ पाठ चिरंजीवी नहीं होता। वह धीरे-धीरे विस्मृत होता हुआ विनष्ट हो जाता है—

**ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।**
**स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति।।**

ॐ की महिमा का वर्णन करते हुए आगे मनु महाराज कहते हैं कि तीनों वेदों का दोहन करके प्रजापति ब्रह्मा ने उसके साररूप तीन अक्षर अ उ म् (ओम) की रचना की। ओम् का उच्चारण तीनों लोकों का ध्यान करने के बराबर है। ॐ तीनों लोकों का प्रतिनिधि है—

**अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।**
**वेदत्रयान्निरदुहद्भूभुर्वः स्वरितीति च॥** 2/79

गरुडपुराण में योगी को ब्रह्मस्वरूप, महापुण्यदायक ॐ महामन्त्र का जप करने का निर्देश है। ॐ के अकार, उकार और मकार इन तीन अक्षरों के अतिरिक्त इस महामंत्र में सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन मात्राओं का भी योग है। ॐकार में चतुर्थ अर्धमात्रा स्थित है, वह केवल योगियों द्वारा गम्य है। ॐ यह अक्षर परमब्रह्म है।

स्कन्दपुराण में ॐ (प्रणव) की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि अपने प्रभाव से सबका अवन (रक्षण) करने के कारण प्रणव को ॐ कहते हैं। यह अपने भक्त को ऊर्ध्व लोक में ले जाता है, इसलिए उसे ॐ कहते हैं। वह प्रणव निराकार होकर भी साकार होकर ब्रह्माजी को दृष्टिगोचर हुआ। इस प्रकार प्रणव का ब्रह्मा जी ने साक्षात्कार किया। यह समस्त मोक्षार्थी पुरुषों द्वारा प्रणुत (स्तुत) होता है इसीलिए इसका नाम प्रणव है। प्रजापति ब्रह्मा जी ने समाधिस्थ होने के बाद जब नेत्र खोला तब उन्होंने अपने सामने आदि अक्षर ॐ को प्रकट देखा।

कूर्मपुराण में लिखा है कि ॐकार से बोधित सनातन तत्त्व अच्युत शिव कहलाता है।

**ओंकारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्।**
कूर्मपुराण उ0वि0 11/62

जाबालोपनिषद् में अ उ म् (ॐ) इन तीन अक्षरों को मोक्षमन्त्र बताया गया है। इसी को ब्रह्म व उपासना के योग्य याज्ञवल्क्य ने बताया है।

गुरु नानकदेव ने भी 'एक ओंकार सतगुरु प्रसाद' कह कर ओंकार की महिमा का बखान किया है। उन्होंने ओंकार से ही ब्रह्मादिक की उत्पत्ति मानी है। ओ अंकारि ब्रह्मा उतपति।

कबीरदास जी ने ॐ की महिमा बताते हुए उसे आदि अक्षर (ब्रह्म) कहा है—

**ओं अकार आदि मै जाना।**

इस प्रकार सभी आर्ष ग्रन्थों में ॐ (प्रणव) को परम सत्ता का वाचक कहा गया है। यह ॐ ही अक्षर है। यही परम ब्रह्म है। ब्रह्म, अक्षर, प्रणव, ॐ, परमात्मा आदि एक ही तत्त्व के प्रतिपादक हैं। ॐकार ही सब कुछ है। उससे परे कुछ भी नहीं है। ॐ को जानने का तात्पर्य ब्रह्म को जानना है। यही परमसत्ता, परमज्योति, अविनाशी, परमचैतन्य, सर्वव्यापी, परमेश्वर ब्रह्म है। इसी का ध्यान व चिन्तन करके साधक ब्रह्मसायुज्य प्राप्त कर सकता है। इसी के द्वारा योगी को ब्रह्मसारूप्य प्राप्त हो जाता है।

ॐ

केवल तथ्य रखे गये हैं निष्कर्ष का अभाव है।

# मन का वैशिष्ट्य

भारतीय मनीषा ने जब भी सुख, दुःख, बन्धन और मोक्ष का चिन्तन किया, वह चिन्तन मन के परितः केन्द्रित रहा। शरीर में मन की ही प्रभुता है। मन में जगत् को रचने की शक्ति है। मन सर्वशक्तिसम्पन्न है। जगत् के सभी पदार्थ मन के भीतर हैं। मन संसारचक्र की नाभि है। मन का समवृत्ति होना ही मनुष्य का अन्तिम साध्य है। पूर्ण पुरुष का यही लक्षण श्रुतियों व स्मृतियों में वर्णित है। निरुक्त 4-1-5 में मनो मनोतेः अर्थात् मननार्थक मन् धातु से मनस् निष्पन्न बताया गया है। मन को समझने व मन को जानने की अपनी-अपनी दृष्टि से ऋषियों ने, तत्त्वज्ञानियों ने प्रयास किया। कहीं-कहीं पर मन को आत्मशक्ति कहा गया, तो कहीं पर मन को एक इन्द्रिय माना गया। ऋग्वेद 6/9/5 में लिखा है कि **'मनोजविष्ठं पतयत्स्वन्तः'** अर्थात् मन अतिवेगशील है। मन जीवों के अन्दर विद्यमान है। यजुर्वेद 34/5-6 में मन को इन्द्रियों का प्रकाशक, प्राणियों का संचालक और नियन्त्रक कहा गया है। इसे प्रजा के हृदय में रहने वाला अजिर (जो कभी बूढ़ा न हो) और जविष्ठ (अत्यन्त वेगवान्) कहा गया है। **हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।** इसीलिए उसे कल्याणकारी संकल्पों से युक्त होने की कामना परमात्मा से की गई है। अथर्ववेद 19/9/5 में मन को छठी इन्द्रिय कहा गया है और परमेष्ठी, ब्रह्मा द्वारा सुसंस्कृत मन से शान्ति की प्रार्थना की गई है—

**इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।**
**येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः॥**

अथर्ववेद 19/9/4

**इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि॥**

19/9/5

मुण्डकोपनिषद् 2-1-3 में कहा गया है कि इस अक्षर पुरुष (परमपुरुष) से प्राण, मन व सभी इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी से आकाश, वायु, अग्नि,

जल और विश्व को धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न होती है—

**एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।**
**खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।**

गीता 7/4 के अनुसार मन भगवान् की एक प्रकृति है। श्रीकृष्ण ने इसे अपरा (निम्न श्रेणी) प्रकृति कहा है। प्रश्नोपनिषद् 6/4 में कहा गया है कि उस परम पुरुष ने सबसे पहले प्राण की रचना की, फिर प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन और अन्न को रचा। फिर अन्न से वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म एवं लोक को एवं लोक से नाम को उत्पन्न किया।

**स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं**
**मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मंत्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च।।**

वेदान्त में अन्तःकरण की संकल्पविकल्पात्मिका वृत्ति को मन कहा गया है। चित्त और अहंकार का मन और बुद्धि में अन्तर्भाव हो जाता है।

**मनो नाम संकल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः।**
**अन्योरेव चित्ताहंकारयोरन्तर्भावः।।**

वेदान्तसार खण्ड 19

महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म पर्व में कहा गया है कि प्रजापति ब्रह्मा ने मन और कर्म इन दोनों सहित प्रजा की सृष्टि की है। अतः दोनों लोकसेवित सन्मार्ग रूप हैं। मनुष्य मन से जो कुछ कार्य करता है उसका फल यह जीवात्मा के साथ मन के साथ हुआ मन से ही भोगता है—

**प्रजाः सृष्टा मनसा कर्मणा च।**
**द्वावेवैतौ सत्पथौ लोकजुष्टौ।।**

योगवासिष्ठ में भी मन को ही शुभ और अशुभ कर्मों के फल का भोक्ता कहा गया है—

**मनः कर्मफलं भुंक्ते शुभं वाऽशुभमेव वा।** 115/26

महाभारत में ही मन को अध्यात्म तत्त्व कहा गया है और चन्द्रमा को इसका देवता बताया गया है—

**अध्यात्मं मन इत्याहुः पञ्चभूतात्मधारकम्।**
**अधिभूतञ्च संकल्पश्चन्द्रमाश्चाधिदैवतम्।।**

महा0आश्वमेधिकपर्व 42 अध्याय

महोपनिषद् में बताया गया है कि बुद्धि जब संकल्प रूप में परिणत हो

जाती है तो मननशील मन का रूप धारण करती है—

**बुद्धिः संकल्पिताकारा प्रयाति मननास्पदम्।** 5/125

शतपथब्राह्मण 7/5/1 में कहा गया है कि मन ही सरस्वान् और वाक् सरस्वती है। मन समुद्र और वाक् तीक्ष्ण अग्नि है। श0ब्रा0 8/1/2/7 में वाक् को ही मति कहा गया है। उसी से सभी का चिन्तन किया जाता है। वही ऊपर चन्द्रमा के रूप में अवस्थित है। ऐतरेय ब्राह्मण 16/6 के अनुसार वाक् रथन्तर साम और मन बृहत्साम है। गोपथब्राह्मण पूर्व भाग में मन को सविता व वाक् को सावित्री कहा गया है।

शतपथब्राह्मण में वर्णन है कि सृष्टि रचना के क्रम में प्रजापति ने मन से वाक् का मिथुन किया। वाक् के विना मन व्यर्थ है। वाक् और मन एक ही शक्ति के दो रूप हैं। वाक् को पुष्कर पर्ण और मन को रेतस् कहा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण 24/4 के अनुसार वाक् और मन ही देवताओं के मिथुन हैं।

षड्विंशब्राह्मण 2/3/3 में मन को पहला तथा वाक् को पाँचवा प्राण माना गया है। वाक् को होता तथा मन को ब्राह्मण बताया गया है। आहुतियों के दो रूप वाक् और मन ही हैं। वाक् और मन के सायुज्य से यज्ञ पूरा होता है। मन और वाक् एक दूसरे के पूरक व पोषक हैं।

इस प्रकार मन और वाक् को लेकर ब्राह्मण ग्रन्थों में पर्याप्त चिन्तन और तर्क वितर्क हुआ है। मन की अनुगामिनी वाक् को बताया गया। मन जिसे विषय बनाता है वाक् उसे ही बोलता है। इस प्रकार मन को पूर्व तथा वाक् को पश्चात् की स्थिति बताई गई है। कालान्तर में वाक् और मन की साधना ही परम पद की प्राप्ति का साधन हो गई। महाभारत आश्व0 पर्व 21/10 में ऐसा ही कथन प्राप्त होता है—

**मनसा चिन्तितं वाक्यं यदा समभिपद्यते।**

शारीरकोपनिषद्, 4 में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन चारों को अन्तः चतुष्टय (अन्तःकरण) कहा गया है। इनके विषय क्रमशः संकल्प - विकल्प, निश्चय, अवधारणा व अभिमान को बताया गया है। मन का क्षेत्र गले का अन्तिम भाग बंताया गया है।

**मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तमित्यन्तःकरणचतुष्टयम्।**
**तेषां क्रमेण संकल्पविकल्पाध्यवसायाभिमानावधारणास्वरूपाश्चैते विषयाः।**
**मनः स्थानं गलान्तं बुद्धेर्वदनमहंकारस्य हृदयं चित्तस्य नाभिरिति।**

शाण्डिल्योपनिषद् में मन की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

**ज्ञेयं सर्वप्रतीतं च तज्ज्ञानं मन उच्यते।** 1/7/22

अर्थात् जो कुछ भी ज्ञेय (जानने योग्य) है और जो प्रतीत होता है उसके ज्ञान को मन कहते हैं। इसीलिए ज्ञेय वस्तु का परित्याग कर देने से मन विलीनता को प्राप्त हो जाता है।

महोपनिषद् 4/121 में मन की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा गया हैं कि चित्त की संकल्प रूप अवस्था स्वयं निर्दोष होते हुए भी मनन करने के कारण मन कही जाती है—

**यैषा स्वभावाभिमतं स्वयं संकल्प्य धावति।**
**चिच्चैत्यं स्वयमम्लानं मननान्मन उच्यते।।**

ऐतरेयोपनिषद् 3/1/2 में हृदय व मन को एक बताया गया है। साथ ही साथ इनको परमात्मा की सत्ता का बोधक बताया गया है।

**यदेत् हृदयं मनश्चैतत्।**

वैशेषिक दर्शन के अनुसार नव द्रव्यों में मनस् नवां द्रव्य है। इसके द्वारा आत्मा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान के सम्पर्क में आता है।

मन का लक्षण ध्यान व चिन्तन है। हृदय में स्थित आत्मा मन के चिन्तन कार्यों में सहायता करता है।

**मनसश्च गुणश्चिन्ता प्रज्ञया स तु गृह्यते।**
**हृदिस्थश्चेतनो धातुर्मनो ज्ञाने विधीयते।।**

महा0 अनुगीतापर्व 43/34

योगवासिष्ठ 3/69/3 में अनन्त सर्वशक्तिमान महान् आत्मा की संकल्प शक्ति से रचित रूप को मन कहा गया है—

**अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य सर्वशक्तेर्महात्मनः।**
**संकल्पशक्तिरचितं यद्रूपं तन्मनो विदुः।।**

इसी में मन का रूप बताते हुए लिखा है कि परम चित्त जब स्पन्दनयुक्त होकर कल्पनात्मक रूप को धारण करके जब विषय से गर्भित होता है तब वह मन होता है। मन अनन्त, अपार, पूर्ण सर्वशक्तिमान, ब्रह्म जगत् निर्माण करने वाली, दृश्य का अनुभव प्राप्त करने को उत्सुक स्पन्दन शक्ति का नाम है, जब वह अपने आप का व्यक्त रूप से अनुभव करती हैं।

श्रुतियों में मन के बारे पर्याप्त विचार किया गया है। मन के गुण-धर्म के आधार पर इसके विभिन्न रूपों का उल्लेख प्राप्त होता है—

**मन एव तेजः।** को0उ0 2/13
**मनो ज्योतिः।** बृह0उ0 3/9/10
**मनो अमः।** छा0उ0 1-7-3
**मनो ब्रह्म।** छा0उ0 2-18-1
**दैवं मनः।** बृह0उ0 1-19
**मनो नाम देवताऽवरोधिनी।** कौ0उप0 2-3
**अनन्तं वै मनः।** बृह0उप0 3-1-9
**एकत्वं प्राण मनस्ते।** मै0उप0 6-25
**शारीरयज्ञस्य मनो रथः।** प्राणा0उप0 22
**मनः ऐश्वर्यं।** महा0उप0 2
**मनोऽस्य दैवं चक्षुः।** छा0उ0 8-12-5

नारद पाञ्चरात्र में मनुष्य के सभी कर्मों का आदि कारण मन को माना गया है—

**मानसं प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम्।**

पाञ्चरात्र के व्यूह सिद्धान्त में प्रद्युम्न को मनस् तत्त्व कहा गया है।

चरक मुनि ने सत्त्व को मन कहा है। यह मन आत्मा के साथ संयुक्त होकर शरीर के सब कार्यों का प्रेरक होता है—

**सत्त्वमुच्यते मनः। तच्छरीरस्य तन्त्रकमात्मसंयोगात्।**

चरकसूत्र

मन नाना प्रकार के विषयों में संचरण करता है, उसका कोई स्थिर आलम्बन नहीं है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उसके इधर-उधर निकलने के द्वार हैं। वह अत्यन्त चंचल है। ऐसे मन को धीर योगी पुरुष पहले अपने हृदय के भीतर ध्यान मार्ग में एकाग्र करे। इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती हैं। मन संकल्प विकल्प करता है।

**विसंचारि निरालम्बं पञ्चद्वारं चलाचलम्।**
**पूर्वं ध्यानपथे धीरः समादध्यान्मनोन्तरा।।**

महा0शा0पर्व 195/9

**चक्षुरालोचनायैव संशयं कुरुते मनः।**

महा0शा0 194/13

ऋग्वेद 10/9/13 में **'चन्द्रमा मनसो जातः'** कहा गया है। अर्थात् चन्द्रमा आदिपुरुष के मन से उत्पन्न हुआ है। जैसे चन्द्रमा में क्षय-वृद्धि पायी जाती है वैसे ही मन की दशा सदैव एक समान नहीं रहती। चन्द्रमा व मन दोनों में उतार-चढ़ाव, क्षीण-वृद्धि होता रहता है।

अर्थात् मन में स्थायित्व न होकर उसका स्वभाव चंचल होता है। इस प्रकार चन्द्रमा मन का प्रतिनिधि है।

छान्दोग्य उपनिषद् 5/1/5 में मन को आयतन (आश्रय) कहा गया है:—

**यो ह वा आयतनं वेदायतनं ह स्वानां भवन्ति मनो ह वा आयतनम्।**

अर्थात् जो कोई आयतन को जानता है वह स्वजनों का आयतन होता है। निश्चय ही मन आयतन (आश्रय, अधिष्ठान) है। मन रूपी छठी इन्द्रिय आत्मा में प्रतिष्ठित है। ध्यानबिन्दूपनिषद् में मन को त्रिगुणमय संसार के सृजन, पालन और संहार का कारण बताया गया है और कहा गया है कि उसके विलय हो जाने पर विष्णु के परमपद की प्राप्ति हो जाती है। मन का आत्मा में लीन होना ही मोक्ष है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में मन को ग्रह बताते हुए उसे समस्त कामनाओं का स्रोत कहा गया है—

**मनो वै ग्रहः स कामेनातिग्राहेण गृहीतो मनसा हि कामान्कामयते।**

3/2/7

महाभारत में सूर्य को मन भी कहा गया है। इसी प्रकार नारायणोपनिषद् 15 में सूर्य की एक संज्ञा मन को भी बताया गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में अनिरूपणीय अदृश्य ज्ञान भेद को मन कहा गया है—

**अनिरूप्यमदृश्यञ्च ज्ञानभेदं मनः स्मृतम्।**

प्रकृतिखण्ड 23 अध्याय

मनस्मृति 12/4 में मन को सभी कर्म का साधन (माध्यम) बताते हुए कहा गया है कि दस लक्षणों (5 ज्ञानेन्द्रिय व 5 कर्मेन्द्रिय) वाले मनुष्य का सूत्रधार—शुभ और अशुभ कर्मों में प्रवृत्त करने वाला—उसका मन ही है।

**दशलक्षणयुक्तस्य मनः विद्यात्प्रवर्तकम्।**

वायुपुराण में मन की व्याख्या करते हुए लिखा हैं—

मनुते सर्वभूतानां यस्माच्चेष्टाफलं विभुः।
सूक्ष्मत्वेन विवृद्धानां तेन तन्मन उच्यते॥ 4/28/29

अर्थात् यह विभु सूक्ष्मता से विवृद्ध समस्त भूतों की चेष्टा के फल का मनन कर लेता है अर्थात् उनको समझ लेता है इसलिए इसको मन कहते हैं। संकल्प और अध्यवसाय इसकी दो वृत्तियाँ हैं।

ब्रह्मपुराण में मन के बारे में लिखा है कि नियम तथा उत्सर्ग में समस्त इन्द्रियों का ईश्वर मन है। मन का ईश्वर आत्मा है। देहधारियों के शरीर में इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय, स्वभाव, चेतना, मन, प्राण, अपान तथा जीव नित्य रहतें हैं। मन, बुद्धि तथा स्वभाव इनको स्वयोनिजगुण बताया गया है। ये इतर गुणों का अतिक्रमण करते हैं। अतएव दूसरे गुणों से श्रेष्ठ माने जाते हैं।

मनो बुद्धिः स्वभावश्च गुणा एते स्वयोनिजाः।
ते गुणानतिवर्तन्ते गुणेभ्यः परमा मताः॥

ब्रह्मपुराण 237/52

इसी में आगे इन्द्रियों के विषयों के लिए मन को विद्या कहा गया है और मन की विद्या पाँच महाभूतों को माना गया है—

विषयाणां मनस्तेषां विद्यामाहुर्मनीषिणः।
मनसः पञ्चभूतानि विद्या इत्यभिचक्षते॥

आचार्य सुश्रुत के अनुसार गर्भ स्थित भ्रूण के पाँचवे महीने में मन अधिक प्रबुद्ध व सचेत होता है अर्थात् भ्रूण में मन की सृष्टि हो जाती है—

पञ्चमे मनः प्रतिबुद्धतरं भवति षष्ठे बुद्धिः।

सुश्रुत शारीरस्थान 3/28

श्रीमद्भागवत 11/2/49 में भय को मन का धर्म बताया गया है। अर्थात् भय मन का अनिवार्य धर्म है। एक तथ्य तो निर्विवाद रूप से सभी विद्वानों ने माना कि मन का कार्य मनन करना, चिन्तन करना, संकल्प - विकल्प करना व ध्यान करना है। छान्दोग्य उपनिषद् में नाम से श्रेष्ठ वाणी और वाणी से अधिक श्रेष्ठ मन को बताया गया है। उसमें आगे कहा गया है कि वाणी और नाम की अनुभूति मन करता है। यहाँ पर मन को आत्मा, लोक एवं ब्रह्म बताया गया है।

अतः मन की उपासना करने का निर्देश योगेश्वर सनत्कुमार ने देवर्षि नारद को दिया। फिर नारद के प्रश्न करने पर उन्होंने मन से अधिक श्रेष्ठ

संकल्प, संकल्प से अधिक श्रेष्ठ चित्त और चित्त से उत्कृष्ट ध्यान और ध्यान से भी अधिक श्रेष्ठ विज्ञान, विज्ञान से श्रेष्ठ बल और बल से श्रेष्ठ अन्न, अन्न से अधिक श्रेष्ठ जल, जल की अपेक्षा श्रेष्ठ तेज, तेज से श्रेष्ठ आकाश, आकाश से श्रेष्ठ स्मरण, स्मरण से श्रेष्ठ आशा, आशा से अधिक श्रेष्ठ प्राण और प्राण से अधिक श्रेष्ठ आत्मा को बताया।

महाभारत में वर्णित है कि सभी कामनाएं मन से ही प्रकट होती है—

**सर्वे कामा मनसोऽङ्गप्रभूता।**

इन्द्रियाँ कुछ नहीं देखतीं, केवल मन ही देखता है। मन के विषयों से उपरत हो जाने पर इन्द्रियाँ भी विषयों से निवृत्त हो जाती हैं। परन्तु इन्द्रियों के उपरत होने पर मन में उपरति नहीं आती—

**न चेन्द्रियव्युपरमे मनस्युपरमो भवेत्।** महा0शा0पर्व 311/20

मन सभी इन्द्रियों की सहायता से विषया का अनुभव करता है। संशय (संकल्प-विकल्प) करने का काम मन का है—

**संशयं नाधिगच्छन्ति मनस्तमधिगच्छति।**

महाभारत आश्वमेधिकपर्व अनुगीतापर्व।

इसी में आगे मन को स्थावर होने के कारण श्रेष्ठ बताया गया है—

**तस्मान्मनः स्थावरत्वाद् विशिष्टं**
**तथा देवी जङ्गमत्वाद् विशिष्टा।।** 21/26

योगवासिष्ठ में मन को सभी प्रकार के कार्यों का कर्ता, भोक्ता बताया गया है, शरीर को नहीं। मन का जीव के रूप में वर्णन है—

**उदेति रौति हन्त्यत्ति याति वल्गति निन्दति।**
**मन एव शरीरेऽस्मिन्न शरीरं कदाचन।।** 115/22
**सर्वेषु सुखदुःखेषु सर्वासु कलनासु च।**
**मनः कर्तृ मनो भोक्तृ मानसं विद्धि मानवम्।।** 115/24

महाभारत में भीष्म द्वारा मन के नौ गुण बताए गए हैं—

**धैर्योपपत्तिर्व्यक्तिश्च विसर्गः कल्पना क्षमा।**
**सदसच्चाशुता चैव मनसो नव वै गुणाः।।**

महा0शा0 मोक्षधर्मपर्व 255/9

धैर्य, तर्क-वितर्क में कुशलता, स्मरण, भ्रान्ति, कल्पना, क्षमा, शुभ एवं अशुभ संकल्प और चञ्चलता-ये नौ मन के गुण हैं।

चरकसंहिता शारीरस्थान 1/18 में कहा गया है कि

**चिन्त्यं विचार्य्यमूह्यञ्च ध्येयं संकल्प्यमेव च।**
**यत्किञ्चिन्मनसो ज्ञेयं तत्सर्वं ह्यर्थसंज्ञकम्॥**

चिन्ता, विचार, तर्क, ध्यान और संकल्प तथा ज्ञेय जो कुछ वस्तु है सब मन का विषय है।

मन में शब्दादि विषय रूप समस्त आकृतियों का लय होता है। मन का बुद्धि में, बुद्धि का ज्ञान में और ज्ञान का परमात्मा में लय होता है। इन्द्रियों द्वारा मन की सिद्धि नहीं होती। मन बुद्धि को नहीं जानती। बुद्धि सूक्ष्म एवं अव्यक्त आत्मा को नहीं जानती। किन्तु अव्यक्त आत्मा इन सबको देखता रहता है।

वायुपुराण 4/27 में लिखा है कि सृष्टि की इच्छा से प्रेरित होने पर ब्रह्म ही सृष्टि करता है। उसी को पण्डित लोग मन, महान्, मति, ब्रह्मा, भू, बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संविद् और विपुर कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि यह सृष्टि मन का प्रपञ्च या विलास मात्र है। इसकी सत्ता का मूल कारण मन ही है।

मनुस्मृति 2/95 में मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय बताते हुए इसे उभयात्मक अर्थात् कर्मेन्द्रिय व ज्ञानेन्द्रिय दोनों कहा गया है। मन के वश में हो जाने पर ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ स्वयमेव वश में हो जाती हैं—

**एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।**
**यस्मिन् जिते जितावैतौ भवतः पञ्चकौ गुणौ॥** 2/95

श्रीमद्भागवत 11/23/43 में सुख और दुःख का परम कारण मन को बताया गया है। मन ही इस संसार चक्र को चला रहा है। वास्तव में मन बहुत बलवान् है। इसी ने विषयों, उनके कारण गुणों और उनसे सम्बन्ध रखने वाली वृत्तियों की सृष्टि की है। मन ही समस्त चेष्टाएं करता है। तप,दान, धर्मपालन, यम, नियम, वेदाध्ययन, सत्कर्म, सत्सङ्ग, उपासना (एक निष्ठ) और ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ व्रत—इन सबका अन्तिम फल है कि मन एकाग्र होकर भगवान् में लग जाय। मन का समाहित हो जाना ही परम योग है—

**परो हि योगो मनसः समाधिः।** श्रीमद्भागवत 11/23/46

महाभारत शांतिपर्व में नारद ने भगवान् से प्रार्थना की है कि मन वैकारिक अहंकार में मिल जाय। क्योंकि मन अहंकार का ही विकार है। अहंकार से ही मन क्रियाशील होता है। यह अहंकार सभी प्राणियों को मोहने



अहंकारो वशमेत्य

वाला है। विषयों में जो व्यापक चित्त है उसी को मन समझना चाहिए। मन सर्वगत कहा गया है। अर्थात् उसकी गति सर्वत्र होती है। भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के साथ मिलकर उन सबके रूप में मन व्यक्त होता है—

**विज्ञेयं व्यापकं चित्तं तेषु सर्वगतं मनः।** 210/31

सभी इन्द्रियों को मन के वश में बताया गया है। मन के द्वारा ही सभी इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं। पंचदशी 2/12 में मन को दसों इन्द्रियों का अध्यक्ष बताया गया है—

**मनो दशेन्द्रियाध्यक्षं हृत्पद्मे गोलके स्थितम्।**

सभी मनुष्य तीन साधनों मन, वाणी और शरीर से कर्म करते हैं। सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का सूत्रधार मन होता है। वही सभी इन्द्रियों को शुभ और अशुभ कर्मों में प्रवृत्त करता है। मन को बड़ा शत्रु बताते हुए इसे दुर्जय कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि "**सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः**" भागवत 11/16/11। अर्थात् सूक्ष्म वस्तुओं में मैं जीव हूँ तथा कठिनाई से वश में होने वालो में मैं मन हूँ। भागवत 11/23/49 में भी मन को दुर्जय व शत्रु '**तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगम्**' बताया गया है। इसी प्रकार गीता 6/34 एवं 6/35 में मन को चंचल, दुर्निग्रह एवं बलवान् बताया गया है। मैत्रायण्युपनिषद् 4/ट में मन को ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण बताया गया है।

**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**
**बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः॥**

अर्थात् मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयों में आसक्त मन बन्धन का तथा विषयों में अनासक्त (मुक्त) मन मुक्ति का कारण होता है। उपर्युक्त मन्त्र नारदीयपुराण 47/4, श्रीविष्णुपुराण 6/7/28 ब्रह्मबिन्दूपनिषद् 2 एवं शाट्यायनीयोपनिषद् 1 में भी प्राप्त होता है। देवीभागवत 1/18/39 में यह श्लोक कुछ परिवर्तन के साथ उपलब्ध है—

**न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परंतप।**
**मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।**

इसीलिए कठोपनिषद् में मन को इन्द्रियों रूपी अश्वों को वश में करने वाला (नियन्त्रक) लगाम (पग्रह) बताया गया है। जो विवेकशील बुद्धि वाले व नियन्त्रित मन वाले हैं उनकी इन्द्रियाँ उसी प्रकार नियन्त्रित रहती हैं जैसे श्रेष्ठ सारथि के वश में अच्छे घोड़े—

**यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।**
**तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।।**

कठोपनिषद् 1/3/6

इससे स्पष्ट है कि यहाँ मन को शत्रु नहीं कहा गया है, अपितु विषयों में आसक्त मन और अनियन्त्रित मन ही शत्रु है। अनासक्त मन, निर्विषयी मन तो मनुष्य के मोक्ष का कारण होता है। शांकरभाष्यगीता में लिखा है कि आचार्य के उपदेश द्वारा एवं शम, दम आदि साधनों द्वारा शुद्ध किया हुआ मन आत्मदर्शन में करण (साधन) है। अथर्ववेद 19/9/4 में शान्त मन को शान्ति का साधन और घोर मन को पाप कर्मों का साधन कहा गया है। महाभारत शान्तिपर्व में भी ऐसा कहा गया है। धर्म और अधर्म पहले मन में आते हैं। मन से ही मनुष्य बंधता है और मन से ही मुक्त होता है। यदि मन को वश में कर लिया जाय तो स्वर्ग मिलता है और यदि उसको खुला छोड़ दिया जाय तो नरक की प्राप्ति निश्चित है। ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में इच्छाओं व कामनाओं के संकल्प को उत्पन्न करने वाले मन को अशुद्ध मन एवं काम विवर्जित मन को शुद्ध मन कहा गया है।

विवेकचूडामणि 174 में आदि शंकराचार्य कहते हैं—

**मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते।**

और भी—

**तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तोर्बन्धस्य मोक्षस्य च वा विधाने।**
**बन्धस्य हेतोर्मलिनं रजोगुणैर्मोक्षस्य शुद्धं विरजस्तमस्कम्।।** 176

अर्थात् मन ही इस जीव के बन्धन और मोक्ष का कारण है। रजोगुण युक्त मलिन मन बन्धन का कारण है और शुद्धमन (रजोगुण व तमोगुण रहित) मुक्ति का कारण है।

सत्य और शुद्ध मन से परमात्मा का तत्त्व जाना जा सकता है। शाट्यायनीयोपनिषद् में उपदेश दिया गया है कि जैसे यह मन सांसारिक विषय भोगों में आसक्त रहता हैं ऐसा यदि ब्रह्म में आसक्त हो जाए तो ऐसे कौन से सांसारिक बन्धन हैं जिनसे मुक्ति न मिलती हो। अर्थात् अनासक्त मन (ब्रह्म में लीन मन) सभी भव बन्धनों को काटने में व संसार चक्र से मुक्ति दिलाने में पूर्ण समर्थ है।

अथर्ववेद 9/9/18 के अनुसार सात्त्विक मन मोक्ष का साधन है और पापी मन पाप का।

योगशास्त्र में मन का कितना महत्त्व है इसको श्रीमद्भागवत 11/16/24 के इस श्लोक से समझा जा सकता है।

**योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम्।**

11/16/24

अर्थात् भगवान् कहते हैं कि योग के आठ प्रकारों में मैं मनोनिरोध रूप समाधि हूँ और विजय के इच्छुक लोगों में रहने वाला मैं मन्त्र बल हूँ।

बिना मन पर संयम किये, बिना मन का निरोध किये कभी भी आत्म साक्षात्कार नहीं हो सकता। मन के संयम और मन को वश में किये बिना सारा ज्ञान, जप, तप, स्वाध्याय व्यर्थ है। **शान्तं मनो भवतु किं बहुभिस्तपोभिः** —उपदेश-प्रकरण 6 अर्थात् यदि मन शान्त है तो अनेक प्रकार के तपस्याओं की क्या आवश्यकता है? ऐसा ही भागवत 11/23/47 में भी कहा गया है।

गीता 6/34 में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि निःसन्देह मन अतिशय चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। यह प्रमथन स्वभाव वाला बड़ा दृढ़ और बलवान् है। इसको वश में करना वायु को रोकने की भाँति दुष्कर है।

**चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।**
**तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥**

गीता 6/26 में भी मन को 'चञ्चल और अस्थिर' बताया गया है।

तैत्तरीय ब्राह्मण 3/12/3/3 के इस कथन से मन को वश में करने की कठिनाई का अनुमान लगाया जा सकता है—

**मनसो वशे सर्वमिदं बभूव, नान्यस्य मनो वशमन्वियाय।**
**भीष्मो देवः सहसः सहीयान्।**

श्रीमद्भागवत में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने मन को बलवानों से भी बलवान् बताया है। मन को वश में करने वाले को देवों का भी देव कहा गया है। सभी इन्द्रियाँ मन के वश में हैं।

**मनोवशेऽन्ये ह्यभवन् स्म देवा**
**मनश्च नान्यस्य वशं समेति।**
**भीष्मो हि देवः सहसस्सहीयान्**
**युञ्जाद्वशे तं स हि देवदेवः॥** 11/23/48

श्रीमद्भागवत में ही सुख और दुःख दोनों का परम कारण मन को

बताया गया है। मन को ही संसार चक्र को चलाने वाला कहा गया है।

**मनः परं कारणमामनन्ति**
**संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्।।** 11/23/43

बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिए कि एक क्षण के लिए भी मन को स्वतन्त्र न छोड़े। उसके ऊपर व उसकी चालों पर सतर्क दृष्टि रखे। सत्त्व सम्पन्न बुद्धि द्वारा धीरे-धीरे मन को वश में करे।

**मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः।**
**सत्त्वसम्पन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत्।।** 11/20/20

मन को वश में करना ही परम योग कहा गया है—

**एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः।**
**हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः।।**

श्रीमद्भागवत 11/20/21

मन के पूर्णतया शान्ति के साधन को योग कहा गया है—

**मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते।** महोपनिषद् 5/42

मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है कि चित्त ही संसार है। अतः प्रयत्नपूर्वक चित्त का शोधन करना चाहिए। जब तक मन का क्षय न हो, तब तक उसे हृदय में निरोध करना चाहिए। चित्त के शान्त होने पर शुभ और अशुभ कर्म विनष्ट हो जाते हैं।

**अब यहाँ तक यह बात स्पष्ट हुई कि :**

1. मन सर्वगत व सत्त्वगुण है।
2. मन सभी इन्द्रियों का प्रेरक, प्रकाशक व नियन्त्रक है।
3. मन इन्द्रियों से संयुक्त होकर ही विषयों का अनुभव करता है
4. विषयी (कामनायुक्त) मन बन्धन का कारण है।
5. विषयों से मुक्त मन (अकामी, अनासक्त)मोक्ष का कारण है।
6. मन अत्यन्त चंचल और प्रमथनशील है।
7. मन अत्यन्त दृढ़ और बलवान् है।
8. मन अत्यन्त दुर्जय और दुर्निग्रह है।
9. मन अत्यन्त वेगवान् है।
10. मन कभी विश्राम का नाम नहीं लेता।

अब प्रश्न उठता है कि जिस मन को स्वयं भगवान् श्री कृष्ण और सारे ऋषियों, मुनियों ने अत्यन्त चंचल और दुर्जय माना, उसे वश में कैसे किया जाय। अर्थात् मन पर विजय (नियन्त्रण) कैसे प्राप्त किया जाय। बिना मन पर विजय प्राप्त किये मोक्ष की प्राप्ति असम्भव है। कहा भी गया है कि **"मनोजय एव महाजयः"** और **"मन के हारे हार है मन के जीते जीत"** और भी **"मन जीते जग जीते"** मन पर निग्रह और नियन्त्रण की क्या विधि है? मन को कैसे कामनाओं से मुक्त बनाया जाय? मन को कैसे निर्विषयी बनाया जाय? मन को कैसे वासना रहित (निर्वासन) बनाया जाय।

सभी उपनिषदों, महाभारत, पुराणों, स्मृतियों, गीता, योगशास्त्र आदि सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में मन को नियन्त्रित करने के उपायों का वर्णन है। उनका सार नीचे लिखने का प्रयास यहाँ किया जाता है—

मन पर नियन्त्रण के लिए जहाँ एक ओर निरोधात्मक उपाय करने की आवश्यकता हैं वहीं दूसरी ओर विधेयात्मक उपाय भी आवश्यक है। मन में कुविचार, दुःस्वप्न, षड्विकार, नकारात्मक चिन्तन न आने देना निषेधात्मक (Preventive) उपाय हैं। वहीं दूसरी ओर सद्विचार, सकारात्मक चिन्तन, सत्संकल्प, शुभ संकल्प व सर्वमङ्गल की भावना का विकास आदि विधेयात्मक उपाय है। इन उपायों से मन स्वच्छ, शुभ, निर्मल व शुचि बनता है। मन को कभी खाली न छोड़े। उसे सदैव शुभ कार्यों व 'सर्वभूतहितेरता' की सद्भावना में व्यस्त रखे। साथ ही साथ प्रिय लगने वाली सांसारिक वस्तुओं व पदार्थों में अनासक्त भाव की शनैः शनैः वृद्धि करनी चाहिए। परमार्थ की भावना व सत्संग का विकास करते हुए संसार की क्षणभंगुरता में भी अटूट विश्वास रखना मन को दर्पणवत निर्मल बनाने में सहायक होता है। मन की अशुद्धि दूर करने के लिए उसे सन्मार्ग पर लगाना चाहिए। कर्म का नाश होने पर मन का नाश हो जाता है।

मन पर विजय अभ्यास और वैराग्य से प्राप्त किया जा सकता है। अभ्यास से तात्पर्य सावधान होकर निरन्तर अभ्यास करना है। दृढ़ अभ्यास के द्वारा मन आत्मा के साथ एकता का अनुभव करता है। पुरुषार्थ व ज्ञान द्वारा चित्त अच्छी तरह शान्त हो सकता है। सभी विषयों के प्रति अनास्था उत्पन्न करना चाहिए। अभ्यास से धीरे-धीरे स्वभाव डाला जाता है। जितना मन व शरीर सरलता से सह सके उतना ही प्रारम्भ में अभ्यास करे। फिर धीरे-धीरे उसे आगे बढ़ाए। उतना ही आगे बढ़ाएँ जिससे फिर पीछे न लौटना पड़े।

**शनैः शनैः उपरमेद्बुद्ध्याधृतिगृहीतया।।** गीता 6/25

शिवसंहिता 4/17 में अभ्यास का महत्त्व बताते हुए लिखा है—

**अभ्यासाज्जायते सिद्धिरभ्यासान्मोक्षमाप्नुयात्।**

वैराग्य से तात्पर्य विराग अर्थात् निर्ममत्व है। सांसारिक प्रपञ्चों में अनासक्त भाव रखना चाहिए। श्रीमद्भागवत 11/3/26 में मन को नियन्त्रित करने का उपाय प्राणायाम को बताया गया है। इसी में आगे भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं कि सत्त्वगुण मेरी प्राप्ति का साधन है। सत्त्वगुण की अधिकता से चित्त प्रसन्न होता है, इन्द्रियाँ शान्त होती है, मन अनासक्त होता है, और देह निर्भय होती है। रजोगुण के प्रदीप्त होने पर बुद्धि चंचल, इन्द्रियाँ असन्तुष्ट, कर्मेन्द्रियाँ विकार ग्रस्त, मन भ्रान्त और अस्वस्थ हो जाता है। भागवत 11/9/11 में वर्णन है कि आसन और श्वास को जीतकर वैराग्य और अभ्यास के द्वारा मन को अपने बश में कर ले—

**मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः।**
**वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः।।**

गीता में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को चंचल मन को वश में करने के लिए अभ्यास व वैराग्य का उपदेश दिया है—

**असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।**
**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।** 6/35

पतञ्जलि ने भी '**अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः**' 1/12 के द्वारा अभ्यास व वैराग्य से ही चित्त की वृत्तियों को निरोध करने की बात कही है।

इसलिए साधक को अपने अन्दर सत्त्वगुण का निरन्तर विकास करना चाहिए। इसके लिए सात्त्विक आहार, सत्कर्म, सद्चिन्तन, मन भगवान् में लगाने व श्रेष्ठ कर्मों का पालन करने से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है। तप से सत्त्व की प्राप्ति होती है और ज्ञान की प्राप्ति होने से मन अपने आप वश में हो जाता है। मन के वशीभूत होने पर आत्मा की प्राप्ति हो जाती है और आत्मा की उपलब्धि होने पर इस भवसागर से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

मन की गतिविधियों का निरीक्षण करके ही उससे मुक्त हुआ जा सकता है। योगकुण्डल्युपनिषद् 3/5 में कहा गया है—

**मनसा मन आलोक्य तत्त्यजेत्परमं पदम्।**
**मन एव हि बिन्दुश्च उत्पत्तिस्थितिकारणम्।।**

अर्थात् मन से मन को देखते हुए उस मन से मुक्त होने को परम पद

कहा गया है। मन ही बिन्दु अर्थात् ईश्वर है और वही संसार की उत्पत्ति एवं स्थिति का कारण है।

मन गुण का कार्य है। जब वह ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होता है तब बुद्धि कर्मों में प्रवृत्त होती है। जब निश्चयात्मिका बुद्धि अन्तर्मुखी होकर हृदय में स्थित होती है तब मन विशुद्ध हो जाता है। मन जब ध्यानजनित गुणों से सम्पन्न होता है तब वह उन समस्त शब्दादि गुणों को त्याग कर निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

मन जब राग रहित, अनासक्त, द्वन्द्व से मुक्त तथा निरालम्ब हो जाता है तब प्राणी भव बन्धन से मुक्त हो जाता है। महोपनिषद् में लिखा है—

**नीरागं निरुपासङ्गं निर्द्वन्द्वं निरुपाश्रयम्।**
**विनिर्याति मनो मोहाद्विहंगः पञ्जरादिव॥** 5/67

अब पुनः प्रश्न उठता है कि अभ्यास व निर्ममत्व के लिए क्या जानना व क्या करना चाहिए?

अभ्यास सतत सावधान होकर प्रयास करने को कहते हैं। **'तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः'** योगसूत्र 1-13 अर्थात् उन दोनों अभ्यास और वैराग्य में से चित्त की स्थिति में यत्न करना अभ्यास है। यह अभ्यास सद्गुरु के कुशल निर्देशन में करना चाहिए। यह अभ्यास योग के अन्तिम अङ्ग अर्थात् चरम स्थिति समाधि तक जारी रहना चाहिए। निर्ममत्व के लिए यह जानना और उस पर विश्वास करना आवश्यक है कि यह संसार नश्वर व क्षण भंगुर है। सभी सांसारिक वस्तुओं में भय है। वैराग्य ही अभय है।

**"सर्वं वस्तुभयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्"** (भर्तृहरि)।

भोग, सम्पत्ति, मान, पुत्र, दारा, भवन, देह सभी भय युक्त हैं। सभी नश्वर हैं। सभी मोह व आसक्ति के हेतु हैं। इन सभी में आसक्ति रखना आत्म साक्षात्कार (मोक्ष) में बाधक हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन 1-15 में वैराग्य की परिभाषा इस प्रकार की है—

**दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्॥**

अर्थात् दृष्ट और आनुश्रविक विषयों जैसे स्त्री, धन, अन्न, भवन, मान, यश, पुत्र, रूप, रस, गन्ध, देवलोक, सिद्धियाँ प्रभृति में तृष्णारहित हुए चित्त की वशीकरण अवस्था वैराग्य है।

योगवासिष्ठ में महर्षिवसिष्ठ ने भगवान् राम से कहा है कि शास्त्रों के श्रवण से, सज्जनों के सङ्ग से और परम वैराग्य से मन को पवित्र करो। चित्त शुद्धि के लिए शम, सन्तोष, साधुसङ्ग और विचार ये चार उपाय हैं। विचार से ही तत्त्व ज्ञान होता है और तत्त्वज्ञान से आत्मा में शन्ति आती है। इसीलिए गीता 6/26 में अस्थिर व चञ्चल मन को विषयों से बार-बार हटाकर (रोककर) परमात्मा में निरुद्ध करने का उपदेश दिया गया है।

आदि शंकर विवेकचूड़ामणि 364 में निरन्तर अभ्यास से मन को ब्रह्म में लीन करने का उपदेश देते हैं—

**निरन्तराभ्यासवशात्तदित्थं**
**पक्वं मनो ब्रह्मणि लीयते यदा।।**

अभ्यास से वैराग्य प्राप्त होगा, परन्तु एक दिन के अभ्यास से वैराग्य नहीं प्राप्त होगा। अभ्यास से शनैः शनैः जो वैराग्य प्राप्त होता है, वह स्थायी होता है। इसके लिए आवश्यक है कि—

1. मुक्ति की इच्छा वाला साधक अपने मन को विषयों से सदा दूर रखे।
2. सभी विषयों को अनित्य एवं भयदायक माने।
3. ईश्वर की अखण्ड सत्ता में विश्वास रखना। संशय व सन्देह को त्यागना।
4. सत्सङ्ग व स्वाध्याय में समय देना।
5. मन में किसी के प्रति पक्षपात न रखना
6. देहाभिमानी न होना। मनः कल्पित शरीर को मै और मेरा न मानना।
7. मन को द्वन्द्व रहित करना। अद्वैत भाव रखना।
8. अपने व परायेपन के संकीर्ण भाव को मिटाना, "**आत्मवत् सर्वभूतेषु**" का भाव रखना।
9. राग-द्वेष दोनों से मुक्त होना।
10. अपने को कर्ता और भोक्ता न मानना।
11. क्रोध का कोई निमित्त नहीं है, यह समझकर क्रोध न करना।
12. यज्ञ, दान, जप, तप, परोपकार, सेवा, सहायता, स्वाध्याय,

समभाव, सत्सङ्ग आदि से मन शुद्ध करना।

13. सदैव आत्म निरीक्षण करते हुए परमात्मा का चिंतन करना।
14. प्राणायाम से मनोनिग्रह करना।
15. प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास करना।
16. अहं भाव को त्यागना। अहंकारयुक्त प्राणी ही कष्टमय संसार रूपी वृक्ष का मूल कारण होता हैं।
17. सत्त्वगुण का विकास, सात्त्विक आहार व सात्त्विक विचार का अभ्यास। विचारों का संयम। गीता 17/8 में सात्त्विक आहार का वर्णन पठनीय है—

    **आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।**
    **रस्याः स्निग्धा· स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥**
18. मन को सत्कार्यों व सद्विचारों में सदैव व्यस्त रखे।
19. परमार्थ चिन्तन व सकारात्मक चिन्तन करना।
20. सांसारिक प्रपञ्चों, भोग-विलासों आदि में अनासक्त भाव व वैराग्य की भावना का शनैः शनैः विकास करना।
21. सत्य का जीवन में पालन करें। **मनः सत्येन शुध्यति**— शंखस्मृति, वसिष्ठस्मृति। अर्थात् सत्य से मन पवित्र होता है।
22. भावना के अभाव मात्र से संकल्प अपने आप क्षीण हो जाता है।
23. मनोनिग्रह में परमात्मा का ध्यान प्रभावी साधन है।
24. गायत्री महामंत्र का जप व ॐकार का जप मनोनिग्रह में सहायक होता है। गायत्री महामंत्र—

    **ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।**
    **धियो यो नः प्रचोदयात्।** ऋग्वेद 3/62/10
25. **'प्रतिपक्ष-भावनम्'** अर्थात् जब मनोनिग्रह में बाधक विचार उठते हों तो विपरीत विचारों का आश्रय लेना चाहिए—महर्षि पतञ्जलि।
26. मन की दो वृत्तियाँ हैं—इदम् वृत्ति में वह अनात्म दर्शन करता है और अहम् वृत्ति में वह आत्म दर्शन करता है—महर्षिरमण

27. **मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्**—योगदर्शन 1/33

अर्थात् सुखी, दुःखी, पुण्यात्मा और पापात्माओं के प्रति क्रमशः मित्रता, दया, प्रसन्नता और उपेक्षा की भावना से चित्त शुद्ध होता है।

महोपनिषद् में कहा गया है कि सम्पूर्ण पराक्रम और साहस द्वारा मन को जीतने का प्रयास व उपाय करे। इस संसार सागर को पार करने के लिए मन पर विजय प्राप्त करने से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है। शास्त्रानुकूल आचरण से, अनुभवजन्य ज्ञान प्रकाश से तथा विवेक बुद्धि से मन रूपी पिता परमसिद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है।

**स्वालोकतः शास्त्रदृशा स्वबुद्ध्या स्वानुभावतः।**
**प्रयच्छति परां सिद्धिं त्यक्त्वात्मानं मनः पिता॥**

महोपनिषद् 5/81

विवेकचूड़ामणि में शंकराचार्य मुक्ति (मोक्ष) के लिए मन के शोधन का उपदेश देते हैं—

**तन्मनः शोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षुणा।** 183

उत्पत्ति, पालन एवं प्रलय की अवस्था में, प्रगति तथा अवनति में जिस पुरुष का मन समान रहता है वही जीवन्मुक्त कहलाता है—

**जन्मस्थितिविनाशेषु सोदयास्तमयेषु च।**
**सममेव मनो यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते॥**

महोपनिषद् -2/59

महाभारत में राजा अलर्क ने कहा है कि मन को एकाग्र करके, निश्चल होकर योग में स्थित होकर सभी इन्द्रियों के विषयों पर व इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किया जा सकता है—

**स एकाग्रं मनः कृत्वा निश्चलो योगमास्थितः।**
**इन्द्रियाणि जघानाशु बाणेनैकेन वीर्यवान्॥** अनुगीतापर्व 30/28

शिवसंकल्पोपनिषद् में मन का बड़ा सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। उसमें मन को अविनाशी, इन्द्रियों का प्रकाशक और बड़ा सामर्थ्यवान बताते हुए उसे श्रेष्ठ संकल्पों से युक्त होने की कामना की गई है।

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च**
**यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।**

**यस्मान्न ऋते किञ्चनकर्म क्रियते**
**तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।** यजुर्वेद 34/3

ऋषि प्रार्थना करता है कि अन्तःकरण-मन-चित्त-विचार समान हों। सब में ऐक्यभाव हो।

लंकावतार सूत्र में लिखा है कि—

**चित्ते तु वै परावृत्ते न यानं नो च यायिनः।**

अर्थात् मन जब अपने स्वाभाविक आवास में वापस आ जाता है तब न कोई पथ रहता हैं और न कोई पथिक।

मनोविज्ञान की दृष्टि से मन की चार अवस्थाएं बताई गईं हैं। स्थूलशरीर चेतन मन का, सूक्ष्मशरीर अचेतन मन का, कारणशरीर अवचेतन मन का और महाकारणशरीर अतिचेतन मन का प्रतिनिधित्व करता है।

महाभारत शान्तिपर्व 253/13 में लिखा है कि जड स्थूलशरीर, अमूर्त सूक्ष्मशरीर तथा वज्रतुल्य सुदृढ़ कारणशरीर ये जो तीन प्रकार के शरीर हैं इन्हें आत्मा को प्राप्त करने की इच्छा वाले व जितेन्द्रिय, शान्त मन वाले योगीजन योगयुक्त होकर लाँघ जाते हैं।

वाग्भट के अष्टाङ्गसूत्र 1/21 में रजोगुण व तमोगुण को मन का दोष बताया गया है—

**रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषावुदाहृतौ।**

इसलिए व्यक्ति को अपने अन्दर सत्त्वगुण का विकास निरन्तर करना चाहिए, ताकि मन दूषित न हो। जिन वस्तुओं व विचारों व कार्यों से रजोगुण का विकास होता हो उनसे दूर होना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है कि मन से किया गया पाप ही पाप है, शरीर से किया गया नहीं। जैसे पुत्री को आलिंगित किया जाता है वैसे ही पत्नी को आलिंगित किया जाता है, परन्तु दोनों के आलिङ्गन में मन का भाव अलग-अलग है। एक में वात्सल्य भाव है तो दूसरे में रति भाव (शृङ्गार) है।

**मनसैव कृतं पापं न शरीरकृतं कृतम्।**
**येनैवालिङ्गिता कान्ता तेनैवालिङ्गिता सुता।।**

योगवासिष्ठ में मन को ही कर्ता माना गया है, शरीर को नहीं—

**मनःकृतं कृतं लोके न शरीरकृतं कृतम्।**

उत्पत्ति प्रकरण 89/1

मन से परमात्मा को जानना सम्भव नहीं है। केनोपनिषद् 1/5 कहता है कि मन से ब्रह्म का मनन नहीं किया जा सकता, बल्कि मन उसकी महिमा से मनन करता है। मन से मनन कर जिसकी लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म नहीं है।

**यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥**

तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णन है कि मन के साथ वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ उसे न पाकर जहाँ से लौट आती हैं, उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला किसी से भय नहीं करता।

**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।**

ऐसा ही वर्णन श्रीमद्भागवत 3/6/40 में मिलता है—

**यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह।**

बृहदारण्यक 3/4/2 में भी याज्ञवल्क्य ने कहा है कि 'न मतेर्मन्तारं मन्वीथा' अर्थात् मति के मन्ता का मनन नहीं किया जा सकता।

इसी में आगे 3/7/23 में कहा है कि आत्मा मनन का विषय न होने वाला किन्तु मनन करने वाला है।

इससे स्पष्ट हुआ कि मन की गति, ब्रह्म तक नहीं है। ब्रह्म अवाङ्मनसगोचर है। वेदान्तसार में सदानन्दयोगीन्द्र ने लिखा है कि—

**अखण्डं सच्चिदानन्दमवाङ्मनसगोचरम्।**
**आत्मानमखिलाधारमाश्रयेऽभीष्टसिद्धये॥** 1/1

ब्रह्म द्वारा प्रेरित होकर ही यह मन अपने विषयों तक पहुँचता है और मन की मनन क्षमता में ब्रह्म ही कारण है।

**श्रोत्रस्य श्रोतं मनसो मनो यद्**

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि मन के मनत्व का कारण ब्रह्म है, तो वह मन ब्रह्म को क्यों नहीं जान सकता ? समाधान यह है कि मन के विषय अलग-अलग पदार्थ हैं। ब्रह्म मन का विषय है ही नहीं। ब्रह्म को मन से अधिक वेगवान् बताया है। अर्थात् मन की गति से ईश की गति तेज है।

**अनेजदेकं मनसो जवीयो** —ईशावास्योपनिषद् 4

मन अपने से सम्बन्धित विषयों को जो जानता है या उनका मनन करता है, उसमें कारण ब्रह्म ही है, परन्तु ब्रह्म मनका विषय नहीं है। इसीलिए

कठोपनिषद् में कहा गया है इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय अधिक श्रेष्ठ हैं, विषय से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि और बुद्धि से भी उत्कृष्ट यह महान् आत्मा है।

**इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।**
**मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥**

कठोपनिषद् 1/3/10, महा0शा0पर्व 246/3

इसीलिए आगे कहा गया है कि प्रज्ञावान् व्यक्ति के लिए उचित है कि वह वाक् आदि इन्द्रियों को मन में लीन करे, मन को बुद्धि में निरुद्ध करे और बुद्धि को महान् तत्त्व आत्मा में विलीन करे और अन्त में उस आत्मा को परमपुरुष परमात्मा में नियोजित करें।

योगवासिष्ठ उपशम प्रकरण 92/35 में अध्यात्मविद्या की प्राप्ति, साधु सङ्गति, वासना का त्याग और प्राणायाम द्वारा चित्त पर विजय प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है।

ब्रह्मपुराण में मन से नेत्र तथा कर्ण की रक्षा करने तथा कर्म से मन व वाणी की रक्षा करने का उपदेश दिया गया है। सावधानी से भय का त्याग करे व विद्वान की सेवा से दम्भ का त्याग करे।

**चक्षुः श्रोत्रं च मनसा मनो वाचं च कर्मणा।**
**अप्रमादाद् भयं जह्याद्दम्भं प्राज्ञोपसेवनात्॥** 236/42

महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्मपर्व में भी ऐसा ही मन के बारे में वर्णन मिलता है—

**इन्द्रियेभ्यो मनः पूर्वं बुद्धिः परतरा ततः।**
**बुद्धेः परतरं ज्ञानं ज्ञानात् परतरं महत्॥** 204/10

अर्थात् इन्द्रियों से मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है। बुद्धि से ज्ञान श्रेष्ठतर है और ज्ञान से परात्पर परमात्मा श्रेष्ठ है।

**अव्यक्तात् प्रसृतं ज्ञानं ततो बुद्धिस्ततो मनः।**
**मनः श्रोत्रादिभिर्युक्तं शब्दादीन् साधु पश्यति॥** 204/11

अव्यक्त परमात्मा से ज्ञान प्रसारित हुआ है। ज्ञान से बुद्धि और बुद्धि से मन प्रकट हुआ है। वह मन ही श्रोत्रादि इन्द्रियों से युक्त होकर शब्दादि विषयों का भलीभाँति अनुभव करता है।

इस प्रकार कोई इन्द्रिय अपने विषयों का अनुभव तब तक नहीं कर

सकती, जब तक, मन उस इन्द्रिय से संयुक्त न हो। शब्द आदि विषय, आकाश आदि भूत तथा श्रोत्रादि इन्द्रियाँ सब मन के अनुगामी हैं। मन बुद्धि का अनुसरण करता है और बुद्धि आत्मा का आश्रय लेकर रहती है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि जब मन से परमात्मा नहीं जाना जा सकता, तो श्रुति क्यों कहती है कि **मनसैवानुदष्टव्यम्**—अर्थात् मन से ब्रह्म को देखना चाहिए। मुण्डकोपनिषद् 1/9 में यह क्यों कहा गया है कि सूक्ष्म आत्मा मन के द्वारा जानने योग्य है।

**एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो।**

ब्रह्मपुराण 236/17 में **'मनसा तु प्रदीप्तेन महानात्मा प्रकाशते'** ऐसा क्यों कहा गया है?

इसका समाधान है कि यहाँ पर मन का तात्पर्य शुद्ध मन से है। ऐसा ही विमर्श ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में प्राप्त होता है। शुद्ध मन का तात्पर्य कामविवर्जित मन और साधन चतुष्टय (विवेक, वैराग्य, शमादि और मुमुक्षुत्व)'' **साधनानि नित्यानित्यवस्तुविवेकेहामुत्रार्थफलभोगविरागशमादिषट्कसम्पत्तिमुमुक्षुत्वानि**—वेदान्तसार खण्ड 8) से युक्त मनसे है। यहाँ मन से तात्पर्य उस मन से है जिसके नियन्त्रित हो जाने पर भगवान् उसे अपने में एकाग्र करने का उपदेश देते हैं।

**मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।**

गीता 12/8

अब पुनः प्रश्न उठता है कि मन को शुद्ध मन कैसे बनाया जाय? इसका समाधान है कि यज्ञ , दान, दया, वेदाध्ययन, सत्यभाषण, सेवा, परोपकार, सत्सङ्ग, जप, तप, ध्यान आदि से मन शुद्ध होता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि—

**यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।**
**यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।** 18/5

अर्थात् यज्ञ, दान और तप त्याग करने योग्य नहीं हैं, अपितु यह तो आवश्यक कर्तव्य हैं, क्योंकि यज्ञ, दान और तप ये तीनों ही कर्म मनीषियों को पवित्र और शुद्ध करने वाले हैं। श्रुति कहती है कि तप से ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान प्राप्ति से मन वश में होता है, मन के वश में होने से आत्मा की प्राप्ति होती है और आत्म ज्ञान से मोक्ष मिल जाता है—

**तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात्संप्राप्यते मनः।**

**मनसा प्राप्यते ह्यात्मा ह्यात्मापत्त्या निवर्तते।।**

मैत्रेय्युपनिषद् 1/6

श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/6 में मन को शुद्ध करने के उपायों के बारे में लिखा है कि जहाँ अग्नि का मंथन किया जाता है, जहाँ प्राणवायु का निरोध किया जाता है, जहाँ सोमरस का प्रखर आनन्द प्रकट होता है वहाँ मन सर्वथा शुद्ध हो जाता है—

**अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राभियुज्यते।**
**सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः।।**

मन को शुभ (शिव) संकल्पों से युक्त करना चाहिए। मनको सुमन बनाना चाहिए। मन से नकरात्मक भाव को निकाले बिना वह सुमन नहीं हो सकता। शुद्ध व पवित्र अन्तःकरण से श्रेष्ठ मन का निर्माण होता है। सद् चिन्तन से मन निर्मल बनता है।

ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि संकल्प से मन को हटाकर आत्मा में धारण करे। पाँचों इन्द्रियों को मन से स्थापित करे। जब मन सहित पाँचों इन्द्रियाँ आत्मा में स्थित हो जाती हैं तब ब्रह्म का प्रकाश प्राप्त होता है। अर्थात् ब्रह्म की अनुभूति होती है।

इसी में आगे कहा गया है कि मन और इन्द्रियों की एकाग्रता परम तप है। वही परम धर्म है तथा सभी धर्मों से श्रेष्ठ है—

**मनश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं परमं तपः।**
**विज्ञेयः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः परं उच्यते।।** 248/18

पंचदशी दीपप्रकरण 103 में कहा गया है कि जिसका मन वासनारहित है उसे नैष्कर्म्य से कोई प्रयोजन नहीं है और न कर्म से, न समाधि, जप आदि से।

**नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः।**
**न समाधान जपाभ्यां यस्य निर्वासनं मनः।।**

मन का निग्रह करने के लिए महाभारत में कहा गया है कि इन्द्रियों के विषयों से बुद्धि के द्वारा अपने मन को रोकना चाहिए।

**तस्मादिन्द्रियरूपेभ्यो यच्छेदात्मानमात्मना।**

महा०शा०पर्व मोक्षधर्म पर्व

मन से जो सूक्ष्म है उससे मन का जुड़ना ही योग है। मन का बुद्धि से, मन का अहंतत्त्व जुड़ना मनोबुद्धि योग ही योग है। मन अपदार्थ व सूक्ष्म

है। मन स्थूल तत्त्व न होकर अदृश्य है। योग में सूक्ष्म मन अतिसूक्ष्म आत्मा से जुड़ जाता है।

योगवासिष्ठ उपशमप्रकरण में विवेक, वैराग्य, गुरुसंनिधि, प्रयत्न और मन्त्र आदि स्वतन्त्र उपायों द्वारा आत्मसिद्धि प्राप्त करने का उपदेश है।

दक्षस्मृति 7/15 में कहा है कि विश्व प्रपञ्च से मन को सर्वथा मुक्त कर क्षेत्रज्ञ को मन को परमात्मा में लीन कर देना चाहिए। दोनों का एक भाव हो जाने से साधक मुक्त हो जाता है। इसमें मन तद्रूप हो जाता है—

**वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि।**
**एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते॥**

विषय भोगों का त्याग कर देने पर मन निश्चल (स्थिर) हो जाता है—

**त्यक्त्वा विषयभोगांश्च मनो निश्चलतां गतम्।**

दक्षस्मृति 7/21

ऐसे ही मन को श्रुतियों में अमनस्क स्थिति कहा गया है। इसी का नाम मनोलय है। महाभारत में इसी को वैमन (मन रहित) कहा गया है। महोपनिषद् में इसे विमनस्क बताया गया है। अष्टावक्रगीता में (18/47) इसे युक्तमानस कहा गया है। इसके ज्ञान से मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यह अत्यन्त रहस्यमय है।

**इदममनस्कमतिरहस्यम्।**
**यज्ज्ञानेन कृतार्थो भवति।** मंडलब्राह्मणोपनिषद् 3/1/2

इसी में आगे ऐसे मन को परमाकाश में पूर्ण रूप से मग्न मन की संज्ञा दी गई है। जो मन समस्त इन्द्रिय वर्ग से विमुक्त हो जाता है, उसे उन्मनी अवस्था प्राप्त हो जाती है। तब वह अखण्डानन्द (परमानन्द) प्राप्त कर लेता है।

योग का प्रतिपाद्य मन है। मन में ही योग साधा जाता है। योग की धुरी मन है। उपदेशसाहस्री 15 में आद्यशंकराचार्य कहते हैं कि **नष्टमानसोत्कृष्ट योगिनः कृत्यमस्ति किं स्वस्थिति यतः।** अर्थात् जिसके मन का नाश हो गया है वह सर्वश्रेष्ठ योगी है। जो मन अनेकता सिद्ध करता है वह कलुषित मन है जो मन अनेकता में एकता पहचानता है वह सुसंस्कृत मन है। अतः मन को स्वरूप में रखना योग है। योगी मनस्वी व यशस्वी होता है।

मन शरीर का नयन और नियमन दोनों करता है। अर्थात् वह शरीर का नेता और नियामक (नियन्त्रक) दोनों है। शरीर के शिथिल होने पर भी मन

की गति (वेग) कम नहीं होती।

महोपनिषद् में कहा गया है कि मन जब वासना का सम्पूर्ण रूप से परित्याग कर देता है तब वह निर्मल व शान्त हो जाता है। इसी को प्रशान्तधी कहा गया है। गीता 6/27 में इसे ही प्रशान्तमनस् पद से अभिहित किया गया है। यह शान्तरजस्, अकल्मष (पाप रहित) होकर ब्रह्मभूत हो जाता है।

इसीलिए वेदों में मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने ईश्वर से मन को सुमन बनाने, मन और वाणी में ऐक्य रहने की प्रार्थना की है—

**भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।**

ऋग्वेद 10/25/1

हे प्रभु। हम सबको कल्याणकारक मन, कल्याणकारक बल और कल्याणकारक कर्म प्रदान करो। ऋग्वेद से सम्बद्ध उपनिषद् "आत्मबोधोपनिषद्" के प्रारम्भ में ऋषि ने परमात्मा से कामना की हैं कि—

**ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्यएधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीते।**

अर्थात् मेरी वाणी मन में और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो। हे प्रभु! आप मेरे समक्ष प्रकट हों। हे परमात्मन्! मुझे वेद विषयक ज्ञान दे। मैं पूर्वश्रुत ज्ञान को विस्मृत न करूँ।

श्वेताश्वतरोपनिषद् 3/4 में ऋषि द्वारा परमात्मा से कल्याणकारी बुद्धि से संयुक्त करने की प्रार्थना की गई है—

**हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।**

परमतत्त्व के बोध होने पर, आत्म साक्षात्कार होने पर मन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अर्थात् मन आत्मा में विलीन हो जाता है। अवधूतगीता की मन के बारे में निम्न पंक्तियाँ पठनीय हैं—

**मनो वै गगनाकारं मनो वै सर्वतोमुखम्।**
**मनोऽतीतं मनः सर्वं न मनः परमार्थतः॥** 1/9

अर्थात् मन आकाश स्वरूप हैं, मन सर्वतोमुखी है। मन अतीत है। परमतत्त्व की अनुभूति होने पर कोई मन नहीं रहता। मन अमन हो जाता है। मन अमनस्क स्थिति में हो जाता है।

इस प्रकार तत्त्वबोध से मन में अमनीभाव हो जाता है। इसे ही

संकल्पशून्यत्व कहते हैं, इसके होने पर द्वैत की उपलब्धि नहीं होती।

इस प्रकार व्यक्ति के जीवन निर्माण में मन का सर्वाधिक महत्त्व व भूमिका है। ज्ञान की प्रतिष्ठा और स्फूर्ति मन में ही होता है। मन को शुभ संकल्प वाला, सत्य संकल्प वाला और शुचि संकल्प वाला बनाने की आवश्यकता है। तभी मन सुमन होगा, तभी मन अमनस्क होगा, तभी मन अमन होगा और तभी मन वैमन और विमनस्क होगा, और ऐसा ही मन आत्मसाक्षात्कार का कारण बनता हैं। जो कि मानव जीवन का एक मात्र लक्ष्य है।

स्वामी विवेकानन्द ने सरल राजयोग में कहा है "मन की एकाग्रता ही समस्त ज्ञान का उद्‌गम है। मन चेतना में और उसके नीचे के स्तर में कार्य करता है। इम लोग जिसे चेतना कहते हैं, वह हमारे स्वरूप की अनन्त शृंखला की एक कड़ी मात्र है। जिसे हम मन कहते हैं, शरीर उसी का बाह्य रूप है। आत्मस्वरूप हम शरीर और मन दोनों से परे हैं। हम आत्मा हैं— नित्य, अविकारी, साक्षी। शरीर विचार-शक्ति का घनीभूत रूप है।"

इस प्रकार मन को तपाने से उसका उन्नयन और निर्मलीकरण होता है। उन्नत और निर्मल मन ही मोक्ष प्राप्त कराता है।

ॐ

# योग के अङ्ग

योगाभ्यास में अचिन्तनीय शक्ति, अगाध गाम्भीर्य और अद्‌भुत रहस्य निहित है। योग का बल व तेज अलौकिक है। सामान्य रूप से योग को अष्टाङ्ग कहा गया है। अर्थात् योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि कुल आठ अङ्ग होते हैं। किन्तु कुछ ग्रन्थों में योग को षडङ्ग अर्थात् छः अङ्गों वाला भी कहा गया है। इसमें दो प्रकार के विभाजन हैं। एक मत में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये छः अङ्ग योग के हैं तो दूसरे मत में ध्यान व समाधि को साध्य मानकर केवल यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा को ही योग के छः अङ्ग मानते हैं। इस मत के अनुसार ध्यान और समाधि योग के साधन न होकर लक्ष्य या साध्य हैं। अतः उनकी गणना योगाङ्गों में नहीं होनी चाहिए। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि योग के अङ्गों में क्रमशः पूर्व अङ्ग की सिद्धि (जय) होने पर उसके बाद वाले (पर) अङ्ग की सिद्धि होती है। उदाहरण स्वरूप बिना आसन सिद्ध हुए प्राणायाम सफल नहीं होता। योग के आठ अङ्गों के अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय होता है, ज्ञान का प्रकाश और विवेकख्याति की प्राप्ति होती है—

**योगाङ्गाऽनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरविवेकख्यातेः।**

—पातञ्जलयोग 2/28

अर्थात् योग के आठ अङ्गों के द्वारा क्लेश रूपी अशुद्धि नष्ट होती है और यह विवेक ज्ञान का साधन है।

नीचे अष्टाङ्ग योग व षडङ्ग योग के मानने वाले ग्रन्थों को नीचे अलग-अलग दर्शाया जा रहा है :—

## अष्टाङ्ग योग मानने वाले ग्रन्थ

1. पातञ्जलयोगसूत्र
2. दत्तात्रेय योगशास्त्र
3. सिद्धसिद्धान्तपद्धति

4. मण्डलब्राह्मणोपनिषद्
5. जाबालदर्शनोपनिषद्
6. वराहोपनिषद्
7. योगतत्त्वोपनिषद्
8. शिवमहापुराण
9. शिवयोगदीपिका
10. शाण्डिल्योपनिषद्
11. भागवतमहापुराण
12. नारदीयपुराण
13. शिवसंहिता
14. योगसारसंग्रह
15. निरालम्बोपनिषद्
16. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्
17. लिङ्गमहापुराण
18. कूर्मपुराण
19. गरुडपुराण
20. योगियाज्ञवल्क्य
21. श्रीविष्णुपुराण
22. अग्निपुराण
23. योगरत्नावली
24. ब्रह्मपुराण
25. वैखानसस्मार्तसूत्र
26. महाभारत (शान्तिपर्व)
27. स्कन्दपुराण
28. वायुपुराण
29. दर्शनोपनिषद्
30. वामनपुराण
31. देवीभागवतपुराण
32. सौरपुराण
33. अद्वैतमार्तण्ड

## षडङ्ग योग मानने वाले ग्रन्थ

1. ध्यानबिन्दूपनिषद्
2. योगचूडामण्युपनिषद्
3. गोरक्षसंहिता
4. योगमार्तण्ड
5. अमृतनादोपनिषद्
6. क्षुरिकोपनिषद्
7. शिवमहापुराण
8. योगरत्नावली
9. अत्रिस्मृति
10. दक्षस्मृति
11. अपरार्कस्मृति
12. याज्ञवल्क्यस्मृति
13. अमनस्क योग
14. अवधूतगीता
15. आदिपुराण

योगराजोपनिषद् में योग की चार विधियाँ बताई गयी हैं—

1. आसन
2. प्राणसंरोध
3. ध्यान
4. समाधि

घेरण्डसंहिता में योग के सात अङ्ग बताए गए हैं।

योगवासिष्ठ में योग की तीन विधियाँ वर्णित हैं—

1. एक तत्त्व की दृढ़ भावना
2. मन की शान्ति
3. प्राणस्पन्दन निरोध अर्थात् प्राणायाम

वात्स्यायनकृत न्यायभाष्य में योग के पाँच अङ्ग तप, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान बताये गए हैं।

शिवमहापुराण व योगरत्नावली में योग को अष्टाङ्ग और षडङ्ग दोनों बताया गया है।

तेजोबिन्दूपनिषद् में योग के निम्नलिखत पन्द्रह अङ्ग बताये गए हैं—

1. यम 2. नियम 3. त्याग 4. मौन 5. देश 6. काल 7. आसन 8. मूलबन्ध 9. देहसाम्य 10. दृक्स्थितिः 11. प्राणसंयमन 12. प्रत्याहार 13. धारणा 14. आत्मध्यान 15. समाधि

इसमें त्याग और मौन को नियमों में, देश, काल, देहसाम्य व दृक् स्थिति को आसन में और मूलबन्ध को प्राणायाम में सम्मिलित कर सकते हैं। प्राणसंयमन प्राणायाम का पर्यायवाची और आत्मध्यान शब्द ध्यान के अन्तर्गत आ जाएगा।

ॐ

# यम

जाति, देश, काल और समय से निरपेक्ष यम का सार्वभौम महत्त्व है। पतञ्जलि ने यम को महाव्रत कहा है। अपने-अपने विषयों से इन्द्रियों को हटाकर शान्ति प्राप्ति ही यम है। यम यावज्जीवन करणीय होते हैं।

अमरकोश 2/7/49 में यम की परिभाषा में लिखा है—**'शरीर साधानापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः'** अर्थात् शरीर मात्र से साध्य नित्य कर्म यम है। इस प्रकार यम उस नित्य कर्म को कहते हैं, जो शरीर साधना सापेक्ष हो। मनुस्मृति 4/204 में **'यमान्सेवेत् सततं न नित्यं नियमान्बुधः'** कह कर यमों को नित्य पालन करने का निर्देश है और उसे नियमों से अधिक महत्त्वपूर्ण व पालनीय बताया गया है। यम बहिरिन्द्रिय नियामक है।

मण्डलब्राह्मणोपनिषद् 1/3 के अनुसार **"शीतोष्णाहारनिद्राविजयः सर्वदा शान्तिर्निश्चलत्वं विषयेन्द्रियनिग्रहश्चैते यमाः"**—शीतगर्मी, आहार एवं निद्रा पर विजय प्राप्त करना, सर्वदा शान्त रहना और निश्चल होकर इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना यम है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 28 में कहा गया है **देहेन्द्रियेषुं वैराग्यं यम इत्युच्यते बुधैः**। शरीर और इन्द्रियों के प्रति वैराग्य भावना ही यम कहलाती हैं।

तेजोबिन्दूपनिषद् में यम का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

**सर्वं ब्रह्मेति वै ज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः।**
**यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः॥**

अर्थात् यह सब कुछ ब्रह्म है, इस ज्ञान से इन्द्रियों का संयम करना यम है। श्रीमद्भागवत 11/10/5 में यमों का सतत सेवन करने का निर्देश है। अथर्ववेद 4/34/3 में लिखा है कि यमों के पालन से ही मनुष्य आत्म ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

श्रीमद्भागवत में बारह यम बताए गए है। वे हैं—

1. अहिंसा
2. सत्य

3. अस्तेय
4. असङ्गता
5. असंचय
6. आस्तिकता
7. ब्रह्मचर्य
8. मौन
9. स्थिरता
10. क्षमा
11. लज्जा
12. अभय

जबकि कूर्मपुराण, शिवमहापुराण, स्कन्दपुराण, श्रीविष्णुपुराण और अग्निपुराण में यम की संख्या पाँच बतायी गयी है। शौच व आस्तिकता को कहीं यम के अन्तर्गत रखा है तो कहीं पर नियमों के अन्तर्गत।

योगतत्त्वोपनिषद् में यमों में सूक्ष्म आहार एवं नियमों में अहिंसा को प्रमुख बताया गया है। देवीभागवत, वराहोपनिषद् शाण्डिल्योपनिषद्, त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् व योगरत्नावली में यम व नियम की संख्या दस-दस बताई गई है। दस यम इस प्रकार हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धैर्य, अल्पाहार, पवित्रता। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में चार यम **'शीतोष्णाहारनिद्राविजयः, सर्वदा शान्तिः, निश्चलत्वम्, विषयेन्द्रिय-निग्रहश्चैते यमाः'** बताए गए हैं। 1/1/3 पारस्करगृह्यसूत्र 2/7 में 10 यम आनृशंस्य, क्षमा, सत्य, अहिंसा, दम, ऋजुता, प्रीति, प्रसाद, माधुर्य और मृदुता बताये गए हैं।

श्रीमद्भागवत में वर्णित बारह यमों एवं अन्य ग्रन्थों में वर्णित धैर्य, आर्जव शौच आदि का विवेचन नीचे किया जा रहा है—

**1. अहिंसा :**

**कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।**
**अक्लेशजननं प्रोक्तं त्वहिंसा परमर्षिभिः।**

ईश्वरगीता 11/14

मन, वाणी और कर्म से सभी प्राणियों को सर्वदा कष्ट न देना अहिंसा कहा जाता है।

अहिंसा का पालन तभी सम्भव है जब साधक यह भाव मन में रखे कि एक ही आत्मा तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। गीता में भगवान् ने अहिंसा को दैवी सम्पदा और साक्षात् ज्ञान बताया है। अहिंसा धर्म का प्रधान लक्षण है। अहिंसा के पालन करने पर योगी से सभी प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं। भागवत में हिंसा को तमोगुण की वृत्ति कहा गया है। धर्म के सभी साधन अहिंसा में गतार्थ माने जाते हैं। अहिंसा महाव्रत है। श्रुतियों में अहिंसा को परम धर्म कहा गया है। मनुस्मृति 6/74 में लिखा है कि अहिंसा, इन्द्रिय संयम, विषयों के परित्याग आदि से योगी ब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं।

लिङ्गपुराण 8/11 में अहिंसा को आत्मज्ञान की सिद्धि देने वाला कहा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण पू0 30/35 में अहिंसा को धर्म का द्वार कहा है। मनुस्मृति 2/159 में लिखा है कि अहिंसा के द्वारा प्राणियों के कल्याण की इच्छा रखनी चाहिए। भागवत 11/16/23 में भगवान् ने अपने को व्रतों में अहिंसा व्रत कहा है।

**2. सत्य :**

भागवत 11/19/37 में **'सत्यं च समदर्शनम्'** अर्थात् सर्वत्र समस्वरूप, सत्य स्वरूप परमात्मा का दर्शन ही सत्य है।

सत्य का अर्थ है मन, वचन और कर्म की एकता। सत्य के ऊपर ही सम्पूर्ण जगत् व उसका व्यवहार आश्रित हैं। सत्य सदैव प्रिय व हितकर भी होना चाहिए। सत्य ही शिव व सुन्दर होता है। सत्य का लक्षण इस प्रकार है—

**चक्षुरादीन्द्रियैर्दृष्टं श्रुतं घ्रातं मुनीश्वर।**
**तस्यैवोक्तिर्भवेत्सत्यं विप्र तन्नान्यथा भवेत्॥**
**सर्वं सत्यं परं ब्रह्म न चान्यदिति या मतिः।**
**तच्च सत्यं वरं प्रोक्तं वेदान्तज्ञानपारगैः॥**

जाबालदर्शनोपनिषद् 1/9-10

चक्षु आदि इन्द्रियों के माध्यम से जो जिस रूप में देखा जाय, सुना जाय, सूँघा जाय, उसको उसी रूप में वाक् आदि इन्द्रियों के माध्यम से व्यक्त करना ही सत्य है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई सत्य नहीं है। सम्पूर्ण सत्य परब्रह्म परमात्मा ही है। उसके अतिरिक्त कुछ सत्य नहीं है। ऐसा दृढ़ निश्चय रखना सर्वश्रेष्ठ सत्य है। तैत्तिरीयोपनिषद् में **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'**

कह कर ब्रह्म को सत्य स्वरूप बताया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में भी **'सत्यं ब्रह्मेति सत्यं ह्येव ब्रह्म'** कहा गया है। सत्य के अच्छी प्रकार पालन से साधक की वाणी सफल व अमोघ हो जाती है। मुण्डकोपनिषद् 3-1-6 में सत्य की महिमा में लिखा है कि सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं—

**सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।**

गरुडपुराण 41/4 में लिखा है कि सत्य से पवित्र वाणी ही बोले और बुद्धि से पवित्र ही चिन्तन करे—**सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं च चिन्तयेत्।** महाभारत आदिपर्व 93/25 में कहा है कि सत्य से पृथ्वी व द्युलोक टिके हुए हैं। मनुष्यों में सत्य से ही अग्नि जलती है। **सत्येन वै द्यौश्च वसुन्धरा च तत्रैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु।** मनुस्मृति 8/83 में कहा है कि सत्य से धर्म बढ़ता है, सत्य से वाणी की शक्ति बढ़ती है। गीता 17/15 में सत्य और प्रिय वाणी को वाणी सम्बन्धी तप कहा है। महाभारत शा0पर्व 162/5 में सत्य को धर्म, तप, योग और परमब्रह्म कहा गया है।

**'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'** कह कर अप्रिय सत्य न बोलने का भी उपदेश शास्त्रों में मिलता है।

## 3. अस्तेय : ( अचौरवृत्ति )

**अस्तेयं नाम मनोवाक्कायकर्मभिः परद्रव्येषु निःस्पृहता।**

शाण्डिल्योपनिषद्प्रथमोऽध्याय

अर्थात् मन, वचन, शरीर और कार्य द्वारा दूसरों के धन-साधनों के प्रति निस्पृह रहना अस्तेय है। मनुस्मृति 10/62 में अस्तेय को चारों वर्णों के लिए आचरणीय धर्म बताया गया है।

**अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रबीन्मनुः॥**

पतञ्जलि ने योगसूत्र 2/37 में **'अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्'** कहा है। अर्थात् अस्तेय में प्रतिष्ठित होने पर समस्त रत्न साधक को दृष्टिगोचर हो जाते हैं। योगसूत्र व्याख्या में वाचस्पति मिश्र ने स्तेय की परिभाषा देते हुए लिखा है—**'स्तेयमशास्त्रपूर्वकद्रव्याणां परतः स्वीकारणम्'** अर्थात् किसी की सम्पत्ति ले लेना जो शास्त्र सम्मत न हो।

## 4 ब्रह्मचर्य :

हिन्दू समाज व्यवस्था में प्रतिपादित चार आश्रमों में से पहला आश्रम ब्रह्मचर्य है। ईश्वरगीता 11/18 में ब्रह्मचर्य की परिभाषा इस प्रकार है—

**कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।**
**सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥**

अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति सर्वत्र मन, वाणी व कर्म से मैथुन त्याग ब्रह्मचर्य है। अष्टविध मैथुन से ब्रह्मचर्य में बचने का व्रत लेना चाहिए। ब्रह्म अर्थात् स्वात्मा में चरना रमना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य ही सभी शुभ कर्मों की सिद्धि का मूल है। उसके बिना सारी कियायें निष्फल होती हैं। महाभारत में वीर्य रक्षा का सर्वाधिक महत्त्व वर्णित है—

**आत्मा हि शुक्रमुद्दिष्टं दैवतं परमं महत्।**
**तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निरुन्ध्याच्छुक्रमात्मनः॥**

शिवसंहिता 88 में **'मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्'** कह कर वीर्यरक्षा को साक्षात् जीवन निरूपित किया गया है। दक्षसंहिता अध्याय 7 में ब्रह्मचर्य के आठ लक्षण बताये गए हैं जो कि मैथुन के आठ लक्षणों के विपरीत हैं।

अथर्ववेद 3/5/19 में लिखा है कि ब्रह्मचर्य रूप तप से देवताओं ने मृत्यु को जीता है। इन्द्र ब्रह्मचर्य द्वारा ही देवताओं में श्रेष्ठ बना है।

## 5. अपरिग्रह ( असंचय ) :

**अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।** योगसूत्र 2/39

अर्थात् अपरिग्रह के स्थिर होने पर सभी जन्मों और उनके प्रकार का सम्यग्ज्ञान होता है।

अपरिग्रह अर्थात् संग्रह की प्रवृत्ति न होने पर सांसारिक भोग विलासों के प्रति मन उपराम हो जाता है, फिर साधक को भूत, भविष्य व वर्तमान जन्मों के कारणों का ज्ञान हो जाता है।

परिग्रह द्वारा निश्चित रूप से बन्धन होता है। एक भी परिग्रह के शेष रहने पर चित्त शुद्धि नहीं होती और चित्तशुद्धि के विना कर्मों से मुक्ति सम्भव नहीं है। अपरिग्रह की महिमा बताते हुए आचारसार 5/66 में कहा गया है कि जिस पुरुष को अद्भुत महात्म्य वाली निष्परिग्रहता प्राप्त हो गई है उसकी सभी देव सेवा करते हैं और उसके समक्ष क्रूर कामदेव भी किंकर बन जाते

हैं। अपरिग्रह का पालन सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से सबको करना चाहिए।

## 6. दया : (कृपालुता)

भागवत में दया को सत्त्वगुण की वृत्ति कह गया है। महाभारत के आदिपर्व 90/22 में लिखा है कि साधु पुरुष स्वर्ग के सात दरवाजे बतलाते हैं—तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और दया। इसी में वनपर्व में कहा गया है कि सबके सुख की इच्छा करना उत्तम दया है। गीता 16/2 में दया को दैवी सम्पदा कहा गया है। दया, घृणा, अनुकम्पा तीनों पर्यायवाची हैं। घृणा के दोनों अर्थ Hate व Compassion होते हैं। श्रीमद्भागवत 7/15/2 में लिखा है कि **'कृपया भूतजदुःखं दैवं जह्यात् समाधिना'** अर्थात् आधिभौतिक दुःख को दया के द्वारा और आधिदैविक दुःख को समाधि द्वारा जीतना चाहिए।

साम्बपुराण 28/3 में दया, क्षमा, सत्य, आर्जव आदि को मुक्त व्यक्ति का लक्षण बताया गया है—

**कृपालुत्वं क्षमा सत्यार्जवत्वमथ शौचता।**
**क्षमता सर्वभूतेषु एतन्मुक्तस्य लक्षणम्॥**

अत्रिसंहिता 34/41 में कहा गया है कि सभी प्राणियों में अपने समान सुख दुख की प्रतीति करना और सभी में आत्म भाव समझकर प्रीति का व्यवहार दया कहलाता है।

## 7. शौच (पवित्रता)

**मनः सत्येन शुद्ध्यति** अर्थात् मन की पवित्रता, शुद्धता सत्य से होती है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में तो यहाँ तक कहा गया है—

**सत्यं शौचं दमः शौचं शौचं शारीरमेव च।**
**सर्वाणि तस्य शौचानि यस्य शुद्धं मनः सदा।**
**मनः शुद्धिविहीनस्य सर्वे शौचा निरर्थकाः॥**

तृतीयखण्ड 275/10

इस प्रकार मन की शुचिता अपरिहार्य है। शास्त्रों में कहा गया है कि **'यो ह्यर्थे शुचिः स शुचिः न मृद्वारिशुचिः शुचिः।'** अर्थात् धन-द्रव्य के व्यवहार में जो पवित्र है वही पवित्र है, मिट्टी व पानी से कोई शुद्ध नहीं होता। वास्तव में शौच दो प्रकार का होता है—वाह्य शुचि व आभ्यन्तर

शुचि। वाह्य शुचि तो स्नानादि से होता है, परन्तु आन्तरिक शुचि सत्य, अपरिग्रह, निःस्पृहता, इन्द्रियनिग्रह आदि से होती है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा गया है—

**शौचं देवाः प्रशंसन्ति शौचं ब्रह्मर्षयस्तथा।**
**शौचयुक्तेन यद्दत्तं तदश्नन्ति दिवौकसाः॥**

तृतीयखण्ड 272/1

मनु महाराज ने शौच को चारों वर्णों के लिए आचरणीय धर्म कहा है। मनुस्मृति 12/32 में शौच, तप, ज्ञान आदि को सत्त्वगुण का लक्षण बताया गया है। अन्तःकरण की पवित्रता को गीता 17/16 में मन का तप कहा गया है। गीता में ही शौच को भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञान की श्रेणी में रखा है। व्यक्ति को अपना आहार भी शुद्ध रखना चाहिए। क्योंकि आहार का प्रभाव व्यक्ति के मन पर पड़ता है।

**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।**

—छान्दोग्योपनिषद् 7/26/2

जाबालदर्शनोपनिषद् के अनुसार 'मै विशुद्ध आत्मा हूँ' इस श्रेष्ठ ज्ञान को ही शौच कहते हैं।

महाभारत में मन का, कर्म का, कुल का, शरीर का तथा वाणी का— इस प्रकार पाँच प्रकार के शौच बताए गए हैं। हृदय शौच से व्यक्ति स्वर्ग जाता है—

**हृदयस्य तु शौचेन स्वर्गं गच्छति मानवः।** महाभारत

## 8. सरलता : (आर्जव)

**'आर्जवं नाम मनोवाक्कायकर्मणां विहताविहितेषु जनेषु प्रवृत्तौ निवृत्तौ वा एकरूपत्वम्'** शाण्डिल्योपनिषद् प्रथमोध्याय। अर्थात् मन, वचन, शरीर और कर्म से लोगों के द्वारा उचित या अनुचित व्यवहार करने पर भी सम भाव बनाए रखना आर्जव है। अनुगीता में निर्भयता, संतोष, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, सत्य, सरलता व पवित्रता सत्त्वगुण के कार्य बताये गये हैं। महाभारत वनपर्व में लिखा है कि मन में हर्ष व विषाद का न होना सरलता है। सरल व्यक्ति ईश्वर को प्रिय होता है। सरलता सबको परिभूत कर देती है—

**अत्यन्तमृजुता न कस्य परिभूतये**-कथासरित्सागर 5/3/235

महाभारत शांतिपर्व में देवर्षि नारद ने भीष्म से कहा है कि—

**मार्दवं सर्वभूतेषु व्यवहारेषु चार्जवम्।**
**वाक् चैव मधुरा प्रोक्ता श्रेय एतदसंशयम्।।** 287/18

अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति कोमलता का वर्ताव करना, व्यवहार में सरल होना तथा मधुर बचन बोलना कल्याण का संदेहरहित मार्ग है।

अष्टावक्र मुनि ने अष्टावक्रगीता 1/2 में कहा है कि मुक्ति चाहने वाला क्षमा, सरलता, दया, संतोष और सत्य को अमृततुल्य समझे।

छान्दोग्योपनिषद् 3/17/4 में तप, दान, आर्जव, अहिंसा व सत्यवचन को मानवीय नैतिक गुण बताया गया है। गीता 16/1 में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप और आर्जव आदि को दैवी सम्पदा कहा गया है।

श्रीमद्भागवत 7/11/8 में सत्य, दया, तप, तितिक्षा आदि के साथ आर्जव को भी परम धर्म कहा गया है। इनके पालन से सर्वात्मा प्रभु प्रसन्न होते हैं।

महाभारत शान्तिपर्व 79/21 में कुटिलता को मृत्यु का स्थान और सरलता को परब्रह्म की प्राप्ति का स्थान कहा गया है **'सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।'**

## 9. क्षमा : (क्षान्ति)

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में क्षमा का महत्त्व इस प्रकार प्रतिपादित है—

**क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा शौचं क्षमा बलम्।**
**क्षमा यज्ञः क्षमा दानं क्षमा च परमं तपः।।**

तृतीयखण्ड 269/1

गर्मी, सर्दी आदि द्वन्द्वों को सहना क्षमा है। सहनशील होने के कारण पृथ्वी का एक नाम क्षमा भी है।

बृद्धगौतमस्मृति 20/20 में **'क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः'** कहा है अर्थात् सभी इन्द्रियों पर नियन्त्रण ही क्षमा है। इन्द्रियों पर निग्रह करने से क्रोध, मोह, लोभ, काम आदि विकार उत्पन्न नहीं होंगे।

बृद्धगौतमस्मृति 8/118 में ही कहा है कि क्षमा की विजय होती हैं क्रोध की नहीं—**क्षमा जयति न क्रोधः।**

वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड 55/6 में उठते हुए क्रोध को क्षमा से निरस्त करने का निर्देश हैं—

**यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति।**
**यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते॥**

इसी में कहा गया है कि क्रोध से भर जाने पर पुरुष कौन पाप नहीं करता ? अर्थात् क्रोध पाप की जननी है।

**क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः कुद्धो हन्याद् गुरूनपि।**

वा0रा0सु0का0 55/4

जाबालदर्शनोपनिषद् में कहा गया है कि शत्रुओं द्वारा मन, वचन एवं शरीर से कष्ट दिए जाने पर भी बुद्धि में थोड़ा भी क्षोभ न आने देना वास्तविक क्षमा है।

गीता 10/4 में श्रीकृष्ण ने ज्ञान, असम्मोह, क्षमा आदि गुणों को स्वयं से प्रकट बताया है। क्षमा दान भी उत्तम दान है। मनुस्मृति 5/110 में **'क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वान्सः'** अर्थात् विद्वान् क्षमा से शुद्ध होते हैं—कहा गया है।

## 10. धैर्य : (धृति)

श्रुतियों में धैर्य को सत्य का स्वरूप बताया गया है। साधना में लक्ष्य की प्राप्ति के लिए धैर्य रखना अपरिहार्य है। कुछ आचार्यों ने धीरत्व गुण को जन्मजात बताया है। धृतिमान् व्यक्ति साधना के मध्य में आने वाली समस्याओं से विचलित नहीं होता। शिवसंहिता 3/42 में कहा गया है कि धृति, क्षमा, तप, शौच, बुद्धि, लज्जा और गुरुसेवा—योगी सदा इन नियमों का आचरण करें। अनुगीता में सत्त्वगुण के कार्यों में धैर्य की भी गणना की गयी है। भर्तृहरि ने नीतिशतक में **'विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा'** के द्वारा यह उपदेश दिया है कि विपत्ति में धैर्य रखना मानव के लिए परमावाश्यक है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी धैर्य की परीक्षा आपद्काल में लेने की बात कही है। कुमारसंभव 1/59 में महाकवि कालिदास ने लिखा है कि विकार के हेतु उपलब्ध रहने पर भी जिसके मन में विकार नहीं उत्पन्न होता है, वे पुरुष ही धैर्यवान कहे जाते हैं। गीता 16/3 में धृति को दैवी सम्पत्ति बताया गया है। मनुस्मृति 6/91 में धर्म के दस लक्षणों में धैर्य की भी गणना की गई है—

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥**

मत्स्यपुराण में धैर्य, क्षमा, दम आदि को सनातन धर्म का दुर्लभ मूल बताया गया है। धैर्यशील पुरुष कष्ट प्राप्त कर भी विषादग्रस्त नहीं होते और वे धर्म तथा कर्तव्य पथ से विचलित नहीं होते।

## 11. मौन :

अक्ष्युपनिषद् 2/26 में मौन को श्रेष्ठ असंसर्ग कहा गया है। मौन मन रूपी इन्द्रिय के संयम से होता है। आदि शंकराचार्य ने विवेकचूडामणि 369 में मौन को योग का प्रथम द्वार कहा है। गीता 17/16 में मौन को मन का तप कहा गया है। मौन अवस्था में मन वास्तव में मननशील होता है। मौन से कलह नहीं होता। मौन से ऊर्जा संरक्षित रहती है। हरिवंशपुराण 9/129 में **'मौनं सर्वार्थसाधनम्'** कह कर उसकी महिमा प्रख्यापित की गई है। मौन से तप में वृद्धि होती है, इच्छाओं का निरोध होता है। मौन से प्राण संचय होना बताया गया है। मौन धारण से असत्य भाषण, अप्रिय भाषण व अनावाश्यक भाषण से स्वतः रक्षा हो जाती है। आध्यात्मिक दृष्टि से साधना में मौन का सर्वातिशायी महत्त्व है। मनुस्मृति परिशिष्ट 9 में लिखा है कि गुरु के समीप होने पर, दान के समय और विशेष रूप से योग क्रिया के समय मौन रहने पर मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है—

**गुरूणां सन्निधौ दाने योगे चैव विशेषतः।**
**एकं मौनं समातिष्ठन् स्वर्गमाप्नोति मानवः॥**

## 12. लज्जा (ह्रीः) :

भागवत 11/19/40 में **'जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु'** अर्थात् पाप करने से घृणा होने का नाम ही लज्जा है।

महाभारत आदिपर्व 90/22 में लिखा है कि साधु पुरुषों ने स्वर्ग के सात दरवाजे बताये हैं। ये हैं—तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता एवं दया। न करने वाले अर्थात् निन्दित कर्मों से दूर रहना लज्जा कहा गया है। महाभारत शान्तिपर्व 162/15 में कहा गया है कि जो बुद्धिमान पुरुष भलीभाँति दूसरों का कल्याण करता है, मन में कभी खेद नहीं मानता और जिसकी मन वाणी सदा शान्त रहती है वह लज्जाशील माना जाता है। यह लज्जा नामक सद्गुण धर्माचरण से प्राप्त होता है। लज्जा गुण सत्पुरुषों का मुख्य लक्षण है। लज्जाशील व्यक्ति अधर्म व पाप से डरता है। लज्जा सद्गुण वाला व्यक्ति कोई ऐसा कार्य मन, वाणी व कर्म से नहीं करता जिससे उसे

लज्जित होना पड़े। पाप कर्मों के करने से व्यक्ति स्वयं से लज्जित होता है। लोक लज्जा ही व्यक्ति को पाप कर्मों से रोकती है। लज्जा पाण्डित्य अर्थात् विद्वत्ता का लक्षण है।

### 13. अभय :

अभय का तात्पर्य निर्भय होना है। गीता 16/1 में अभय को दैवीगुण कहा गया है। महाभारत आदिपर्व 92/24 में अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन, यज्ञ इन चार कर्मों से अभय प्राप्त होना बताया गया है। महाभारत शान्तिपर्व 232/47 व 301/56 में लिखा है कि अप्रमाद से भय को जीतना चाहिए व प्रज्ञावान् व्यक्तियों की सेवा से लोभ को। **अप्रमादात् भयं जह्याल्लोभं प्रज्ञोपसेवनात्।**

महाभारत शान्तिपर्व 220/15 में यह भी लिखा है कि जो समस्त प्राणियों से निर्भय है तथा जिससे सम्पूर्ण प्राणी निर्भय हैं वह दमनशील एवं बुद्धिमान पुरुष सभी जीवों के लिए वन्दनीय होता है। अभय का महत्त्व अथर्ववेद की इस ऋचा से भी स्पष्ट होता है—

**अभयं मित्राद् अभयममित्राद् अभयं ज्ञाताद् अभयं पुरो यः।**
**अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥**

19/15/6

संवर्तस्मृति 53 में कहा गया है कि प्राणियों को अभयं प्रदान करने से व्यक्ति की सभी कामनायें पूर्ण होती हैं वह सुखी व दीर्घायु होता है—

**भूताभयप्रदानेन सर्वकामानवाप्नुयात्।**
**दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव तथा भवेत्॥**

काशीखण्ड में लिखा है कि भयातुर को अभयदान देना इहलोक व परलोक में सुख प्राप्ति का साधन है। भयभीत व्यक्ति से धर्म पालन की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

भय सदैव दूसरे से होता है **'द्वितीयाद् वै भयं भवति'**। आत्मवत् सर्वभूतेषुः में दृढ़ आस्था वाले व्यक्ति के लिए कोई दूसरा नहीं है, सभी आत्मवत् हैं। अतः उसे सर्वत्र सबसे अभय रहता है। शास्त्रों में अभय दान को सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है।

### 14. असङ्गता : ( अनासक्ति )

पदार्थों के होने में हर्ष और न मिलने में विषाद रूपी विकार उत्पन्न

करने वाली मलिन वासना को सङ्ग कहते हैं। सांसरिक विषयो-भोगों, स्त्री-पुत्रादि में आसक्ति न करना असङ्गता है। आसक्ति ही दुःख का मूल है।

गीता में श्रीकृष्ण ने पुत्र, दारा, गृह आदि में अनासक्ति को ज्ञान स्वरूप परिभाषित किया है—अध्याय 13 श्लोक 9

वाल्मीकिरामायण 7/52/12 में लिखा है कि स्त्री, पुत्र, मित्र, धन आदि में अति आसक्ति नहीं करनी चाहिए क्योंकि इनका वियोग ध्रुव (अटल) है—

**तस्मात् पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च।**
**नातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम्॥**

महाभारत शान्तिपर्व 167/46 में लिखा है कि ब्रह्माजी का कथन है कि जिसके मन में आसक्ति होती है उसे कभी मुक्ति नहीं मिलती। आसक्तिशून्य ज्ञानी मनुष्य ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। बौद्धधर्म में असङ्ग को ही नैष्क्रम्य पारमिता कहा गया है। असङ्ग अर्थात् वैराग्य की उत्पत्ति निर्ममत्व से होती है। असङ्ग से योग सिद्ध होता है। असङ्ग (अनासक्ति) के बारे में महाभारत का निम्न श्लोक अवलोकनीय है—

**द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।**
**ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्॥**

महा0 शान्तिपर्व 13/4

इसमें बताया गया है कि दो अक्षर (मम) अर्थात् आसक्ति से मृत्यु और तीन अक्षर (नमम) अर्थात् अनासक्ति से शाश्वत ब्रह्म प्राप्त हो जाता है।

## 15. स्थिरता : (स्थैर्य)

**'स्वधर्मे स्थिरता धैर्यम्'** अर्थात् स्वधर्म में स्थिर रहना धैर्य है।

साधक को अपने लक्ष्य पर स्थिर रहना चाहिए। सफलता के लिए स्थिरता अनिवार्य तत्त्व है। बौद्धधर्म में स्थिरता को अधिष्ठान पारमिता कहा गया है। अधिष्ठान का अर्थ है दृढ़ निश्चय। अभीप्सित लक्ष्य या पदार्थ की प्राप्ति के लिए अपने सामर्थ्य व साधन के प्रति दृढ़ निश्चय होना चाहिए। अस्थिर चित्त वाले व्यक्ति कभी भी सफल नहीं होते। साधना, तपस्या व योग में तो स्थिरता मूलभूत गुण है। स्थिर बुद्धि का व्यक्ति ही योग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होता है। अस्थिर बुद्धि का व्यक्ति विनाश को प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता 12/19 में **'अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो**

**नरः'** कह कर श्रीकृष्ण ने स्थिरमति का महत्त्व प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार **'सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः'** के द्वारा दृढ़ता व स्थिरता की महिमा प्रख्यापित की है। स्थिर चित्त होने के लिए मनोनिग्रह आवश्यक है। साधक असङ्ग व स्वाध्याय से युक्तमना (समाहित मन) हो जाता है। गीता 13/7 में श्रीकृष्ण द्वारा स्थैर्य को ज्ञान स्वरूप निरूपित किया गया है।

ॐ

# नियम

नियमों के द्वारा व्यक्ति व समाज का नियमन किया जाता है। अमरकोश 2/7/49 में लिखा है "**नियमस्तु स यत्कर्म नित्यमागन्तुसाधनम्**" अर्थात् आगन्तुक (वाह्य साधनों से साध्य) साधना वाला नित्यकर्म नियम है। कैवल्यदर्शनम् में यमनियमसाधन से पशुत्व (आठ पाशों) का नाश होना बताया गया है। यम नियम सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के साधकों के लिए उपयोगी हैं। यम व नियम का पालन भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करता है। यम की तरह नियम पालन की विवशता प्रतिपादित नहीं की गई है। अहिंसा आदि यमों का आदरपूर्वक पालन करना चाहिए, किन्तु शौच आदि नियमों का पालन शक्ति के अनुसार और आत्मज्ञान के विरोधी न होने पर ही करना चाहिए—

**यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान् मत्परः क्वचित्।।**

भागवतपुराण 11/10/5

भागवत महापुराण में बारह नियम वर्णित हैं। पतञ्जलि ने पाँच नियम बताये हैं। पतञ्जलि के पाँच नियम शौच, सन्तोष, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान व स्वाध्याय हैं। भागवत के बारह नियम तप, संतोष, आस्तिकता, शम, दम, दान, दया, देवपूजा, सिद्धान्तश्रवण, लज्जा, मति और अक्षोभ है। श्रीविष्णपुराण व स्कन्दपुराण में पाँच नियम शौच, संतोष, तप, जप और गुरुभक्ति बताया गया है।

शाण्डिल्योपनिषद् 1-2-1 में दस प्रकार के नियम इस प्रकार वर्णित हैं—

**तपः सन्तोषास्तिक्यदानेश्वरपूजनसिद्धान्तश्रवणह्रीमतिजपव्रतानि दश नियमाः।**

अर्थात् तप, संतोष, अस्तिकता, दान, ईश्वर-पूजन सिद्धान्त-श्रवण, ह्री, मति, जप तथा व्रत ये दस नियम हैं।

अत्रिस्मृति में नियमों की संख्या इस प्रकार वर्णित है—

**शौचमिज्यातपोदानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहः।**

व्रतं मौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश॥ 13

याज्ञवल्क्यस्मृति में चौदह नियम स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेदपाठ, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, शौच, अक्रोध, तुष्टि, संतोष, उपस्थनिग्रह, इज्या तथा अप्रमाद गिनाये गये हैं। नियमों का अलग-अलग विवेचन निम्नवत प्रस्तुत है—

**1. तप :**

**क्लेश सहं तपः**। अर्थात् क्लेश को सहना ही तप है।

मन व इन्द्रियों की एकाग्रता को भी तप कहते हैं। भागवत में कामनाओं का त्याग ही तप कहा गया है। शतपथब्रह्मण 14-7-2-25 में **'ब्रह्मचर्येण तपसा श्रद्धयात्मज्ञानेनेति'** अर्थात् ब्रह्मचर्य, तप और श्रद्धा से आत्मा को जानने का उपदेश दिया गया है। पद्मपुराण 13/92 में तप के बल को सभी बलों में श्रेष्ठ बताया गया है। विधिपूर्वक कृच्छ्र चान्द्रायण आदि से शरीर को सुखाना तप है। शास्त्रों में नित्य तप करने का निर्देश है। ब्रह्मचर्य ही तप है। मन और इन्द्रियों का संयम तप में अनिवार्य आवश्यकता है। गीताशांकरभाष्य 10/5 में इन्द्रिय संयमपूर्वक शरीर को पीड़ा देता तप बताया गया है—

**तप इन्द्रियसंयमपूर्वकं शरीरपीडनम्।**

तप के मूल में धर्म पालन करने के लिए कष्ट सहने का पवित्र भाव विद्यमान रहता है। कष्ट सहकर ही दूसरों के कष्टों का अनुभव व ज्ञान किया जा सकता है। तितिक्षा, व्रत आदि का पालन तप के माध्यम से किया जाता है। तप में अतुलनीय तेज और बल रहता है। मन व दसों इन्द्रियों की एकाग्रता को तप कहा जाता है। तप तीन प्रकार के बताए गये हैं—

1. वाचिक = मंत्र जप
2. मानसिक = आसक्ति का त्याग
3. शारीरिक = देवपूजन

मैत्रेय्युपनिषद् में लिखा है कि तप के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान से मन का निग्रह होता है। मन वश में होने से आत्मा की प्राप्ति होती है और आत्मा के प्राप्त होने पर इस संसार से मुक्ति मिल जाती है। महर्षि व्यास ने कहा भी है—

**अहिंसा सत्यवचनं दानमिन्द्रियनिग्रहः।**
**एतेभ्यो हि महाराज तपो नानशनात्परम्॥**

छान्दोग्योपनिषद् 2/23/1 में धर्म के तीन स्कन्धों में तप को दूसरा स्कन्ध बताया गया है।

**2. संतोष :**

दैव की इच्छा से जो कुछ प्राप्त हो जाय उसमें संतुष्ट रहना संतोष नामक नियम है। योगसूत्र 2/42 में लिखा है **'संतोषादनुत्तमसुखलाभः'**। अर्थात् संतोष से सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है। शास्त्रों में संतोष को परम सुख, अमृत, पथ्य और हितकर बताया गया है। विष्णुपुराण 1/11/21 में लिखा है कि जिसके पास जो है, बुद्धिमान् व्यक्ति उतने से ही सन्तुष्ट रहता है।

मनुस्मृति 4/12 में संतोष को सुख का मूल बताया गया हैं और असंतोष को दुःख का मूल। महाभारत में भी **'असंतोषोऽसुखायेति'** कहा गया है। पद्मपुराण 5/19/248 में लिखा है कि ब्राह्मण जैसे-जैसे दान नहीं लेता है वैसे-वैसे संतोष के कारण उसका तेज बढ़ता जाता है। वैराग्यशतक 53 में भर्तृहरि ने तृष्णायुक्त व्यक्ति को निर्धन बताते हुए कहा है—

**स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।**
**मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥**

महाभारत वनपर्व 215/22 व बृहन्नारदीयपुराण 61/37 में लिखा है कि असन्तोष का अन्त नहीं है और सन्तोष परम सुखकारक है—

**असन्तोषस्य नास्त्यन्तस्तुष्टिस्तु परमं सुखम्॥**

**3. आस्तिकता :**

वेदवर्णित धर्म और अधर्म में विश्वास रखना आस्तिकता है। वेदों में, पुनर्जन्म में और कर्मफल प्राप्त होने में आस्था रखने वाला ही आस्तिक है। आस्तिक बुद्धि का व्यक्ति दुष्कर्म व पाप से दूर रहता है। पुनर्जन्म ही प्रारब्ध, संचित और संचीयमान कर्म की सङ्गति का कारक होता है। पाणिनि के अष्टाध्यायी 4-4-60 में **'अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः'** कहा गया है। अर्थात् **अस्ति परलोकः इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः। नास्ति इति मतिर्यस्य स नास्तिकः। दिष्ट ( भाग्य ) इति मतिर्यस्य स दैष्टिकः।** इस प्रकार पाणिनि के अनुसार परलोक में विश्वास रखने वाला आस्तिक है। स्वाभाविक है कि जो परलोक में विश्वास करेगा, वह अनीति से दूर रहना चाहेगा। भविष्यपुराण उ0प0 122/3-4 में लिखा है कि अश्रद्धालु व नास्तिक आदि को तीर्थ का

फल नहीं मिलता।

**अश्रद्धधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।**
**हेतुनिष्ठाश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥**

**4. दान :**

न्यायोपार्जित धन-धान्य को गरीबों को व पात्रों को बिना किसी कामना के देना दान है। दान वस्तुतः चित्त की उदारता, सरलता, सहजता, सहृदयता, द्रवणशीलता व कोमलता का क्रियात्मक स्थूल रूप है। दान दो प्रकार का होता है—एक परलोक के लिए दूसरा इहलोक के लिए। गीता अध्याय 17 में सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के दान बताए गए हैं। मनुस्मृति 5/110 में लिखा है कि यज्ञादि कर्तव्य कर्म न कर सकने वालों की दान से शुद्धि हो जाती है। दान गुप्त रखना चाहिए। दान सदैव सुपात्र को ही देना चाहिए। छान्दोग्योपनिषद् 2/23/1 में धर्म के तीन स्कन्धो में यज्ञ, अध्ययन व दान को पहला स्कन्ध बताया गया है।

गरुडपुराण 114/67 में लिखा है कि दूसरे का धन छीन कर दान देने वाला नरक को जाता है—

**अपहृत्य परस्वं हि यस्तु दानं प्रयच्छति।**
**स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम्॥**

समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहने वाले महापुरुषों ने **'दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहितेरतः'** ऐसा कह कर दान को धर्म बताया है। बौद्धधर्म में दस पारमिताएं बताई गयी हैं। जिसमें दान, सत्य, शील, क्षान्ति, वीर्य, मैत्री, उपेक्षा, अधिष्ठान, प्रज्ञा व नैष्क्रम्य हैं। बौद्धधर्म में दान को परित्याग चेतना कहा जाता है। यश के लोभ से, भय से अथवा अपना उपकार करने वाले को दान न दे। दान और धर्म करते समय मन पर संयम रखना अर्थात् इस विषय में दूसरे से ईर्ष्या न करना मत्सरता का अभाव है। कलियुग में दान का सर्वातिशायी महत्त्व है—

**द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे।**

मुख्यदानों में अभयदान, विद्यादान, गोदान, पिण्डदान, शय्यादान, फलदान, कन्यादान, जलदान, तिलदान, क्षमादान, मधुपर्कदान, प्राणदान, अन्नदान, भूमिदान, सुवर्णदान आदि हैं। दान का व्यसन उत्तम माना गया है। तैत्तरीयआरण्यक में श्रद्धापूर्वक व विवेकपूर्वक दान देने का उपदेश है। दान कीर्ति व मोक्ष प्राप्ति का अमोघ साधन है। दान के समय मौन रहना व दान को गोपनीय रखना

महत्त्वपूर्ण है।

दान देने का अहंकार किंचित् मात्र भी दाता के मन में नहीं आना चाहिए। यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा ॐ इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके प्रारम्भ होती हैं—गीता 17/24

## 5. ईश्वरपूजन (देवपूजा) :

प्रसन्न मन से अपने इष्ट विष्णु-रुद्र आदि की पूजा करना ईश्वरपूजन है। ईश्वर की स्तुति/अर्चना अनेक पापों को शीघ्र नष्ट कर देती है। कर्म का फल देने में ईश्वर ही समर्थ है, अतः प्रत्येक कर्म के साथ ईश्वर को भी जानो व उसमें आस्था रखो। स्कन्दपुराण 3/80 में लिखा है—

**सेश्वरं कर्म विद्ध्येतत् समर्थत्वेन जायते।**
**न ह्यन्यः कर्मणो दाता ईश्वरेण विना भवेत्॥**

योगदर्शन में ईश्वरप्रणिधान को नियम बताया है। यह ईश्वरप्रणिधान ही ईश्वरभक्ति व ईश्वर पूजन हैं। ईश्वरप्रणिधान के लिए ईश्वर के अनुकूल ही चेष्टा की जाती है। मन, वाणी और कर्म द्वारा ईश्वर को प्रिय लगने वाले कार्य ही किए जाते हैं। साधक को ईश्वर के प्रातिकूल्य कर्मों का वर्जन करना चाहिए। ईश्वरपूजन में सर्वप्रथम देवो में प्रथमपूज्य गणपति का पूजन करने के पश्चात् अपने इष्ट का नमन करके आसन पर बैठना चाहिए। ईश्वरपूजन में एकनिष्ठता व एकाग्रता आवश्यक है।

## 6. सिद्धान्तश्रवण :

वेदान्त के अर्थों का श्रवण व चिन्तन करना सिद्धान्तश्रवण है। महाभारत में शान्तिपर्व में भीष्म ने कहा है कि सदा गुरुजनों की पूजा, वृद्ध पुरुषों की सेवा और शास्त्रों का श्रवण ये तीन कल्याण के अमोघ साधन हैं—

**गुरुपूजा च सततं वृद्धानां पर्युपासनम्।**
**श्रवणं चैव शास्त्राणां कूटस्थं श्रेय उच्यते॥** 287/2

महाभारत में कहा गया है कि श्रुति एवं शास्त्र को साक्षात् परमेश्वर समझो। शास्त्रश्रवण शोक को दूर करने वाला, शान्तिकारक और कल्याणमय है। शास्त्रानुकूल कर्म ही कल्याणकारक व मोक्ष प्रदाता होता है। भविष्यपुराण उ0प0 4/7 में लिखा है **प्रमाणं श्रुतिरेवात्र धर्माधर्म विनिश्चये** अर्थात् धर्म व अधर्म के निश्चय में श्रुति ही प्रमाण है। गीता में कर्तव्य व अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र को ही प्रमाण माना गया है। शास्त्र का तात्पर्य ही होता है

जिससे व्यक्ति शासित हो। शास्त्र व्यक्ति के कर्म-अकर्म के सम्बन्ध में पथप्रदर्शक का कार्य करता है। वेद, वेदाङ्ग, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद् स्मृतियों व पुराणों में सभी वर्णित सिद्धान्तों व आदर्शों तथा नियमों का श्रवण व पालन करना श्रेयस्कर है। शुक्रनीति 1/91 में कहा गया है कि नीति का मूल विनय है और विनय शास्त्र में श्रद्धा रखने से प्राप्त होता है। विनय का मूल इन्द्रिय जय हैं। अतः जो जितेन्द्रिय है वही शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर सकता है। धर्म ज्ञान के लिए शास्त्र ज्ञान व उसमें श्रद्धा का होना आवश्यक है।

### 7. मति (विवेक) :

वेदोक्त कर्मों में श्रद्धा का उत्पन्न होना मति है। सद् व असद् का विवेक करना सन्मति की विशेषता है। मति अर्थात् बुद्धि को सत्कर्मों में प्रेरित करने के लिए ही गायत्री मंत्र में प्रार्थना की जाती है। वेदों को अपौरुषेय माना गया है। ऋषिगण मन्त्रों के द्रष्टा थे। बिना उसमें श्रद्धा के ज्ञान सम्भव नहीं है। अतः ईश्वर से सद्बुद्धि देने व सन्मति देने की प्रार्थना की जाती है। बुद्धि के बल को यथार्थ बल कहा जाता है **'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य'**। मति के पर्यायवाची शब्द बुद्धि, प्रज्ञा, धी, शेमुषी, चित्त आदि हैं। सन्मति का लक्षण है—वेद, शास्त्र में श्रद्धा, गुरु व वृद्ध जनों का सम्मान, अच्छे-बुरे की पहचान, नित्य-अनित्य का ज्ञान आदि। शास्त्रों के अनुसार मृत्यु के समय मनुष्य की जो मति होती है, उसी के अनुसार वह उच्च या नीच गति को प्राप्त होता है—**अन्ते मतिः सा गतिः।** अतः अन्तकाल में परमात्मा का स्मरण करना चाहिए—

**अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्।**
**यः प्रयाति स सद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥**

गीता 8/5

### 8. जप :

**'स्वाध्यायः स्याज्जपः'** अमरकोश 2/7/47

अर्थात् वेदाभ्यास के जप व स्वाध्याय दो नाम हैं।

गुरु ने जिस वैदिक मंत्र का उपदेश दिया है, उसका विधिपूर्वक जप करना जप कहलाता है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि वेदों के स्वाध्याय तथा प्रणव (ॐ) के अभ्यास आदि को जप कहा गया है। जप तीन प्रकार के होते हैं। 1. मानसिक जप—जो मन में किया जाता है। 2. उपांशु जप—इसमें ओंठ हिलता (स्पंदन) रहता है। **ओष्ठं स्पन्दनमेव परैर्दृश्यते न तु शब्दः**

**श्रूयते तादृशमुपांशुत्वम्।** 3. वाचिक जप—इसमें बोलकर जप किया जाता है। जप से पाप का विनाश होकर आवागमन (जन्म मृत्यु) से मुक्ति मिल जाती है। शास्त्रों में नित्य जप करने का विधान है। जप करने वाले के पास आधि, व्याधि व ग्रहों का प्रभाव नहीं होता है। शाण्डिल्योपनिषद् 1/2/1 में वाचिक व उपांशु जप से करोड़ गुना फल मानसिक जप का बताया गया है। श्रुतियों में कहा गया है कि ध्यान से थकने पर साधक मंत्र जप करे और मंत्र जप से थकने पर ध्यान करे। जपशील व्यक्ति कभी पराभव को नहीं प्राप्त होता—**जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते।** पूर्व जन्म में किये गये पाप से इस जन्म में व्याधि होती है उसकी शान्ति दान, जप, तप, होम, पूजा पाठ से हुआ करती है। (स्मृति रत्नाकर)

कूर्मपुराण उ0वि0 11/22 में स्वाध्याय व जप को एक बताया गया है। इसे सत्त्व की शुद्धि करने वाला कहा गया है—

**वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः।**
**स्वाध्यायस्य त्रयो भेदाः वाचिकोपांशुमानसाः॥**

## 9. व्रत :

वेदोक्त विधि व निषेधों का नियमित आचरण व्रत कहलाता है। पद्मपुराण में व्रत के बारे में लिखा है—

**हिंसातोऽलीकतः स्तेयान्मैथुनाद् द्रव्यसंग्रहात्।**
**विरतिर्व्रतमुद्दिष्टं विधेयं तस्य धारणम्॥** 14/107

हिंसा, झूठ, चोरी, दुःशील और परिग्रह से विरक्त होना श्रेष्ठ व्रत है। यह व्रत अवश्य धारण करना चाहिए। व्रत को संकल्प व प्रण भी कहते हैं। व्रतशीलता का अर्थ है आत्मशोधन और औचित्य की मर्यादा में प्रगति पथ पर अग्रसर होते रहने का दृढ़ निश्चय। व्रतों का अनुकरण शास्त्रविधानानुसार हो। आत्मोन्नति का एक प्रधान साधन व्रत है। व्रतों से व्यक्ति का आन्तरिक शुद्धिकरण होता है। उसकी संकल्प शक्ति बढ़ती है। निरुक्त में व्रत को कर्म बताया गया है। व्रत से अभीष्ट संकल्प की सिद्धि होती है।

स्कन्दपुराण में गुरुभक्ति भी नियमों में शामिल है। योगदर्शन में जप के जगह स्वाध्याय को नियमों में परिगणित किया गया है। कुछ ग्रन्थों में शौच, तितिक्षा, ऋत, शम, दम, शौर्य, आदि को भी नियमों के अन्तर्गत लिखा गया है।

ॐ

# आसन का स्वरूप व संख्या

योगशास्त्र में आसन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिना आसन के योग की कल्पना नहीं की जा सकती। जप, तप, ध्यान सारी क्रियायें किसी न किसी आसन में स्थित होकर ही की जाती हैं। आसन शरीराधिपत्य स्थापन है। शरीर रक्षण, शरीर शोधन और शरीर संवर्धन में आसनों की अहम् भूमिका है। बिना सम्यक् आसन के नाड़ी शोधन नहीं हो सकता। विधिपूर्वक आसन न करने से शरीर में व्याधियाँ भी हो सकती हैं। आसन में नियमित अभ्यास का अतिशय महत्त्व है। नाड़ी की शुद्धि व मन की एकाग्रता के लिए आसन का सम्यक् ज्ञान होना अनिवार्य है। आसन से तमोगुण का नाश होकर शारीरिक स्फूर्ति मिलती है। मन में उत्साह, प्रसन्नता, संतुष्टि व अनुकूलता बढ़ती है। आसन से रक्त शुद्ध, शरीर में लचीलापन, रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होकर मनोविकार नष्ट होते हैं। आत्मशक्ति का स्फुरण होकर साधक में आनन्दानुभूति होती है। आसन से साधक के चेहरे पर कान्ति, शरीर में हल्कापन व अग्नि में अभिवृद्धि होती है। आसन के द्वारा किसी प्रकार चित्त विक्षुब्ध नहीं होता। आसनों के करने से शरीर के अन्दर विद्यमान रहने वाले सभी तरह के रोग नष्ट हो जाते हैं तथा सभी प्रकार के विष जीर्ण होकर समाप्त हो जाते हैं—

**शरीरान्तर्गताः सर्वे रोगा विनश्यन्ति।**
**विषाणि जीर्यन्ते।** शाण्डिल्योपनिषद् 1/3/12

गोरक्षशतक 54 में कहा गया है कि आसन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं—

**आसनेन रूजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।**

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 52, शाण्डिल्योपनिषद् 1/3/14 एवं जाबालदर्शनोपनिषद् में कहा गया है कि जिसने आसनों को अपने वश में कर लिया उसने मानो तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया। अर्थात् जिसने आसनों पर विजय प्राप्त कर ली, उसने तीनों लोकों को जीत लिया।

**आसनं विजितं येन जितं तेन जगत्त्रयम्।**

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि साधक के आसन जय के कारण उसको शीतोष्णादि द्वन्द्वों से पीड़ित नहीं होना पड़ता।

**शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयेत।**

पातंजलियोगसूत्र 2/48

हठयोग का पहला अङ्ग आसन कहा गया है। आसन द्वारा साधक में स्थिरता, नीरोगता और अङ्गस्फूर्ति आती है।

**हठस्य प्रथमाङ्गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।**
**कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्॥**

हठयोगप्रदीपिका 1/17

अष्टाङ्गयोग की साधना में आसनों की सम्यक् जानकारी व उनका सम्यक् अभ्यास आवश्यक है। आसन शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रथम शरीर की स्थिति व द्वितीय जिस वस्तु पर बैठकर आसन (योगसाधना) किया जाय। अर्थात् दर्भ, कुश, काले हिरण का चर्म, व्याघ्रचर्म, कम्बल, रेशमीवस्त्र आदि।

**कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले।**
**स्थलासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।**
**नाडीशुद्धिं समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत्॥**

घेरण्डसंहिता 5/32

विष्णुधर्मोत्तपुराण प्रथम खण्ड शंकरगीता के 15/1 में भी घुटने के बराबर कोमल आसन का वर्णन है—

**जानुतुल्यं मृदुशुभं चैलाजिनकुशोत्तरम्**
**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः॥**

आसन की परिभाषा कतिपय शब्दों व अर्थों के परिवर्तन के साथ लगभग सभी ग्रन्थों में एक समान दी गई है।

1. **येन केन प्रकारेण सुखं धैर्यं च जायते।**
**तत्सुखासनमित्युक्तमशक्तस्तत्समाश्रयेत्॥**

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 51, जाबालदर्शनोपनिषद् 3/12

अर्थात् जिस किसी भी तरह बैठने में सुख व धैर्य प्राप्त हो, वह आसन सुखासन है। अशक्त साधकों को सुखासन का ही आश्रय लेना चाहिए।

शाण्डिल्योपनिषद् 1/3/13 में भी ऐसा ही कहा गया है—

**येन केनासनेन सुखसाधारणं भवत्यशक्तस्तत्समाश्रयेत्।**

अर्थात् जो अशक्त हों, असमर्थ हों, उन्हें जिस किसी भी आसन में सुख मिले उसी आसन में स्थित होना चाहिए। अनावश्यक शरीर को कष्टदायक स्थिति में नहीं रखना चाहिए।

2. **स्थिरसुखमासनम्।** पातंजलियोगसूत्र 1/46

अर्थात् जिसमें स्थिरता, स्थायित्व और सुख की अनुभूति हो वही आसन है।

3. **सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम्।**
**आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम्।।** अपरोक्षानुभूति 112

अर्थात् जिस स्थिति में सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्म का चिन्तन होता रहे, उसे ही आसन जानना चाहिए। सुख को नष्ट करने वाला आसन, आसन नहीं है।

4. **करचरणादिसंस्थानविशेषलक्षणानि पद्मस्वस्तिकादीन्यासनानि।**
वेदान्तसार 203

अर्थात् हाथ पैर आदि को एक प्रकार से रखकर बैठना आसन है। पद्मासन व स्वस्तिकासन आदि आसन हैं।

5. **सर्ववस्तुन्युदासीनभावमासनमुत्तमम्।** त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 30

सभी जागतिक वस्तुओं में उदासीनता का भाव आसन कहलाता है।

6. निश्चल ज्ञान ही आसन है।
**निश्चलज्ञानमासनम्** —आत्मपूजोपनिषद्

7. **स्व स्वरूपे सदासन्नभाव आसनमुच्यते।** सिद्धसिद्धान्तसंग्रह 53

अपने स्वरूप में सुख पूर्वक स्थित होना आसन कहा जाता है।

आसन शब्द की व्युत्पत्ति है **आस्यतेऽनेन इत्यासनम्।** अर्थात् शरीर के अङ्गों को किसी विशिष्ट स्थिति में स्थिरतापूर्वक रखना आसन है। महर्षि पंतजलि के अनुसार ध्यान व उपासना के लिए आसन अपरिहार्य है।

वायुपुराण 11/13 में कहा गया है कि आसन करने के पूर्व ओंकार का उच्चारण करे और चन्द्र सूर्य को प्रणाम करे। ज्ञानपूर्वक शुद्ध चित्त से योगी योगासन करे। मन से व्याकुल और उद्विग्नचित्त होकर ध्यानयोग में लीन नहीं होना चाहिए।

ब्रह्मपुराण में योगी के लिए निर्देश हैं कि सुख दुःख से युक्त होने पर, अधिक शीत और अधिक उष्ण स्थान में, अधिक तेज वायु वाले स्थान में,

थका होने पर तथा क्षुधित होने पर एवं मन के विकल होने पर योग साधना न करे।

**न मनोविकले ध्माते न श्रान्ते क्षुधिते तथा।**
**न द्वन्द्वे न च शीते च न चोष्णे नानिलात्मके॥ 235/7**

बहुत नीचे या बहुत ऊँचे स्थान पर बैठकर आसन नहीं करना चाहिए। सुखपूर्वक निश्चल, रम्य आसन पर पूर्व मुख होकर बैठकर निःस्पृह और सत्यवाक् से पवित्र होकर आसन करने का निर्देश ब्रह्मपुराण में दिया गया है—

**आसीनः प्राङ्मुखो रम्ये आसने सुखनिश्चले।**
**नातिनीचे न चोच्छ्रिते निःस्पृहः सत्यवाक् शुचिः॥**

235/15

गीता 6/11 में इसी प्रकार आसन करने का निर्देश हैं—

**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।**
**नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥**

श्वेताश्वतरोपनिषद् 2/10 में आसन के सम्बन्ध में इसी प्रकार की बाते कही गई हैं।

**समे शुचौ शर्करावह्निबालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।**
**मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥**

अर्थात् साधक को चाहिए कि वह समतल, पवित्र, कंकड़, अग्नि तथा बालू से रहित, जल के आश्रय और शब्द आदि की दृष्टि से मनोनुकूल, नेत्रों को कष्ट न देने वाले, गुहा आदि आश्रय स्थल में मन को ध्यान के लिए अभ्यास में लगाए।

अग्निपुराण अध्याय 337 में भी कुश व मृगचर्म पर बैठकर कमलासन आदि करने का निर्देश है।

आसन के समय मुँह बन्द रखना चाहिए। स्नानोपरान्त आसन करना ज्यादा हितकारी है। आँखे बन्द रखकर ध्यान करने से एकाग्रचित्तता आती है आसन के समय साधक को सत्त्वभाव में स्थित होना चाहिए। आसन का सर्वोत्तम समय प्रातःकाल माना गया है।

घेरण्डसंहिता 2/1 में कहा गया है कि पृथ्वी पर जितने भी प्राणी हैं, उतने आसन हैं। भगवान् शिव ने चौरासी लाख आसनों की संख्या चौरासी

लाख योनियों के आधार पर बताया है। इनमें से चौरासी आसन श्रेष्ठ कहे गए हैं। इन चौरासी आसनों में से बत्तीस आसन मर्त्यलोक के निवासियों के लिए शुभ बताये गए हैं।

**सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम्।**
**सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च।**
**मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।**
**गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा।।**
**मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।**
**उत्तानमुण्डकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषम्।।**
**शालभं मकरं उष्ट्रं भुजङ्गं योगमासनम्।**
**द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च।।**

घेरण्डसंहिता 2/3-6

नारदीयपुराण में तीस आसन बताये गए हैं। गोरक्षसंहिता में सभी आसनों में दो आसन सिद्धासन व पद्मासन मुख्य बताये गए हैं।

**आसनेभ्यः समस्तेभ्यो द्वयमेतदुदाहृतम्।**
**एकं सिद्धासनं प्रोक्तं द्वितीयं पद्मासनम्।।**

योगशिखोपनिषद् 1-2 में केवल पद्मासन का उल्लेख करते हुए जिस किसी आसन में साधक की रुचि हो, उसमें नासाग्र पर दृष्टि केन्द्रित कर ध्यान करने का निर्देश है—

**आसनं पद्मकं बद्ध्वा मच्चान्यद्वापि रोचते।**
**कुर्यान्नासाग्रदृष्टिं च हस्तौ पादौ च संयतौ।।**

शिवसंहिता में (3/96) भी 84 प्रकार के आसन वर्णित हैं। उनमें सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन व स्वस्तिकासन प्रमुख हैं।

लिङ्गपुराण 8/86 में वर्णित है कि स्वस्तिकासन, बद्धपद्मासन और अर्धासन में बैठकर योगीश्वर व उनके शिष्य योगयुक्त हुये थे।

जाबालदर्शनोपनिषद् 3/1-5 में नौ मुख्य आसन इस प्रकार बताये गए हैं—

| | | |
|---|---|---|
| 1. स्वस्तिकासन | 2. गोमुखासन | 3. पद्मासन |
| 4. वीरासन | 5. सिंहासन | 6. भद्रासन |
| 7. मुक्तासन | 8. मयूरासन | 9. सुखासन |

योगीजन पद्मासन को सर्वश्रेष्ठ आसन मानते हैं।

वायुपुराण में स्वस्तिक, पद्म, अर्द्धसमजानु, एकजानु, उत्तान, सुस्थित आदि किसी आसन को दृढ़भाव से करने का निर्देश दिया गया है।

मार्कण्डेयपुराण में पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन आदि आसनों का उल्लेख है। इसमें कहा गया है कि हृदय में प्रणव जप करके योगासन में प्रवृत्त होना चाहिए।

ब्रह्मपुराण में पद्मासन को योग के लिए मुख्य आसन बताया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में चार आसनों स्वस्तिक, सर्वतोभद्र, पर्यंकासन व कमलासन का उल्लेख है। देवीभागवतपुराण में पाँच प्रमुख आसनों—पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन का उल्लेख है।

अमृतनादोपनिषद् में पद्मासन, स्वस्तिकासन और भद्रासन में से किसी आसन में उत्तराभिमुख होकर योगाभ्यास करने का वर्णन है—

**पद्मकं स्वस्तिकं वापि भद्रासनमथापि वा।**
**बद्ध्वा योगासनं सम्यगुत्तराभिमुखः स्थितः।।**

19

इसमें भी एकाक्षर ब्रह्म ॐकार का ध्यान करते हुए रेचक क्रिया करने का उपदेश है।

कैवल्योपनिषद् 5 में कहा गया है कि साधक स्नानादि से अपने शरीर को शुद्ध करने के बाद एकान्त में सुखासन से बैठे। उसके पश्चात् ग्रीवा, सिर तथा शरीर को एक सीध में रखकर समस्त इन्द्रियों का निरोध करके भक्तिपूर्वक अपने गुरु को प्रणाम करे।

योगतत्त्वोपनिषद् 29 में सिद्ध, पद्म, सिंह और भद्र चार प्रमुख आसन बताए गए हैं। इसमें भी वस्त्र, मृगचर्म या कुशासन पर बैठकर इष्ट देवता को प्रणाम करने का निर्देश है।

दर्शनोपनिषद् 3/1 में नौ प्रकार के आसन बताए गए हैं।

योगचूडामण्युपनिषद् 3 में दो आसन मुख्य बताए गए हैं—सिद्धासन व पद्मासन। योग का अभ्यास करने के लिए एकान्त में बद्धपद्मासन लगाकर शिवस्वरूप गुरु को नमस्कार करके नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर प्राणायाम करने का निर्देश दिया गया है।

श्रीमद्भागवत 3/28/8 में **'तस्मिन् स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत्'** कह कर स्वस्तिकासन को प्रधान आसन निरूपित किया गया है।

लिङ्गपुराण 1/8/82-91 में कहा गया है कि साधक को स्वच्छ व सुरक्षित स्थान में, प्रसन्न मन से सन्तुलित होकर स्वस्तिक, पद्म, या अर्द्धासन में बैठना चाहिए। मुँह और आँखें बन्द हों, वक्षस्थल आगे की ओर निकला हो व जननाङ्ग एड़ियों से ढका होना चाहिए। सिर थोड़ा उठा हो व दंत पक्तियाँ एक दूसरे को स्पर्श न करे। साधक को ध्यान नासिका के अग्र भाग पर केन्द्रित करना चाहिए। उसे प्रभु का ध्यान करते हुए ओंकार का जप करना चाहिए। साधक को अग्नि, चन्द्र और सूर्य का एक साथ या क्रम से ध्यान करने का भी निर्देश है।

सिद्धसिद्धान्तपद्धति में गुरु गोरखनाथ ने योग के लिए तीन आसनों को श्रेष्ठ बताया हैं वे हैं—स्वस्तिकासन, सिद्धासन और पद्मासन। विज्ञानभिक्षु ने भी योगसाधना के लिए उपयुक्त उपरोक्त तीनों आसनों को ही बताया है।

यह उल्लेखनीय है कि महर्षि पतञ्जलि के योगसूत्र व भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में किसी आसन विशेष का नाम नहीं लिया है। केवल आसन में स्थित होने की बात की है। योग के किसी ग्रन्थ में शीर्षासन का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि शीर्षासन में ध्यान सम्भव नहीं है।

## विभिन्न आसन

योग के लिए सर्वाधिक उपयोगी व प्रचलित मुख्य आसनों का स्वरूप, प्रक्रिया व उनसे होने वाले लाभ के बारे में बताया जा रहा है—

**1. स्वस्तिकासन :—**

**जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक् पादतले उभे।**
**समग्रीवशिरः कायः स्वस्तिकं नित्यमभ्यसेत्।।**

जाबालदर्शनोपनिषद् 3/2

घुटने एवं जाँघों के बीच में अपने दोनों पैरों के तलवों को सम्यक् रूप से रखकर गर्दन, मस्तिष्क एवं शरीर को समभाव में (सीध में) रखना स्वस्तिकासन कहा जाता है। इसका नित्य अभ्यास करना चाहिए।

शिवसंहिता 3/97 में स्वस्तिकासन को सब दुःखों का नाश करने वाला सुखासन कहा गया है। योगियों द्वारा गोपनीय यह आसन स्वस्तिकारक है।

**सुखासनमिदं प्रोक्तं सर्वदुःखप्रणासनम्।**
**स्वस्तिकं योगिभिर्गोप्यं स्वस्तीकरणमुत्तमम्॥**

**2. पद्मासन व बद्धपद्मासन :—**

यह ध्यानात्मक आसन है। शांडिल्योपनिषद् में इसका लक्षण इस प्रकार है—

**अङ्गुष्ठेन निबध्नीयाद् हस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण च।**
**ऊर्वोरुपरि शाण्डिल्य कृत्वा पादतले उभे।**
**पद्मासनं भवेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम्॥**

शाण्डिल्योपनिषद् 3/3

दोनों जाँघो के ऊपर दोनों पैरों के तलुवों को रखकर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठों को विपरीत क्रम से पकड़कर रखना बद्ध पद्मासन कहा जाता है। यह आसन सभी में पूज्य है।

**उल्लेखनीय बिन्दु :—**

1. नसिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर रहनी चाहिए।
2. उपरोक्त आसन की अवधि लगभग 30 मिनट होनी चाहिए।
3. बद्धपद्मासन से वीर्यदोष नष्ट होता है। पेट की दुर्बलता व अजीर्ण में भी लाभप्रद है।

शिवसंहिता 3/110 में कहा गया है कि पद्मासन में स्थित योगी प्राणायाम विधान से वायुपूरण करता है, तो वह मुक्त हो जाता है—

**पद्मासने स्थितो योगी प्राणायामविधानतः।**
**पूरयेत्स विमुक्तः स्यात्सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥**

पद्मासन में पहले दाहिना पैर उठाकर बायें पैर की जाँघ पर एवं बायाँ पैर उठाकर दाहिने पैर की जाँघ पर रखे। दोनों पैर के तलुवें चित्त रहें और घुटने विल्कुल जमीन से सटे रहे। शरीर को समरेखा में सीधा करे दे। हाथ सीधे तान कर घुटनों पर रखें।

यह आसन यकृत दोष, वीर्यदोष एवं पेट के समस्त विकारों को दूर करता है।

**3. सिद्धासन :**

हठयोग प्रदीपिका 1/35 में सिद्धासन का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

**योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-**
**न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिरम्।**
**स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद् भ्रुवोरन्तरं**
**ह्येतन्मोक्षकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते॥**

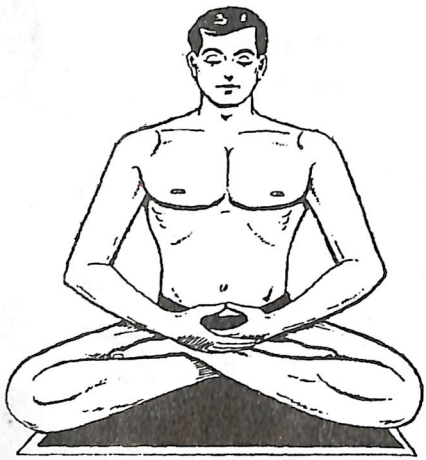

बाएँ पैर की एड़ी को योनिप्रदेश से मिलाकर दाहिने पैर को लिङ्गेन्द्रिय के ऊपर दृढ़ता के साथ लगाएँ और हृदय प्रदेश के पास ठुड्डी को ठीक ऊपर रखे। तत्पश्चात् स्थिरयोगी को भौहों के बीच में अपलक दृष्टि से देखते रहना चाहिए। यह सिद्धासन मोक्षद्वार के कपाट को खोलने वाला है।

शिवसंहिता 3/103 में लिखा है कि सिद्धासन के अभ्यास के कारण शीघ्र योग की निष्पत्ति होती है। पवनाभ्यास से श्रेष्ठ सिद्धासन का सदा सेवन करना चाहिए—

**येनाभ्यासवशात् शीघ्रं योगनिष्पत्तिमाप्नुयात्।**
**सिद्धासनं सदा सेव्यं पवनाभ्यासिना परम्॥**

इस आसन से मन की एकाग्रता, वीर्यरक्षा एवं पेट के समस्त विकारों का नाश होता है। यह ध्यानात्मक आसन है। ध्यान के समय आँखे बन्द रखे। सिद्धासन के साथ मूलबन्ध अच्छा लगता है।

**4. वज्रासन :—**

**जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदापार्श्वे पदावुभौ।**
**वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धिदायकम्॥**

घेरण्डसंहिता 2/12

दोनों जँघाओं को वज्र के समान दृढ़ करके पैरों को गुदा के दोनों पार्श्व में लगाने से वज्रासन होता है। यह आसन योगियों को सिद्धियाँ प्रदान करने वाला है।

वज्रासन ही अकेला ऐसा आसन है जो भोजनोपरान्त भी किया जाता है। इससे भोजन सुचारु रूप पचता है और शरीर वज्र के समान मजबूत बनता है। पैर व पेट को नीरोग बनाता है।

इसमें उल्लेखनीय है कि पिंडलियों का जितना भाग जमीन को स्पर्श करेगा उतना ही आसन ठीक बनेगा। इसकी अवधि दस मिनट तक रखना उचित होगा। इससे पेट व जाँघों को विशेष लाभ मिलता है।

वज्रासन लगाने के बाद उसी वज्रासन के साथ पीठ पर सोना और अपने हाथों से एक दूसरे हाथ की बाह पकड़कर हाँथों के ऊपर सिर रखना सुप्त वज्रासन कहा ज़ाता है।

5. वीरासन :–

एकपादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरुसंस्थिरम्।
इतरस्मिंस्तथा पश्चाद्वीरासनमितीरितम्।।

घेरण्डसंहिता 2/17

एक पैर को जंघा के द्वारा संस्थिर करके रखे तथा दूसरे पैर को पीछे की ओर रखे जाने पर वीरासन कहा जाता है।

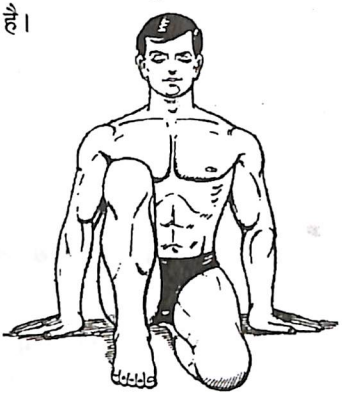

कुछ ग्रन्थों में कहा गया है कि खड़े होकर एक पाँव को उठाकर दूसरे पाँव के जानु पर रखने से जो आसन बनता है, उसे वीरासन कहते हैं। इससे आलस्य और वीर्य विकार दूर होता है।

6. भद्रासन :—

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे।।
पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम्।
भद्रासनं भवेदेतत्सर्वव्याधिविनाशनम्।।

हठयोगप्रदीपिका 1/53-54

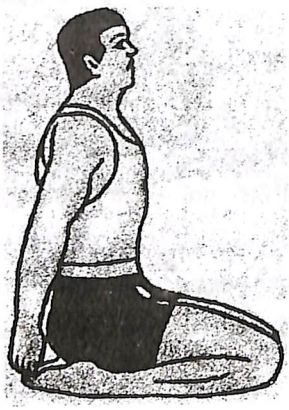

अण्डकोशों के नीचे सीवन के दोनों बगल के भागों में टखनों को इस प्रकार लगाये कि बायाँ टखना बाएं भाग में व दायाँ टखना दाहिने भाग में रहे। फिर सीवनी के दोनों तरफ लगाये हुए पैरों को हाथों से दृढ़तापूर्वक पकड़े रहें, तब भद्रासन सिद्ध होता है। यह सभी रोगों का नाशक आसन है।

**7. सिंहासन :—**

**गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोद्ध्वंगतां गतौ।**
**चितिमूलो भूमिसंस्थः कृत्वा च जानुनोपरि॥**
**व्यक्तवक्त्रो जलन्ध्रं च नासाग्रमवलोकयेत्।**
**सिंहासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशनम्॥**

घेरण्डसंहिता 2/14-15

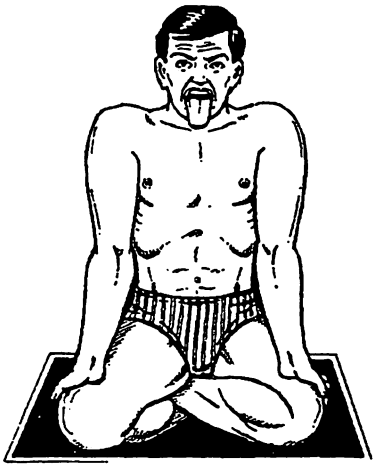

दोनों पैरों की एड़ियों को उलटे क्रम में अण्डकोशो के नीचे लगाकर जालन्धर बन्ध से नासिका के अग्र भाग में दृष्टि केन्द्रित करने पर सिद्धासन की निर्मिति होती है। इसमें मुख खोलकर सुविधानुसार अपनी जिह्वा को जितना बाहर निकाल सकते हैं, निकालिए। कटि को सीधी रखते हुए अपने दोनों हाथों को घुटनों पर रखिए। यह सम्पूर्ण व्याधियों का विनाशक है। गर्दन, कटि और सीवनी के लिए यह विशेष लाभप्रद है।

**8. शवासन :—**

**उत्तानं शववद् भूमौ शयनं तच्छवासनम्।**
**शवासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्॥**

हठयोगप्रदीपिका 1/32

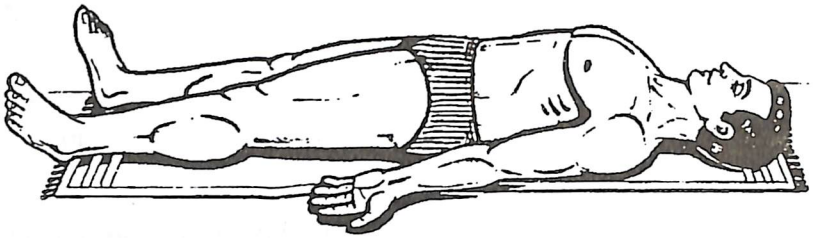

शव के समान पीठ को पृथ्वी पर लगाकर सीधा होकर शयन करना शवासन कहलाता है। इससे शरीर की थकावट दूर होती है और चित्त में शान्ति मिलती है।

इसे मृतासन या प्रेतासन भी कहते हैं। यह आसन सभी आसनों के अन्त में करना चाहिए। इसकी अवधि 10 से 15 मिनट की रखनी ठीक होती है। इससे मस्तिष्क को शान्ति एवं शरीर को आराम मिलता है। शरीर की थकान दूर होकर विश्रान्ति मिलती है।

शवासन में ध्यान रखना चाहिए कि पीठ समेत सभी अङ्ग जमीन से लगे रहें, दोनों हाथ तथा पैर फैले रहें तथा शरीर को शिथिल कर दिया जाय। शवासन के समय मन को चिन्ताओं से मुक्त कर देना चाहिए। आँखें बन्द रहें।

**9. अर्द्धासन :—**

कूर्मपुराण उ0वि0 11/45 में अर्धासन का लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

**एकं पादमथैकस्मिन् विन्यस्योरूणि सत्तमाः।**
**आसीतार्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम्॥**

एक पैर को दूसरे जाँघ के ऊपर रखकर बैठने को अर्धासन कहा जाता है। यह योग का उत्तम साधन है।

कुछ ग्रन्थों में इसे अर्ध-पद्मासन कहा गया है। इसमें यह ध्यान रखे कि जब एक पैर को दूसरे पैर के जाँघ के ऊपर रखे तो उसकी एड़ी पेडू को स्पर्श करता रहे। साथ ही साथ दूसरे पैर को

पहले पैर के जाँघ के नीचे रखे। पैरों का क्रम अदल-बदल कर इसे कई बार किया जा सकता है।

इस आसन से पाचन शक्ति बढ़ती है और जाँघ और घुटनें मजबूत होते हैं। हृदय-फेफड़े व यकृत आदि भी नीरोग होते हैं।

**10. मयूरासन :—**

**कूर्परागे्र मुनिश्रेष्ठ निक्षिपेन्नाभिपार्श्वयोः।**
**भूम्यां पाणितलद्वन्द्वं निक्षिप्यैकाग्रमानसः॥**
**समुन्नतशिरः पादो दण्डवद् व्योम्नि संस्थितः।**
**मयूरासनमेतत् स्यात्सर्वपापप्रणाशनम्॥**

जाबालदर्शनोपनिषद् 3/10-11

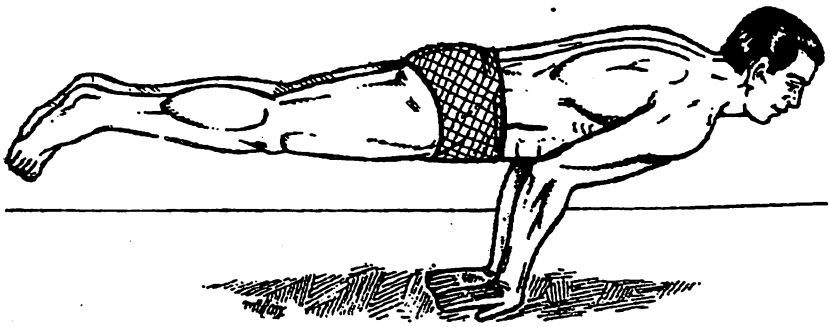

अपनी दोनों हथेलियों (पंजो) को भूमि पर रखकर कुहनियों के अग्रभाग को नाभि के नीचे दोनों पार्श्वों में लगायें। तत्पश्चात् सिर एवं पैर को ऊँचा करके आकाश में दण्ड के समान स्थित हो जाएं। यह मयूर आसन है, जो सभी पापों को नष्ट करता है।

इसमें सर्वप्रथम घुटनों के सहारे आसन पर बैठकर फिर उपरोक्त क्रिया करनी है। दोनों पंजों को जमीन पर इतने अन्तर पर रखे कि पंजे भीतर की ओर रहें। इसमें सम्पूर्ण शरीर का भार हाथों के पंजो पर ही रहता है।

इससे पांडुरोग, मेदोरोग, आँतरोग, गुल्म, अजीर्ण एवं उदर शूल में अत्यन्त लाभ होता है।

**11. पश्चिमोत्तानासन :—**

शिवसंहिता में पश्चिमोत्तानासन का लक्षण इस प्रकार दिया है—

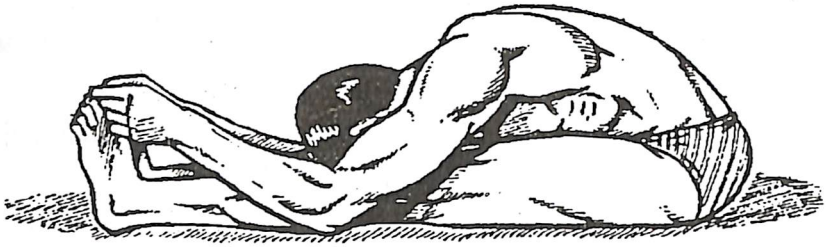

**प्रसार्य चरणद्वन्द्वं परस्परमसंयुतम्।**
**स्वपाणिभ्यां दृढं धृत्वा जानूपरि शिरो न्यसेत्।।** 3/111

जमीन पर दोनों पांवो को परस्पर साथ फैलाकर दोनों हाथों से दोनों पांवो के अँगूठे पकड़ ले। फिर जानू (घुटनों) के ऊपर शिर को रखें।

यह उग्रासन भी कहा जाता है। यह आसन अग्निवर्धक व मृत्युतरण करने वाला है—

**आसनोग्रमिदं प्रोक्तं भवेदनिलदीपनम्।**
**देहावसानहरणं पश्चिमोत्तानसंज्ञकम्।।**

शिवसंहिता 3/112

इस आसन से वायुसिद्धि अर्थात् प्राणों पर विजय प्राप्त होती है और सभी कष्टों का शमन होता है। पश्चिमोत्तान आसन से शरीर संवर्धन होता है। पेट की चर्बी नहीं बढ़ने पाती।

यह ध्यान रखें कि यह आसन बल पूर्वक न करें। शनैः शनैः अभ्यास से कुछ दिन में स्वाभाविकता आ जाएगी। इस आसन की अवधि दो मिनट ही रखना उचित होगा।

**12. कुक्कुटासन :—**

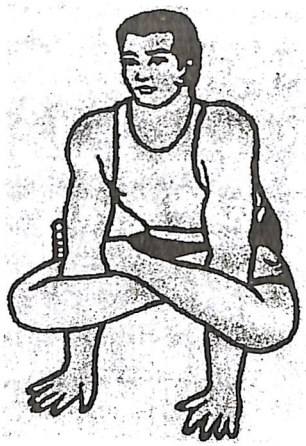

**पद्मासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।**
**निवेश्य भूमौ संस्थाप्य व्योमस्थं**
**कुक्कुटासनम्।।**

हठयोगप्रदीपिका 1/23

सर्वप्रथम पद्मासन में स्थित हों। तत्पश्चात् जाँघो के बीच में दोनों हाथों को लगालें। फिर उन हाथों को भूमि में स्थापित कर आकाश में स्थित रहने को कुक्कुटासन कहते हैं। दोनों हाथ समानान्तर जमीन पर टिके रहे।

इस आसन से हाथों में शक्ति बढ़ती है। प्राणवायु शुद्ध होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। शरीर का आलस्य दूर होता है।

**13. शीर्षासन :—**

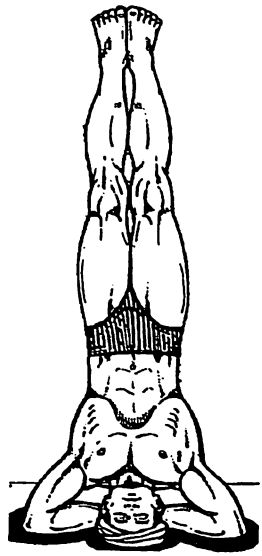

इस आसन में सिर नीचे और पैर ऊपर किया जाता है। अर्थात् आसन करने वाले को उल्टा खड़ा होना पड़ता है। सिर को दोनों हाथों के बीच अच्छी तरह जमाना चाहिए। घुटने सीधे रहें। शरीर विल्कुल सीधा और तना हुआ होना चाहिए।

शीर्षासन बहुत सावधानी पूर्वक करना चाहिए। सिर के नीचे बस्त्र कई बार मोड़कर या कम्बल आदि रखना चाहिए। आँखे खुली रहें। शरीर हिले नहीं।

इसे सभी आसनों का राजा कहा जाता है। इसमें सिर में रक्त संचार बढ़ जाता है। मस्तिष्क के विकास के साथ रक्त संचार सुचारु रूप से होता है। इससे वृद्धावस्था का प्रभाव शरीर पर देर से आता है। मांसपेशियाँ मजबूत रहती है। पाचन क्रिया ठीक होती है। मेदोरोग, अर्शरोग, वीर्यपात व गुल्मरोग में विशेष लाभ होता है। शरीर स्वस्थ व कांतिमान बनता है।

**14. गोमुखासन :—**

**सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत्।**
**दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं गोमुखाकृति॥**

हठयोगप्रदीपिका 1/20

दाहिने पृष्ठपार्श्व (चूतड़) के नीचे बायें पैर का टखना और बायें पृष्ठपार्श्व के नीचे दाहिने पैर के टखने (गुल्फ) को रखकर दाहिने हाथ को सिर की ओर से और बायें हाथ को नीचे की ओर से पीठ पर ले जाकर दाहिनी तर्जनी को बायीं तर्जनी से दृढ़तापूर्वक पकड़ने से गोमुखाकृति बनती है। यही गोमुखासन है।

ध्यान रहे कि गोमुखासन के समय सिर, छाती व पेट झुके नहीं, विल्कुल सीध में रहें। शरीर का भार एड़ियों पर छोड़ना चाहिए। दोनों घुटने

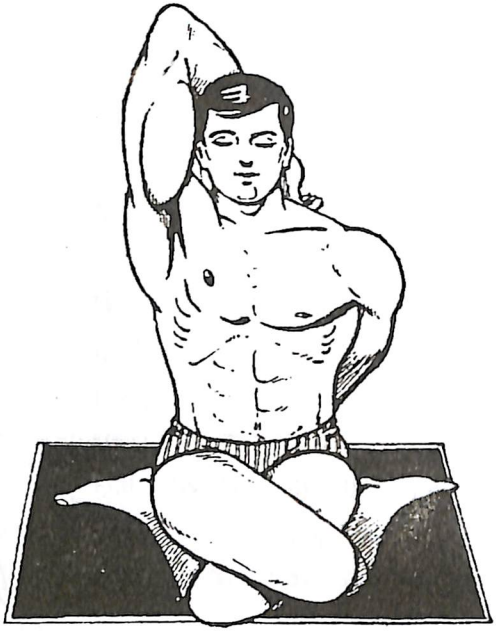

आपस में मिले रहें।

इससे शरीर की कोष्ठबद्धता दूर होकर जननेन्द्रियाँ शक्तिमान् बनती हैं। पैर व हाथ भी मजबूत बनते हैं।

सभी आसन खुली व स्वच्छ हवा में, एकान्त व शान्त स्थान पर करने चाहिए। मन प्रसन्न, मस्तिष्क शान्त व भाव पवित्र रखना आवश्यक है। आसनों का अभ्यास धीरे-धीरे करना व उसे क्रमशः बढ़ाना उचित है। किसी भी आसन में शरीर में बल प्रयोग नहीं करना चाहिए। पेट खाली हो। वस्त्र ढीले हों। आसन करने के पूर्व शरीर की बाह्य सफाई भी (मुँह, नाक, कान, दाँत, आँख सहित) आवश्यक है। कुछ आचार्यों के अनुसार आसन का प्रारम्भ सूर्य नमस्कार से करना चाहिए।

ॐ

# प्राणायाम

अथर्ववेद, आरण्यकों, उपनिषदों, पुराणों एवं स्मृतियों में प्राण का विशद विवेचन किया गया है। अथर्ववेद में वायु को प्राण कहा गया है और प्राण में सभी को प्रतिष्ठित बताया गया है। **प्राणमाहुर्मातरश्विनं वातो ह प्राण उच्यते। प्राणे हि भूतं भव्यं च प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम्।** प्राण ही पिता है, प्राण मातरिश्वा है, प्राणवीर्य है और प्राण ही आयु है।

कौषीतकि उपनिषद् 1/2 में प्राण के बारे में वर्णन हैं कि जब तक शरीर में प्राण रहता है तभी तक आयु रहती है—

**यावद् हि अस्मिन् शरीरे प्राणो वसति तावदायुः।**

शरीर में प्राण के अभाव में शरीर निर्जीव हो जाता है।

आद्यशंकराचार्य ने भी चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम् में कहा है कि वायु के निकलने पर शरीर का पतन हो जाता है—

**गतवति वायौ देहापाये भार्या विभ्यति तस्मिन् काये।**

ऐतरेय आरण्यक में प्राण को सर्वत्र व्याप्त बताया है। प्राण के द्वारा अन्तरिक्ष और वायु की सृष्टि हुई है।

**सर्वं हीदं प्राणेनावृतम्।**

तैत्तिरीयोपनिषद् में प्राण से ही सभी प्राणियों की उत्पत्ति बताई गई है—

**प्राणाद् वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणेन जातानि जीवन्ति।**

जो प्राणी उत्पन्न हैं वे प्राण से ही जीवित रहते हैं। प्राण के अभाव में प्राणी जीवन रहित हो जाता है।

छान्दोग्योपनिषद् 1/11/5 में लिखा है कि सभी प्राणी प्राण से ही उत्पन्न होते हैं और प्राण में ही लीन होते हैं—

**सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति, प्राणमभ्युज्जिहते।**

तैत्तिरीयोपनिषद् में प्राण को ब्रह्म कहा है। प्राण से ही सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं। प्राण से ही सभी जीते हैं और मरते हुए प्राण में ही प्रवेश करते हैं।

प्राण सभी भूतों का आयु है, इसलिए यह प्राण सर्वायुष कहा जाता है—

**प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते।**

तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मवल्ली अनु० 3

इसी में आगे कहा गया है कि देवता लोग प्राण के सहारे साँस लेते हैं। मनुष्य और पशु भी प्राण के सहारे साँस लेते हैं। प्राण ही ब्रह्म है।

इस प्रकार प्राण से ही सम्पूर्ण सृष्टि संचालित हो रही है। सभी इन्द्रियों का संचालन भी प्राण ही के द्वारा हो रहा है। प्राण के न रहने पर सभी इन्द्रियाँ व मन भी अपना कार्य बन्द कर देते हैं। प्राण सबसे अधिक शक्ति का प्रकाशक माना गया है।

योग साधना के अङ्गों में प्राणायाम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राणायाम शब्द प्राण+आयाम इन दो शब्दों से निर्मित है। प्राण का अर्थ जीवनीशक्ति व आयाम का अर्थ निग्रह, संरोध, नियन्त्रण, उपरोध है। शरीर के अन्दर की वायु प्राण है। प्राणों के नियन्त्रण व निग्रह से शरीर के सभी प्रकार के दोष व मल दूर हो जाते हैं। **प्राणस्य वायुविशेषस्य आयामः रोधः यद्वा प्राण आयम्यन्तेऽनेनेति** अर्थात् जिससे प्राण वायु का आयाम, रोध या नियमन हो। प्राणायाम के अतिरिक्त शरीरान्तर्गत मल शोधन का कोई अन्य सर्वोत्तम साधन नहीं है। प्राणायाम से शरीर के सम्पूर्ण मल (दोष, विकार) सूख जाते हैं। लगभग सभी ग्रन्थों में प्राणायाम के महत्त्व के बारे में यह लिखा है—

**प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति।**
**आचार्याणां तु केषाञ्चिदन्यत्कर्म न सम्मतम्।।**

हठयोगप्रदीपिका 2/37

अर्थात् प्राणायाम से ही शरीर स्थित सभी प्रकार के मल (दोष) सूख जाते हैं। शरीरगत मलों (विकारों) को नष्ट करने हेतु प्राणायाम से उत्तम कोई अन्य कर्म या साधन नहीं है। '**प्राणायामादशुद्धिक्षयः**' अर्थात् प्रणायाम से शरीर के अशुद्धियों का क्षय होता है।

लिङ्गपुराण में रुद्र के 1008 नामों में एक नाम प्राणायाम भी है। योगबीज 80 में मोक्ष प्राप्ति के लिए प्राणजय अपरिहार्य बताया गया है— '**मुमुक्षुभिः प्राणजयः कर्तव्यो मोक्षहेतवे**'। गुरु की कृपा से प्राणवायु पर विजय और प्राणवायु पर विजय के द्वारा मन पर विजय प्राप्त किया जाता है—

**गुरुप्रसादान्मरुदेव साध्यते तेनैव चित्तं पवनेन साधितम्॥**

योगबीज 158

पतञ्जलि ने योगसूत्र में प्राणायाम की परिभाषा देते हुए लिखा है कि

**तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।**

2/49

अर्थात् योग के अङ्ग स्वरूप आसन पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् श्वास-प्रश्वास की गति (क्रिया) का विच्छेद प्राणायाम कहा जाता है। पतञ्जलि के इस परिभाषा को समझने के लिए निम्न शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक है।

1. तस्मिन् सति = योग के आठ अङ्गों (मतान्तर से छः अङ्गों) में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि में आसन का तीसरा व प्राणायाम का चौथा स्थान है। यहाँ पर योग सिद्धि के लिए उसके अङ्गों में क्रमबद्धता अत्यन्त आवश्यक है। एक अङ्ग की सिद्धि के पश्चात् ही अर्थात् आसन की सिद्धि के पश्चात् उसके आगे वाले अङ्ग प्राणायाम की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।
2. श्वास = बाहरी वायु का शरीर के अन्दर प्रवेश करना श्वास हैं।

   प्रश्वास = शरीर के अन्दर की वायु का बाहर निकलना प्रश्वास है।
3. गति = स्वाभाविक क्रिया, आवागमन, चर्या, स्रोत
4. विच्छेद = अवरोध, रोकना, निग्रह, नियन्त्रण, विराम, अन्तराल

इस प्रकार प्राणायाम में श्वास लेने का सामान्य क्रम टूट जाता है। इसमें श्वांसों का विराम अर्थात् रोकना और प्रश्वास का गहरा व लम्बा होना आवश्यक है। श्वांस को खीचने की क्रिया को योग में पूरक, उसको कुछ देर तक रोके रखने की क्रिया को कुम्भक व बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। नाड़ी शुद्धि के लिए रेचक व पूरक क्रिया करनी चाहिए। बिना नाड़ी शुद्धि के प्राणायाम नहीं हो सकता। अब अलग-अलग ग्रन्थों से प्राणायाम के स्वरूप व लक्षण का उल्लेख किया जा रहा है। इससे पाठकों को प्राणायाम को और अधिक स्पष्टता के साथ समझना सुकर होगा—

1. **प्राणाख्यमनिलं वश्यमभ्यासात्कुरुते तु यत्।**
   **प्राणायामस्स विज्ञेयस्सबीजोऽबीज एव च॥**

   नारदीयपुराण 47/16 श्रीविष्णुपुराण 7/6/40

अर्थात् अभ्यास के द्वारा जो प्राणवायु को वश में किया जाता है, उसे प्राणायाम समझना चाहिए। यह सबीज (आलम्बनयुक्त) व अबीज (निरालम्ब) दो प्रकार का होता है।

सबीज प्राणायाम में योगी का आलम्बन स्थूल रूप में परमात्मा होते हैं और निर्बीज में निराकार अर्थात् आलम्बन विहीन।

2. **रुचिरं रेचकं चैव वायोराकर्षणं तथा।**
**प्राणायामस्त्रयः प्रोक्ता रेचकपूरककुम्भकाः।।** अमृतनादोपनिषद् 10

अपने इष्ट का ध्यान करते हुए वायु को अन्तःकरण में स्थिर रखना कुम्भक, वायु को निःसृत करना रेचक और वायु को अन्दर खींचना पूरक प्राणायाम कहा गया है।

प्राणायाम के लिए बारह मात्रा का काल बताया गया है। निमेषोन्मेष (पलक गिरना व उठना) काल को एक कला या मात्रा कहते हैं।

**कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च।**
**तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते।।**

वायुपुराण 11/21

3. **प्राणायाम निरोधस्तु प्राणायाम प्रकीर्तितः।**
**प्राणायामस्य मानं तु मात्राद्वादशकं स्मृतम्।।** श्रीलिङ्गपुराण 8/46

अर्थात् प्राण और अपान का निरोध प्राणायाम है। प्राणायाम का मान बारह मात्राओं का होता है। स्कन्दपुराण में भी प्राणायाम का यही लक्षण बताया गया है।

4. **प्राणायामक्रमं वक्ष्ये सांकृते शृणु सादरम्।**
**प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकैः।**
**वर्णत्रयात्मकाः प्रोक्ता रेचकपूरककुम्भकाः।**
**स एष प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामस्तु तन्मयः।।**

जाबालदर्शनोपनिषद् 6/1-2

पूरक, कुम्भक एवं रेचक के द्वारा जो प्राणों का संयम पूर्ण होता है, उसे प्राणायाम कहा गया है। प्रणव के तीन वर्ण अकार, उकार तथा मकार हैं, उन्हें क्रमशः पूरक, रेचक एवं कुम्भक से समानता रखने वाला कहा गया है। इन तीनों वर्णों के समूह को ही ओंकार बताया गया है। अतः प्राणायाम भी प्रणव रूप ही है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्राणायाम की क्रिया पद्मासन, सिद्धासन

आदि किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

5. **प्राणरोधमथेदानीं प्रवक्ष्यामि समासतः।**
**प्राणश्च देहगो वायुरायामः कुम्भकः स्मृतः॥**

योगकुण्डल्युपनिषद् 1/19

प्राणों का निरोध अर्थात् प्राणायाम की विधि बताते हैं। शरीर में संचरण करने वाली वायु को प्राण कहा जाता हैं। प्राणायाम द्वारा जब उसे स्थिर किया जाता है तब उसे कुम्भक कहते हैं।

6. **अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।**
**प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥**
**अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।**
**सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥** गीता 4/29-30

कुछ लोग अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते हैं। अन्य योगीजन प्राणवायु में अपान वायु को हवन करते हैं। अन्य कुछ नियमित आहार करने वाले प्राणायामपरायण पुरुष प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणों को प्राणों में ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापो को नाश कर देने वाले व यज्ञों को जानने वाले हैं।

ध्यातव्य है कि गीता में प्राणायाम को यज्ञ कहा गया है और इससे पापों का नाश होना बताया गया है।

7. **प्राणायामसमायोगः प्राणायामो भवति।**
**रेचकपूरककुम्भकभेदेन स त्रिविधः।**
**ते वर्णात्मकाः। तस्मात्प्रणव एव प्राणायामः।**

शाण्डिल्योपनिषद् 1/6/1-2

प्राण और अपान को मिला देना ही प्राणायाम है। रेचक, पूरक, कुम्भक के भेद से प्राणायाम तीन प्रकार का होता है। वर्णात्मक होने से प्रणव ही प्राणायाम है।

8. **प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्याऽयाम उच्यते।**
**स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो मध्यमोत्तमस्तथा॥**

वायुपुराण 10/78

प्राण के विस्तार—गति को ही प्राणायाम कहते हैं। वह तीन प्रकार का होता है—मन्द (लघु) मध्यम और उत्तम (उत्तरीय)

द्वादश मात्रा युक्त परिमाण का प्राणायाम लघु, लघु से द्विगुण मात्रा का

मध्यम और लघु से त्रिगुण मात्रा का प्राणायाम उत्तम कहा जाता है।

9. **प्राणानां च निरोधस्तु स प्राणायाम संज्ञितः।**

वायुपुराण 10/79

प्राण के निरोध को भी प्राणायाम कहते हैं।

10. **प्राणो वायुः शरीरस्थ आयामस्तस्य निग्रहः।**
**प्राणायाम इति प्रोक्तो द्विविधः स प्रकीर्तितः।।**

नारदीयपुराण 33/118

शरीर में संचरण करने वाले वायु को प्राण कहा जाता है और आयाम का अर्थ है निग्रह करना। इस प्रकार प्राण को वश में करना ही प्राणायम है। यह अगर्भ व सगर्भ दो प्रकार का होता है। इसमें दूसरा श्रेष्ठ है। जप ध्यान के विना प्राणायाम को अगर्भ व जपसहित को सगर्भ कहते हैं।

11. **जगत्सर्वमिदं मिथ्याप्रतीतिः प्राणसंयमः** -त्रिशिखिब्रह्मणोपनिषद् 30

इस जगत् के मिथ्या स्वरूप को अच्छी तरह समझ लेना ही प्राणायाम है। अर्थात् जगत् के मिथ्यात्व में दृढ़ विश्वास ही प्राणायाम है।

12. **प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्।**
**उत्तमाधममध्यत्वात् त्रिधायं प्रतिपादितः।।**

कूर्मपुराण उ0वि0 11/30

अपनी देह से उत्पन्न वायु को प्राण कहते हैं और उस वायु का निरोध करना प्राणायाम है। उत्तम, मध्यम च अधम के भेद से यह तीन प्रकार का होता है।

13. **गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।**
**प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिरयं प्राणसंयमः।।**

शिरोमंत्र एवं महाव्याहृति मन्त्र का जप करने के पश्चात् महाव्याहृति मंत्र के पूर्व प्रणव मंत्र (ॐ) लगाकर तीन बार मुख एवं नासिका से श्वाँस को रोककर जप करने की विधि को प्राणायाम कहते हैं।

शिरोमंत्र 'आपोज्योती' इत्यादि एवं सात व्याहृतियाँ भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः सत्यम् के सहित हैं।

योगदीपिका में प्राण को जगत् का कारण और परब्रह्म कहा गया है। विज्ञानमय कोश में जो प्राणशक्ति है, वही प्राण है—

**प्राणो भवेत् परं ब्रह्म जगत्कारणमव्ययम्।**

**प्राणो भवेत् तथा मन्त्रज्ञानकोश गतोऽपि वा।।**

अद्वैतमार्तण्ड में प्राण और अपान वायु के ऐक्य के लक्षण को प्राणायाम कहा गया है—

**प्राणापानयोरैक्यलक्षणः प्राणायामः।**
**अयमेव हठयोगः इत्युच्यते।**

इस प्रकार प्राण का प्रकर्ष व उत्कर्ष सम्पूर्ण वाङ्मय में पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। प्राणरूप ही सूर्य, चन्द्र, प्रजापति, विराट् आदि हैं। अतः प्राण उपास्य व नमस्करणीय है।

## प्राणायाम का प्रयोजन

प्राण जीव रूप से हजारों नाड़ियों में वास करते हैं। प्राण के कारण ही जीव को प्राणी कहा जाता है। योगदीपिका में प्राण की व्याख्या करते हुए लिखा है कि प्राण परम ब्रह्म है। यह जगत् का कारण है, यह अव्यय है। ज्ञानकोश अर्थात् विज्ञानमय कोश में जो प्राण शक्ति है वही प्राण है। प्राण क्षेत्रज्ञ है। श्वास उच्छ्वास अन्नमय कोश के प्राण अपान हैं। प्राण इनसे भी सूक्ष्म है। प्राणवायु समस्त देहयन्त्र का मूल चक्र है। अग्नि, सोम तथा प्राण उसी परमपुरुष से आते हैं और पुनः उसी में लीन हो जाते हैं। सनत्सुजातीयमध्यात्मशास्त्र के अनुसार अपान प्राण में, प्राण मन में, मन बुद्धि में और बुद्धि परमात्मा में मिल जाते हैं—

**अपानं गिरति प्राणः प्राणं गिरति चन्द्रमाः।**
**आदित्यो गिरते चन्द्रमादित्यं गिरते परः।**
**योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।** अध्याय 4

प्राण अर्थात् वायु पर विजय प्राप्त करना साधक के लिए अपरिहार्य है। क्योंकि चित्त की चंचलता का कारण वायु (प्राण) को माना गया है। प्राण पर विजय प्राप्त करने के लिए तीन साधन बताए गए हैं (1) मिताहार (2) आसन (3) शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास। उपनिषदों एवं पुराणों में प्राणायाम (प्राण का नियमन) के चार प्रयोजन वर्णित हैं। प्राणायाम से इन चारों प्रयोजनों की सिद्धि होती है। वायुपुराण में वर्णित शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति व प्रसाद ये चार प्रयोजन प्राणायाम के निम्नवत हैं—

**प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै।**

**शान्तिः प्रशान्तिः दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम्।।**

वायुपुराण 11/4

प्राणों के नियमन से साधक एक से बढ़कर एक शक्तियों को वशीभूत कर लेता है और अन्त में एकाग्रता के सहारे मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

**शान्ति**—शान्ति को शम भी कहते हैं। मन का निग्रह होने को ही शम कहते हैं। अत्यन्त अशुभकारक कार्य से उत्पन्न पाप समूह का विनाश होना शान्ति कहा जाता है। इस प्रकार प्राणायाम से सभी पाप दग्ध हो जाते हैं। जिसका मन प्रकर्ष से शान्त होता है उसकी कोई वासना शेष नहीं रह जाती। गीता 6,'27 में इसे प्रशान्तमनस कहा गया है। ऐसा साधक स्थितधी व नियतात्मा हो जाता है।

**प्रशान्ति**—इस लोक और परलोक में कल्याण के लिए लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियों का जिससे संयम हो उस तपस्या को प्रशान्ति कहते हैं। तात्पर्य यह कि प्राणायाम से लोभ, अहंकार, मोह, मात्सर्य आदि विकारों का निग्रह हो जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से आधारशक्तिरूपा कुण्डलिनी का बोध होकर निद्रा आदि तमोगुण का नाश हो जाता है। प्रशान्ति गुणवाला व्यक्ति का कोई शत्रु नहीं रह जाता।

**दीप्ति**—तपपरायण योगी को जिस प्रतिबद्ध अवस्था में ज्ञानी ऋषियों की भाँति चन्द्र, सूर्य और भूत, भविष्य, वर्तमान के विषय प्रत्यक्ष हों, उसे दीप्ति कहा जाता है। अर्थात् प्राणायामपरायण व्यक्ति में अलौकिक शक्ति आ जाती है, जिससे वह समस्त विषयों व समस्त कालों का प्रत्यक्ष कर लेता है। यह प्रत्यक्ष कर लेना ही दीप्ति नामक गुण है। प्राणायाम के साधक को त्रैलोक्य में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं होती। ऐसा साधक त्रिकालदर्शी व कान्तियुक्त हो जाता है। दीप्ति से साधक दिव्य कान्ति से युक्त हो जाता है।

**प्रसाद—प्रसादस्तु प्रसन्नता इत्यमरः।** अर्थात् प्रसाद का अर्थ प्रसन्नता है। इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, मन और पंचवायु जिससे प्रसन्न हो उसे प्रसाद कहते हैं। प्राणायाम में लीन साधक का मन, दसों इन्द्रियाँ व प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान पाँचों वायु सम (प्रसन्न) होते हैं। प्रसाद का अर्थ निर्मलता व स्वच्छता भी होता है। इसमें चित्तवृत्ति की एकाग्रता का स्तर अधिक उन्नत हो जाता है।

प्रसाद के द्वारा साधक सर्वप्रिय होकर प्रशान्तधी हो जाता है। उसके अन्दर सभी दिव्यगुण आ जाते हैं।

इस प्रकार प्राणायाम से उपरोक्त चार प्रयोजन सिद्ध होते हैं, जो कि व्यक्ति के इहलोक व परलोक के लिए श्रेयष्कर हैं। प्राणायाम से ही साधक को आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति होती है और इसे ही ब्रह्मानन्द, परमानन्द और चिदानन्द कहते हैं।

मार्कण्डेयपुराण 36/20 में प्राणायाम की चार अवस्था वर्णित है—

1. **ध्वस्ति**—इसमें दिष्ट और अदिष्ट सभी कर्मों का फल क्षय होकर चित्त की मलिनता दूर होती है।
2. **प्राप्ति**—इसमें लोभमोहात्मक ऐहिक और आमुष्मिक कर्मों को योगी स्वयं निरुद्ध करता है।
3. **संवित्**—इसमें योगी ज्ञान सम्पदा के द्वारा अतीत, अनागत और तिरोहित सभी दूरस्थ विषय जान लेता है।
4. **प्रसाद**—इसमें योगी का चित्त पंचवायु, इन्द्रियों के विषय समूह व इन्द्रियों से शुद्धिलाभ करता है।

## प्राणायाम के मुख्य चार प्रकार

योगकुण्डल्युपनिषद् में प्राणायाम की क्रिया कुम्भक के चार भेद बताए गए हैं—

**सूर्योज्जायी शीतली च भ्रस्त्री चैव चतुर्थिका।**
**भेदैरेव समं कुम्भो यः स्यात्सहितकुम्भकः॥** 1/21

अर्थात् सहितकुम्भक के चार भेद सूर्य भेदन, उज्जायी, शीतली और भस्त्रिका प्राणायाम हैं।

हठयोगप्रदीपिका 2/44 में कुम्भक प्राणायाम के आठ भेद सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्करी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी बताये गये हैं।

**सूर्यभेदन**—सर्वप्रथम योग का साधक बद्धपद्मासन में स्थित हो। फिर मुँह बन्द रखते हुए दाहिनी नासिका से बाहरी वायु को खीचकर पर्याप्त मात्रा में उदर में भर ले, तत्पश्चात् बायी नासिका (इड़ा) से धीरे-धीरे रेचन करे अर्थात् वायु को बाहर निकाले। कपालशोधन क्रिया (कपाल भाति) में भी धीरे-धीरे वायु का रेचन करना चाहिए। इससे वातदोष एवं कृमिदोष नष्ट हो जाते हैं। इस क्रिया का निरन्तर अभ्यास ही सूर्यभेदन प्राणायाम कहा जाता है।

योगकुण्डल्युपनिषद् 1/23-26

हठयोगप्रदीपिका 2/50 में सूर्यभेदन प्राणायाम के लाभों को गिनाते हुए कहा गया है कि यह कपाल का शोधक, वातविकारनाशक और कृमिदोष हरने वाला है। अतः इसे बार-बार करना चाहिए—

**कपालशोधनं वातदोषघ्नं कृमिदोषहृत्।**
**पुनः पुनरिदं कार्यं सूर्यभेदनमुत्तमम्॥**

**उज्जायी**—साधक अपना मुँह बन्द रखकर दोनों नासापुटों से वायु को धीरे-धीरे इस प्रकार खीचें कि अन्दर प्रवेश के समय श्वॉस से ध्वनि होती रहे। इस प्रकार हृदय एवं कण्ठ तक वायु को भर दे। फिर कुछ देर कुम्भक करके (अर्थात् वायु को अन्दर रोक कर) बायें नासा छिद्र से रेचक करे। यह प्राणायाम शीत ऋतु में करना ज्यादा अनुकूल होता है। इससे जलोदर, धातुरोग एवं कफ रोग ठीक होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है, जिससे भूख खुलकर लगती है। योगकुण्डल्युपनिषद् 1/27-29

हठयोगप्रदीपिका में उज्जायी प्राणायाम के बारे में इस प्रकार कहा गया है—

**मुखं संयम्य नाडीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।**
**यथा लगति कंठात्तु हृदयावधि सस्वनम्॥**
**पूर्ववत् कुम्भयेत्प्राणं रेचयेदिडया ततः॥** 2/51

**शीतली**—इसमें दोनों नासापुटों को बन्द करके जिह्वा के द्वारा वायु को खींच कर कुम्भक क्रिया करे। तत्पश्चात् नासिका से वायु को शनैः शनैः बाहर निकाले। इसके द्वारा प्लीहा, गुल्म, पित्त, ज्वर, तृषा आदि रोगों का शमन होता है। हठयोगी इसके द्वारा हल्के शरीर, दिव्यगन्ध व अल्प मूत्र-पुरीष वाले हो जाते हैं। यह क्षुधापिपासा नाशक है। योगकुण्डल्युपनिषद् 1/30-31

शीतली प्राणायाम के बारे में हठयोगप्रदीपिका में कहा गया है कि साधक को जिह्वा के द्वारा वायु का कर्षण कर कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए और नासापुटों से धीरे-धीरे वायु को निकाल देना चाहिए।

शिवसंहिता 3/84 में कहा गया है कि जो रसना अर्थात् जिह्वा को तालुमूल में स्थापित करके प्राणवायु का पान करता है, उसके रोगों का नाश होता है।—

**रसनां तालुमूले यः स्थापयित्वा विचक्षणः।**
**पिबेत् प्राणानिलं तस्य रोगानां संक्षयो भवेत्॥**

**भ्रस्त्रिका**—प्राणायाम की इस विधा में सर्वप्रथम पद्मासन में बैठकर शरीर को गर्दन सहित सीधा कर मुख को बन्द कर नासिका द्वारा वायु को बाहर निकाले। पुनः तेजी के साथ वायु को ऐसे खींचे कि वायु का स्पर्श कण्ठ, तालु, सिर एवं हृदय को महसूस हो। फिर उसका रेचन करे, फिर पूरक करे। इस प्रकार बार-बार वायु को अन्दर खींचे व बाहर निकाले। थकने पर दाहिने स्वर से वायु को अन्दर खींचकर नासिका को बन्द कर वायु का कुम्भक करे। पुनः बाये नासिकाछिद्र से रेचन करे अर्थात् बाहर निकाले। इस प्रकार के प्राणायाम से जठराग्नि की वृद्धि होती है, कण्ठ की जलन समाप्त होती है। यह प्राणायाम सर्वरोग हरने वाला, पुण्यदायक एवं पापनाशक बताया गया है। इसके छः मास तक नियमित अभ्यास करने से कुण्डलिनी जागृत होती है।

योगकुण्डल्युपनिषद् 1/23-26

भ्रस्त्रिका प्राणायाम की परिभाषा हठयोगप्रदीपिका 2/59-60 में भी लगभग इसी प्रकार दी गयी है—

**ऊर्वोरुपरिं संस्थाप्य शुभे पादतले उभे।**
**पद्मासनं भवेदेतत्सर्वपापप्रणाशनम्॥**
**सम्यक् पद्मासनं बध्वा समग्रीवोदरं सुधीः।**
**मुखं संयम्य यत्नेन घ्राणं घ्राणेन रेचयेत्॥**

इसमें उल्लेखनीय यह है कि रेचन क्रिया इस प्रकार करे कि जिससे शब्दायमान होता हुआ वायु हृदय, कंठ और कपाल तक जा पहुँचे। वायु का निष्कासन उसी प्रकार करे जिस प्रकार कोई लोहार अपनी धौकनी को धौकता है। नासिका को दृढ़तापूर्वक बन्द करने के लिए मध्यमा और तर्जनी को छोड़कर अन्य तीनों अङ्गुलियों का प्रयोग करना चाहिए। भ्रस्त्रिका प्राणायाम सभी ऋतुओं में किया जा सकता है। इससे त्रिदोष का नाश होता है। साधक मोक्ष पाने का अधिकारी हो जाता है।

## प्राणायाम की प्रक्रिया

शरीर में कुल चौदह मुख्य नाड़ियाँ है। इनमें इड़ा, पिङ्गला और सुषम्ना इन तीन नाड़ियों का प्रयोग प्राणायाम में सर्वाधिक होता है। तीनों नाड़ियों में सुषुम्णा को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। यह अत्यन्त सूक्ष्म नली के समान है।

सुषम्ना नाड़ी गुदा के पृष्ठ भाग में मेरुदण्ड के आश्रित रहती है तथा मस्तक में ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचती है। सुषम्ना नाड़ी के बायी ओर इड़ा नाड़ी

और दायीं ओर पिङ्गला नाड़ी स्थित है। इड़ा में चन्द्रमा चलायमान रहता है और पिङ्गला में सूर्य। पिङ्गला नाड़ी ऊपर की ओर चलकर दायीं नासिका तक पहुँचती हैं। इड़ा नाड़ी ऊपर की ओर चलकर बायी नासिका तक पहुँचती है। भ्रूमध्य में तीनों नाड़ियाँ आपस में मिल जाती हैं। इनके परस्पर मिलने के स्थान को 'युक्त त्रिवेणी' कहा जाता है।

सर्वप्रथम पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके पद्मासन में बैठना चाहिए। गर्दन और मस्तक को सीधा रखकर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखनी चाहिए। दोनों भौंहों के मध्य चन्द्रमण्डल को देखना चाहिए। तत्पश्चात् बारह मात्रा तक इड़ा नाड़ी के माध्यम से अर्थात् बाये स्वर से श्वास खींचे (पूरक) ऐसा करने के पश्चात् वायु को अन्दर रोके (कुम्भक) तत्पश्चात् सूर्यनाड़ी अर्थात् दक्षिण नासिका से वायु का विसर्जन करे। (रेचक) प्राणायाम में श्वांस को अपने फेफड़े में पूर्ण रूप से भरना चाहिए। अर्थात् अपनी देह में वायु को भरकर उसको छोड़ा न जाय और भरे हुए कुम्भ (घड़े) के समान स्थिर रखा जाय, इसी लिए इस क्रिया को कुम्भक कहते हैं।

नारदीयपुराण में प्राणायाम का एक और प्रकार शून्यक भी बताया गया है। शरीर के भीतर की वायु को न निकाला जाय और बाहर की वायु को न भीतर खींचा जाय, ऐसी स्थिति वाली क्रिया को शून्यक नामक प्राणायाम कहते हैं।

पूरक, रेचक आदि क्रियाओं को करने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।

**पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत्।** घेरण्डसंहिता 1/58

सर्वप्रथम दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने नासापुट को बन्द कर, ॐ अथवा अपने इष्ट का सोलह वार जप करते हुए वायु को धीरे-धीरे बाए नथुने से खीच कर भीतर यथाशक्ति भरना चाहिए। तत्पश्चात् कनिष्ठिका और अनामिका से बायें नासापुट को बन्द कर वायु को रोकते हुए ॐ का चौसठ बार जप करते हुए कुम्भक क्रिया करनी चाहिए। फिर अँगूठे को दाहिने नथुने से उठाकर ॐ का बत्तीस बार जप करते हुए दाहिने नथुने से वायु को निकालना चाहिए (रेचक) इसी प्रकार उलटे तरीके अर्थात् रेचक के बाद ॐ का जप करते हुए उसी दाहिने नासापुट से पूरक, दोनों नासापुट को बन्द कर कुम्भक और बाये नथुने से रेचक करना चाहिए।

अथर्ववेद में श्वास को अन्दर खीचने के लिए आयत् (पूरक) श्वास को अन्दर रोकने के लिए तिष्ठत् (कुम्भक) और श्वास को बाहर निकालने के

लिए परायत् (रेचक) शब्द प्रयोग हुआ है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में प्राणायाम की अतिशय महिमा वर्णित है—

**यस्तु कुर्याद् द्विजश्रेष्ठः प्राणायाममतन्द्रितः।**
**न तत्पुण्यमवाप्नोति तीर्थानुसरणाद्द्विजाः॥**
**प्राणायामपरा विप्राः सर्वनिर्धौतकल्मषाः।**
**त्रिदिवं प्रतिपद्यन्ते मोक्षं वा मनसेप्सितम्॥**

तृतीय खण्ड 281

वायुपुराण 10/90 में प्राणायाम के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है कि प्राणायाम से साधक सत्त्वस्थ हो जाता है और उसके सभी दोष नष्ट हो जाते हैं :

**प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः।**
**सर्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते॥**

हठयोगप्रदीपिका में प्राणायाम से सभी रोगों का क्षय होना बताया है— **प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।** वायुपुराण 10/94 में प्राणायामपरायण योगी को ब्रह्मलोक प्राप्त होना बताया गया है।

मनु ने प्राणायाम को परम तप कहा है—

**प्राणायामः परं तपः।** मनुस्मृति 2/86

## प्राणायाम से लाभ

1. प्राणायाम से मन स्थूल पदार्थों से सूक्ष्म की ओर जाता है।
2. दुर्विचार का त्याग प्राणायाम से सम्भव होता है।
3. प्राणजय प्राणायाम द्वारा ही होता है।
4. प्राणायाम से पापों का नाश होता है।
5. प्राणायाम से चित्त स्थिर होता है।
6. प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियों की शुद्धि हो जाती है।
7. शरीर से आलस्य दूर होकर चित्त प्रसन्न होता है।
8. प्राणायाम से धारणा की योग्यता प्राप्त होती है।
9. **प्राणायामात्परं नास्ति द्विजातीनां तथा तपः।**
   **निरोधाज्जायते वायुस्ततस्त्वग्निः प्रजायते॥**

   विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/280/4

द्विजातियों के लिए प्राणायाम से अधिक कोई तप नहीं है। प्राणों के निरोध से वायु उत्पन्न होता है और उससे अग्नि प्रदीप्त होती है।

10. कुम्भक प्राणायाम से प्राण और वीर्य का स्थिरीकरण होता है।
11. प्राणायाम के अभ्यास से समस्त प्रकार के कफ दोषों का निवारण होता हैं—

    **एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत्।** घेरण्डसंहिता 1/58
12. प्राणायाम से शरीर में लाघव (हल्कापन) आता है।

    **प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि।**

    घेरण्डसंहिता 1/11
13. प्राणायाम से इन्द्रियों में एकत्रित सभी दोष नष्ट हो जाते हैं—

    **प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषम्।**

    अमृतनादोपनिषद् 8
14. प्राणायाम से हृदय में उत्साह और वाणी में मिठास आ जाती है।
15. साधक के बल, तेज और सौन्दर्य में वृद्धि होती है।
16. प्राणों पर विजय प्राप्त करने से धृति, मेधा व यौवन का विकास होता है।
17. समानवायु को जीतने से योगी का शरीर अग्नि के समान चमकने लगता हैं--

    **समानजयाज्ज्वलम्** पातञ्जलियोगसूत्र विभूतिपाद 40
18. प्राणायाम से रोगों का नाश व आयु की वृद्धि होती है। अथर्ववेद 7/53/6
19. प्राणायाम शरीर का पोषक है और इससे मनुष्य दीर्घायु होता है। अथर्ववेद 3/11/6
20. प्राणायाम करने वाला इच्छामृत्यु प्राप्त करता है और स्वर्ग जाता है। अथर्ववेद 2/34/5
21. प्राण से ही जीव प्राणी कहलाता है। समस्त प्राणियों को भगवान् के पूजा का स्थान बताया गया है। इससे प्राण व उसका उत्कर्ष सर्वातिशायी सिद्ध होता है।

## प्राणायाम के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बिन्दु

1. यम, नियम एवं आसन से पूर्ण रूप से सम्पन्न होने के पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। अर्थात् आसन दृढ़ होने पर ही प्राणायाम प्रारम्भ करे।
2. प्राणायाम का आरम्भ करने के लिए वसन्त और शरद ऋतु अनुकूल माना गया है।
3. प्राणायाम के बाद सदैव शवासन निश्चित रूप से करना चाहिए।
4. सात्त्विक बुद्धि और प्रसन्न मन से सदैव प्राणायाम करना चाहिए।
5. प्राणायाम के समय मुँह और आँख बन्द रखें।
6. अपनी शक्ति के अनुकूल ही प्राणायाम करना हितकर है।
7. प्राणायाम के समय हाथों को अपनी गोद में रख ले और दृष्टि अपनी नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करे।
8. प्रतिदिन तीन समय ॐकार का चिन्तन करते हुए प्राणायाम करें।
9. प्राणायाम के लिए नीरव व निर्जन स्थान होना चाहिए।
10. मन्द, मध्यम और मुख्य अर्थात् उत्तम प्राणायाम में शरीर में क्रमशः स्वेद, कम्पन तथा उत्थान होता है।
11. अजीर्ण की स्थिति में, थकावट में, भूख प्यास की दशा में और चिन्ता से व्याकुल होने पर प्राणायाम न करे।
12. प्राणायाम में जब प्राण का संचार रोके, तब पाषाण की तरह निश्चल हो जाए।
13. प्राणायाम हेतु आसन मुलायम, सुन्दर, विस्तृत और पवित्र तथा समाकार होना चाहिए।
14. योगी को प्राणायाम परायण होना चाहिए—

    **तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत्।**
    **सर्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति॥**

    वायुपुराण 10/94
15. बिन्दु स्थान, सत्त्व और प्रकृति का विस्तार प्राणवायु है।
16. ब्रह्मा भी अल्पायु के भय से मुक्ति पाने के लिए प्राणायाम करते हैं—योगचूडामण्युपनिषद् 92

17. समुचित तरीके से ही प्राणवायु को खीचे व समुचित विधि से ही प्राणवायु को रोके एवं बाहर निकाले, तभी सिद्धि प्राप्ति होती है।

18. उत्तम कोटि के प्राणायाम में शरीर आसन से उठने लगता है—
**उत्तमे स्थानमाप्नोति ततो वायुं निरुन्धयेत्।**

योगचूडामण्युपनिषद् 105

छत्तीस मात्रा तक के काल तक प्राणनिरोध को उत्तम प्राणायाम कहा जाता है—

**घट्त्रिंशन्मात्रिकोत्तमः।** कूर्मपुराण उ0वि0 11/32

19. प्राणायाम में देश (स्थान), काल (क्षण, अवधि), संख्या (कितनी संख्या में अर्थात् कितनी बार कुम्भक, रेचक आदि किया गया), दीर्घ, सूक्ष्म का महत्त्व अधिक है।

20. श्रुतियों में प्राण को ही बल, अमृत व आयु कहा गया है।

ॐ

# प्रत्याहार

महर्षि पतञ्जलि द्वारा उपदेशित योग के आठ अङ्गों में पाँचवा अङ्ग प्रत्याहार है। यह योगाङ्ग योग के बहिरङ्ग भाग का अन्तिम स्तर है। इसमें योगी उस स्तर पर पहुँच जाता है जहाँ पर इन्द्रियाँ पूर्ण रूपेण वश में हो जाती हैं। योग का चौथा अङ्ग प्राणायाम है। अर्थात् प्राणायाम की स्थिरता से प्रत्याहार की सिद्धि होती है। प्रत्याहार का लक्षण योगसूत्र 2/54 में इस प्रकार है—

**स्वविषयसम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।**

योगसूत्र 2/54 की भोजवृत्ति में लिखा है—

**इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाहिन्तेस्मिन्निति प्रत्याहारः।**

इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों से सम्बन्ध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार है। इस प्रकार विषयों के सागर में प्रवेशोपरान्त वहाँ फसी हुई इन्द्रियों को लौटाकर अपने अधीन करना प्रत्याहार है।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द जिनका सम्बन्ध क्रमशः आँख, जिह्वा, नाक, त्वचा और कान से है—विषय हैं। ये विषय मन को बाँधे रखते हैं। मन का स्वभाव ही है इनकी ओर दौड़ना। भोग करते-करते इन्द्रियों की विषयों के प्रति प्रीति हो जाती है। इन इन्द्रियों को उनके विषयों से वापस खींच लेना, लौटा लाना और ध्येय में लगाना ही प्रत्याहार है।

इन्द्रियाँ चित्त के अधीन कार्य करती हैं। प्राणायाम के पश्चात् इन्द्रियाँ अपने विषयों से विमुख होती हैं। इन्द्रियों का विषयों से विमुख होना, वापस लौटना ही प्रत्याहार है। बहिर्मुख इन्द्रियों का अन्तर्मुख हो जाना प्रत्याहार है। इसमें साधक जितेन्द्रिय हो जाता है। अपने विषयों से वापस लौटने के पश्चात् इन्द्रियाँ चित्त का अनुकरण सी करने लगती हैं और जब चित्त का निरोध हो जाता है तब उन इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है। इस प्रकार चित्त का निरोध होने पर इन्द्रियों का स्वतः निरोध हो जाता है। प्रत्याहार से इन्द्रियों को आलस्य और प्रमाद रूप तमोगुण व बहिर्मुखता रूप रजोगुण से हीन करके सात्विक रूप से चित्त के साथ अन्तर्मुखी कर दिया जाता है।

शाण्डिल्योपनिषद् 18/1 में प्रत्याहार के बारे में कहा गया है कि **'स पञ्चविधः विषयेषु विचरतामिन्द्रियाणां बलादाहरणं प्रत्याहारः। यत्यत्पश्यति तत्सर्वमात्मेति प्रत्याहारः। नित्यविहितकर्म फलत्यागः प्रत्याहारः। सर्वविषयपराङ्मुखत्वं प्रत्याहारः। अष्टादशसु मर्मस्थानेषु क्रमाद्धारणं प्रत्याहारः।'**

अर्थात् प्रत्याहारः पाँच प्रकार का होता है—

1. विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों को बलपूर्वक अपनी ओर खींचना प्रत्याहार है।
2. जो-जो दिखाई देता है वह सब आत्मा है, ऐसा समझना प्रत्याहार है।
3. नित्य किये गये कर्मों के फल का त्याग अर्थात् फलाकाङ्क्षा का न होना प्रत्याहार है।
4. समस्त प्रकार के विषय—वासनाओं से रहित होना प्रत्याहार है।
5. अठारह मर्मस्थलों में क्रमशः धारणा करना प्रत्याहार है।

यह धारणा तीन प्रकार की होती है—

1. अपनी अन्तरात्मा में मन की धारणा करना।
2. हृदयाकाश में बाह्याकाश की धारणा करना।
3. पृथ्वी, जल, आकाश, तेज, वायु में पाँच मूर्तियों की धारणा करना।

जबालदर्शनोपनिषद् 7/1-5 में प्रत्याहार का विस्तार से लक्षण व स्वरूप बताया गया है। विषय भोगों में स्वभाववश विचरण करने वाली सभी इन्द्रियों को हठात् वहाँ से वापस लाने का प्रयत्न प्रत्याहार है। सभी दृश्य वस्तुओं में ब्रह्म (परमात्मा) को देखना, समझना और ब्रह्म में चित्त को एकाग्र कर लेना प्रत्याहार है। पवित्र-अपवित्र, नित्य-काम्य सभी कर्मों को परमात्मा को समर्पण कर देना प्रत्याहार है। ऐसा करने से वे कर्म साधक के लिए बन्धन नहीं बनते। गीता 2/58 में प्रत्याहार हेतु कूर्म (कछुवे) की शारीरिक क्रिया को साक्ष्य रूप में बताया गया है। वायुपुराण 11/19 में कहा गया है कि कछुवा जिस प्रकार अपने शरीर का आकुंचन करता है उसी प्रकार योगी सभी विषय समूहों से मन को हटाकर एकस्थ होकर आत्मा में सबका निरोध करे। ऐसा करने से योगी आत्मा का दर्शन आत्मा में ही करते हैं। योगी प्राणायाम काल

में बाहर-भीतर शुद्ध होकर वायु को नाभि से कण्ठ तक पूर्ण कर प्रत्याहार करे—

**यस्तु प्रत्याहरेत्कामान्कूर्मोङ्गानीव सर्वतः।**
**तथाऽत्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि॥**

चित्तवृत्ति के अनेकानेक तरङ्गों का विषयों से निवर्तन (वापस आना) ही प्रत्याहार है। दत्तात्रेय ने प्रत्याहार के बारे में लिखा है कि साधक जब कुम्भक लगाकर इन्द्रियों को उनके विषयों से खींच लेता है तो वह प्रत्याहार है—

**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरति स्फुटम्।**
**योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते॥**

दत्तात्रेय का योगशास्त्र 186

प्रत्याहार के बाद ही योग के छठे अङ्ग धारणा की सिद्धि होती है।

ॐ

# धारणा

अष्टाङ्ग योग के अन्तिम तीन अङ्ग धारणा, ध्यान व समाधि माने गए हैं। ध्येय वस्तु में मन की स्थिति को धारणा कहते हैं। बारह आयाम की धारणा होती है और बारह धारणा का ध्यान होता है। बारह ध्यान पर्यन्त मन का एकाग्र रहना समाधि है। चित्त को एक लक्ष्य विशेष में रोक देना, टिका देना या बाँध देना धारणा कहा जाता है। वह लक्ष्य स्थान चाहे देह का कोई अङ्ग हो या देह के बाहर का हो। चित्त को इसमें धारण किया जाता है इसीलिए धारणा कही जाती है। अद्वैतमार्तण्ड में इसे ही लक्ष्ययोग कहा गया है। धारणा, ध्यान और समाधि के सम्मिलित रूप को संयम कहा जाता है। योग के जिस स्तर पर इन तीनों का साथ-साथ प्रयोग हो वह संयम है।

किसी एक अभीष्ट विषय में चित्त का स्थिर करना धारणा कहा जाता है। मन की वह स्थिति जिसमें ब्रह्म चिन्तन के अतिरिक्त अन्य कोई भाव या विचार नहीं आता, उसे धारणा कहते हैं। अमृतनादोपनिषद् 16 में लिखा है कि बुद्धिमान् मनुष्य मन को संकल्प रूप में जानकर उसे आत्मा में लीन कर दे। तत्पश्चात् उस आत्मा को भी परमात्मा में स्थिर कर दे। इस तरह की क्रिया को धारणा कहा जाता है—

**मनः संकल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान्।**
**धारयित्वा तथात्मानं धारणा परिकीर्तिता।।**

इसी उपनिषद् में कहा गया है कि प्राणायाम के द्वारा दोषों को और धारणा के द्वारा पापों को जलाकर भस्म कर डालें—

**प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषम्।8**

मण्डलब्राह्मणोपनिषद् 1/1/8 में विषयों से निरोधित मन को चैतन्य सत्ता में स्थिर करना धारणा कहा गया है—

**विषयव्यावर्तनपूर्वकं चैतन्ये चेतः स्थापनं धारणं भवति।**

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 2134 में कहा गया है कि—

**मनसो धारणं यत्तद्युक्तस्य च यमादिभिः।**

**धारणा सा च संसारसागरोत्तारकारणम्॥**

अर्थात् यमादि द्वारा मन को एकाग्र करना ही धारणा कहा जाता है। वह संसार रूपी सागर से तार देती है।

बृहन्नारदीयपुराण 47/54 में धारणा की परिभाषा देते हुए लिखा है—

**एषा वै धारणा ज्ञेया यच्चित्तं तत्र धार्यते।**

अर्थात् जहाँ चित्त को एकाग्र किया जाता हो अथवा जहाँ चित्त को एक आधार प्राप्त होता है वह धारणा कही जाती है।

कूर्मपुराण उ0वि0 11/39 में धारणा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

**हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्नि पर्वतमस्तके।**
**एवमादिषु देशेषु धारणा चित्तबन्धनम्॥**

अर्थात् हृदयकमल, नाभिदेश, मूर्धा व पर्वतशिखर आदि स्थानों में चित्त के बन्धन को धारणा कहा जाता है।

गुरुडपुराण में **'धारणो मनसो धृतिः'** अर्थात् मन में धैर्य व संयम ही धारणा कहा गया है।

अपरोक्षानुभूति 122 में आचार्य शंकर कहते हैं कि जिस-जिस पदार्थ में मन जाये, उसी-उसी में उसके अधिष्ठान ब्रह्म का दर्शन करते हुए मन को स्थिर करना उत्तम धारणा है। सिद्धसिद्धान्त संग्रह 2/55 में कहा गया है कि वृत्तियों का निर्विकार में धारण ही धारणा है।

धारणा के पहले प्राणायाम में मन का चाञ्चल्य नष्ट हुआ रहता है। मन के क्लेश रूप दोष पहले नष्ट हुए रहते हैं।

धारणा के लिए वैराग्य, अभ्यास, तप और धैर्य के साथ ध्यान करना होगा। धारणा का अभ्यास मन को एकाग्र बनाता है। चित्त की एकाग्र भूमि या अवस्था में पहूँचने पर मन स्थिर व शान्त हो जाता है। चित्त की एकाग्र वृत्ति सत्त्व प्रधान है। चित्त की एकाग्रता को विशेष रूप से जानने का उपदेश सनत्कुमार ने देवर्षि नारद को दिया है—

**यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। कृतिं भगवो विजिज्ञास इति।** छान्दोग्योपनिषद् 7/21/1

अर्थात् जब मनुष्य कोई विशेष कार्य करता है तो उसके प्रति निष्ठावान्

हो जाता है। विना कार्य किए निष्ठा नहीं होती। कर्म करने पर ही व्यक्ति निष्ठावान् होता है। कृति अर्थात् इन्द्रिय निग्रह व चित्त की एकाग्रता को विशेष रूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए। मै कृति को ही विशेष रूप से जानने की इच्छा करता हूँ। इस प्रकार धारणा करना मानव का प्रमुख कर्तव्य श्रुतिप्रतिपादित है। धारणा में श्रद्धा, निष्ठा, प्राणायाम, अवधान व एकाग्रता अत्यन्त सहायक होते हैं।

मन की धारणा से ही प्राण (वायु) की धारणा भी होती है। मन की स्थिरता के लिए प्राणायाम को अपरिहार्य बताया गया है।

धारणा की सिद्धि के लिए अधोलिखित मुद्राओं का अभ्यास आवश्यक है—

1. **अगोचरी**—मन को नासिका के अग्रभाग पर स्थित करना।
2. **भूचरी**—मन को नासिका के अग्रभाग से चार अङ्गुल दूर स्थिर करना।
3. **खेचरी**—मन को आज्ञा चक्र में रोकना/इसे चाचरी मुद्रा भी कहते हैं।
4. **शाम्भवी**—मन को आज्ञा चक्र में रोकने के पश्चात् उसके अगल-बगल मन को किसी काल्पनिक वस्तु में स्थिर करना। इसमें भृकुटी के मध्य में दृष्टि को स्थिर किया जाता है।
5. **उन्मनी**—साधक का इसमें मनोलय हो जाता है अर्थात् मन का क्षय हो जाता है। लय को प्राप्त हुए मन को गौडपादाचार्य ब्रह्म की संज्ञा देते हैं।

जाबालदर्शनोपनिषद् 8/1-4 में पाँच धारणाएं बतायी गयी हैं—

1. **बाह्याकाश धारणा**—शरीर के अन्दर जो आकाश तत्त्व स्थित है उसमें बाह्याकाश की धारणा करें।
2. **बाह्य वायो धारणा**—शरीर में स्थित प्राण में वाह्य वायु तत्त्व की धारणा।
3. **बाह्याग्नि धारणा**—जठराग्नि में बाह्य अग्नि तत्त्व की धारणा करें।
4. **बाह्यतोय धारणा**—शरीरगत जल अंश में बाह्य जल तत्त्व की धारणा।

5. **बाह्यपृथ्वी धारणा**—शरीर के पार्थिव भाग में सम्पूर्ण पृथ्वी की धारणा करनी चाहिए।

धारणा काल में क्रमशः हं यं रं वं लं-इन बीज अक्षरों (मंत्रों) का उच्चारण करें। ऐसी धारण उत्तम धारणा कही जाती है और यह सर्व पापों का विनाश करने वाली है।

ॐ

# ध्यान

ध्यान शब्द ध्यै धातु (चिन्तन करने के अर्थ में) से ल्युट् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ चिन्तन करना व ध्यान करना होता है।

ध्यान ध्याता के सम्पूर्ण आन्तरिक शक्तियों के पुञ्जीकरण का नाम है। ध्यान जीवन का सार है। ध्यान मानसिक उन्नयन का कार्य करता है। ध्यान में परमहर्ष व आह्लाद का स्पन्दन है। ध्यान का अर्थ है समय के प्रति अबोध हो जाना। ध्यान अपनी दैहिक सत्ता को विस्मृत कर देने का नाम है। ध्यान से मन पूर्ण शान्त होता है। ध्यान का कोई आदि अन्त नहीं होता। ध्यान जीवन की एक महान कला एवं विज्ञान है। ध्यान रूपी दृष्टि सूक्ष्मातिसूक्ष्म व महान् से भी महत्तर सत्ता का दर्शन कर लेती है।

ध्यान में ध्याता अपने चित्त को ध्येय में स्थिर या एकाग्र करता है। ध्यान की चरमावस्था ही समाधि है। विषयों के प्रति दृढविरक्ति होने का नाम ध्यान है। चित्त को सब ओर से हटाकर एकाग्र करना या स्थिर करना ध्यान है। सही जीवनचर्या के लिए ध्यान आवश्यक है। ध्यान दिव्यतत्त्व प्रेम का स्पन्दन है। ध्यान साधन और साध्य दोनों है। ध्याता को पवित्र, स्थिर व शान्त मन से और इर्ष्या, राग, द्वेष से विमुक्त होना चाहिए। ध्यान का सौन्दर्य दिव्य, अद्भुत व असीम है। ध्यान में मन निर्विषय हो जाता है। स्कन्दोपनिषद् 11 एवं मैत्रेय्युपनिषद् 2/2 में लिखा है कि मन को विषयरहित करना ही परमात्मा का ध्यान हैं। ध्यान का तात्पर्य निष्क्रिय होना नहीं है। ध्यान में मन को ज्ञात से मुक्त किया जाता है। श्रीनरसिंहपुराण 61/3 में प्रतिदिन योगनिष्ठ होकर ध्यान करने का उपदेश दिया गया है। सर्वकारणकारण, ज्ञानानन्द स्वरूप, अनामय, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, जगदाधार, अच्युत का ध्यान करना चाहिए। गरुडपुराण में लिखा है कि परमात्मा के ध्यान में लगाई गई आत्मा तदाकार हो जाती है।

विभिन्न ग्रन्थों में ध्यान का लक्षण इस प्रकार प्राप्त होता है—

1. **रागोपहितर्ध्यानम्** —सांख्यदर्शन 3/30

अर्थात् चित्त का राग से मुक्त होना ही ध्यान है।

2. **तत्र प्रत्येयैकतानता ध्यानम्** -पातञ्जलयोग विभूतिपाद 2

अर्थात् धारणा वाले विषय में ज्ञान की एकाग्रता ही ध्यान है। इसमें ध्येय रूप आत्मा होता है। अन्य किसी ज्ञान का स्पर्श नहीं होता है।

3. **तद्रूपप्रत्यया चैका सन्ततिश्चान्यनिःस्पृहा।**
**तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप।।** श्रीविष्णुपुराण 6/7/91

जिसमें परमात्मा के रूप की प्रतीति होती हो, ऐसी जो अन्य विषयों की स्पृहा से रहित एक अनवरत धारा है, उसे ही ध्यान कहते हैं।वह अपने से पूर्व यम, नियमादि छः अङ्गों से निष्पन्न होता है।

4. **अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः।** स्कन्दोपनिषद् 11

सभी प्राणियों में ब्रह्म का अभेद रूप से दर्शन करना ज्ञान है और मन का विषयों से आसक्ति रहित होना ध्यान है।

5. **सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते।**

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् 31

मै वही चिन्मांत्र परमात्मा हूँ, ऐसा चिन्तन ध्यान कहलाता है।

यही ध्यान जब विस्मृत हो जाता है, तब समाधि कहलाता है।

6. **धारणा द्वादश प्रोक्तं ध्यानं योगविशारदैः।**

योगचूडामण्युपनिषद् 1/2

धारणा की बारह आवृत्ति को ध्यान कहा जाता है। अर्थात् धारणा की द्वादश आवृत्ति पर ध्यान बनता है।

7. **अचिन्त्यैव परं ध्यानम्।** —शंकराचार्य।

अर्थात् किसी वस्तु का विचार न करना ही परम ध्यान है।

शाण्डिल्योपनिषद् अध्याय एक दशम खण्ड में ध्यान दो प्रकार के बताए गए हैं:—

1. निर्गुण
2. सगुण

इष्ट की मूर्ति का चिन्तन करना सगुण ध्यान व आत्मा के स्वरूप का ध्यान करना निर्गुण ध्यान कहलाता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार ध्यान के तीन भेद हैं :—

1. **स्थूल ध्यान**—इसमें इष्ट देव या गुरु का साकार चिन्तन किया जाता है।
2. **ज्योतिर्ध्यान**—इसमें तेजोमय ब्रह्म या प्रकृति का ध्यान किया जाता है।
3. **सूक्ष्म ध्यान**—सूक्ष्म ध्यान में कुण्डलिनी का ध्यान किया जाता है। इसमें कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

स्थूल ध्यान से ज्योतिर्ध्यान श्रेष्ठ कहा जाता है और ज्योतिर्ध्यान से श्रेष्ठ सूक्ष्म ध्यान कहा जाता है।

योगराजोपनिषद् 19 में लिखा है कि—

नौ चक्रों का क्रमशः ध्यान करने से साधक को मुक्ति मिल जाती है।

लिङ्गपुराण में कहा गया है कि ध्यानयज्ञ से बड़ा कुछ भी नहीं है। ध्यान पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति का साधन है।

**ध्यानयज्ञात्परो नास्ति ध्यानं ज्ञानस्य साधनम्।** 75/14

ध्यानबिन्दूपनिषद् में लिखा है कि यदि पर्वत की तरह अनेक योजन बड़े पाप हों तो भी ध्यानयोग साधना द्वारा उनको नष्ट किया जा सकता है। अन्य किसी साधन से उन पापों का नाश सम्भव नहीं है।

वायुपुराण में लिखा है कि ध्यान द्वारा प्राण वायु जब संयत और अनुकूल हो जाता है तब वह शरीरगत पाप का नाश कर देता है। ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है। ध्यानयुक्त योगी अपने को सदा चन्द्र-सूर्य के समान देखे। अग्नि के निकट, सूखे पत्तों के ढेर पर, कीट आदि के स्थलों पर, श्मशान में, पुरानी गोशाला में, चौराहे पर, कोलाहल के स्थान में, वृक्ष के नीचे, डरावनी जगह पर, दीपक की मिट्टी से बनी ऊँची भूमि, नदी, कुँआ आदि के निकट, भूखा रहकर व मन चित्त से व्याकुल होकर ध्यान-योग में लीन नहीं होना चाहिए।

सभी प्रकार के योगों में किसी न किसी प्रकार ध्यान अवश्य सहायक होता है। ध्यान के लिए भी निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है।

## ध्यान के ध्यातव्य बिन्दु

1. मनोनिग्रह

2. ब्रह्मचर्य पालन
3. ध्येय में प्रीति व दृढ़ विश्वास
4. एकान्त, नीरव व शान्त स्थान
5. ध्येय के गुणों व स्वरूप का चिन्तन
6. चित्त को हर्ष, विषाद, अहंकार से मुक्ति
7. तामसिक व राजसी आहार का त्याग
8. नियत समय का पालन
9. समुचित आसन का होना
10. ध्यान के समय नेत्र बन्द रखें।
11. अतिसम्भाषण से बचे।
12. साहस, उत्साह और धैर्य बनाए रखें।
13. ध्याता के वस्त्र हल्के व आराम दायक हों।
14. साधक को स्थिर बुद्धि से सम्पन्न होना चाहिए।

ध्यान से एकाग्रता व एकनिष्ठा की प्राप्ति होती है। ध्यान के द्वारा मन और बुद्धि में स्थिरता (स्थैर्य) आती है। ध्यान संसार से पलायन नहीं है, अपितु ध्यान वर्तमान की निर्दोषता है। ध्यान निष्क्रियता न होकर प्रचण्ड सक्रियता है, क्योंकि ध्यान के समय ध्येय पर साधक की सम्पूर्ण ऊर्जा लगी रहती है।

शिवसंहिता में कहा गया है कि निरन्तर ध्यान करने से संसार का विस्मरण हो जाता है और योगी में विचित्र सामर्थ्य हो जाती है।

**निरन्तरकृते ध्याने जगद्विस्मरणं भवेत्।**
**तदा विचित्रसामर्थ्ये योगिनो भवति ध्रुवम्।।** 5/191

इसी में आगे लिखा है—

**ध्यानादेव विजानाति विचित्रेक्षणसम्भवम्।**
**अणिमादिगुणोपेतो भवत्येव न संशयः।।** 5/202

अर्थात् ध्यान से विचित्र सम्भव फल को योगी जानता है। इससे अणिमा, महिमा आदि सिद्धियाँ निःसंदेह प्राप्त होती हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

**ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।** गीता 13/24

अर्थात् कुछ लोग ध्यान के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार अपने अन्तःकरण में करते हैं।

ध्यानबिन्दूपनिषद् में कहा गया है कि—

ध्यान के समय हृदय कमल की कर्णिका के मध्य स्थिर ज्योति शिखा के समान अङ्गुष्ठ मात्र के आकार के नित्य ॐकार रूप परमात्मा का ध्यान करें।

आदिशंकराचार्य विवेकचूडामणि 363 में कहते हैं कि योगी का मन ध्यान से सत्त्वादिगुणत्रयरूप में मल को त्याग कर श्रुति प्रतिपाद्य आत्मतत्त्व को प्राप्त करता है—

**तथा मनः सत्त्वरजस्तमोमलं**
**ध्यानेन सन्त्यज्य समेति तत्त्वम्॥**

भागवत 11/14/36-37 में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि ध्यान के समय यह चिन्तन करे कि हृदय एक कमल है, उसकी डंडी ऊपर की ओर और मुँह नीचे की ओर है। अब ध्यान करें कि उसका मुँह ऊपर की ओर खिल गया है, उसके आठ दल हैं और उसके मध्य में पीली-2 सुकुमार कर्णिका हैं। कर्णिका पर क्रमशः सूर्य, चन्द्र और अग्नि का न्यास करना चाहिए। तदनन्तर अग्नि के अंदर मेरे इस रूप का स्मरण करे। मेरा यह स्वरूप ध्यान के लिए अत्यन्त मङ्गलमय है।

बृहद्योगियाज्ञवल्क्य 9/178 में कहा गया है कि पाप कर्मों के शोधन के लिए ध्यान के समान कोई क्रिया नहीं है।

**ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।**

भविष्यपुराण उत्तरभाग 126/45 में लिखा है कि जिसका हृदय सदा एक तत्त्व में परिनिष्ठित हो चुका है, जिसका अन्तःकरण आत्मानन्द से परिव्याप्त है ऐसे ध्याता के ध्यान को शुक्ल ध्यान कहते हैं।

**तत्त्वैकनिष्ठहृदयो निभृतान्तरात्मा।**
**ध्यानं तु शुक्लमिति तत् प्रवदन्ति सिद्धाः॥**

अनुगीता 51 में शुद्ध ज्ञानयोग के द्वारा ममतारहित निर्भय और निरहंकार होकर महान् आत्मा व उत्तम लोक की प्राप्ति का उपदेश दिया गया है—

**ध्यानयोगेन शुद्धेन निर्ममा निरहंकृताः।**
**आप्नुवन्ति महात्मानो महान्तं लोकमुत्तमम्॥**

शिवपुराण सनत्कुमार संहिता अध्याय 38 में कहा गया है कि शाश्वत, सूक्ष्म पुरुष को ध्यान योग रूपी आँखों से देखना चाहिए। जो ध्यान योग से देखता है वही यथार्थ में पुरुष को देखता है—

**पुरुषं शाश्वतं सूक्ष्मं द्रष्टव्यं ध्यानचक्षुषा।**
**यतते ध्यानयोगेन यदि पश्यति पश्यति॥**

महाभारत शान्तिपर्व में ध्यान योग का उपदेश भीष्मपितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर को विस्तार पूर्वक दिया हैं। ध्यान के समय कानों के द्वारा शब्द न सुने, त्वचा से स्पर्श का अनुभव न करे, आँख से रूप को न देखे, जिह्वा से रसों को न ग्रहण करे तथा ध्यान के समय सूँघने का भी कार्य घ्राणेन्द्रिय से न करे। अर्थात् सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट ले। उनको निर्विषयी करना आवश्यक है। इसमें यह भी बताया गया है कुछ देर ध्यान करने पर साधक में चंचलता या विक्षेप पैदा हो सकता है। परन्तु वह आलस्य व मात्सर्य को त्याग कर ध्यान के द्वारा पुनः मन को एकाग्र कराने का प्रयत्न करे। साधक को ध्यान के समय होने वाले क्लेश से ऊबना नहीं चाहिए। मनोनिग्रहपूर्वक ध्यान करने वाले योगी को जो दिव्य सुख प्राप्त होता है वह किसी दूसरे पुरुषार्थ या दैवयोग से भी नहीं मिल सकता। इसे ही छान्दोग्योपनिषद् में भूमा सुख कहा गया है।

**न तत्पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित्।**
**सुखमेष्यति तत् तस्य यदेवं संयतात्मनः॥**

शान्तिपर्व 195/21

इस प्रकार ध्यान के द्वारा योगी दुःख शोक रहित होकर निर्वाण अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

महाभारत में योग में सहायता पहुचाने वाले देश, कर्म, अनुराग, अर्थ, उपाय, अपाय, निश्चय, चक्षुष्, आहार, संहार, मन और दर्शन-इन बारह योगों का आश्रय लेकर ध्यानयोग का निर्देश महर्षि व्यास ने दिया है।

शान्तिपर्व 236/3

यहाँ देश से तात्पर्य स्थान, कर्म से अर्थ साधक के कर्मों से और उपाय से तात्पर्य अनासक्त होने से है। संहार का अर्थ इन्द्रियों का निग्रह और दर्शन का तात्पर्य जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, दुःख-दोष दर्शन से है।

ॐ

# समाधि

**समाधीयते चित्तम् अस्मिन् इति समाधिः**—शांकरभाष्य।

जिसमें चित्त का समाधान किया जाय वह समाधि है।

समाधि पूर्ण ज्ञान की स्थिति है। यह योग का चरम अङ्ग है। मनोन्मनी, अमरत्व, लयतत्त्व, शून्याशून्य, परमपद, अमनस्क, अद्वैत, निरालम्ब, निरञ्जन, जीवनमुक्ति, सहजा, तुर्या, उन्मनी अवस्था, सहजावस्था आदि सभी समाधि के वाचक हैं। हठयोगप्रदीपिका 4/3-4 जाबालदर्शनोपनिषद् में समाधि को सांसारिक भव बन्धनों का विनाश करने वाला कहा गया है। परमात्मा व जीवात्मा के ऐक्य के सम्बन्ध में निश्चयात्मक बुद्धि का होना समाधि है—

**समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति।** 10/1

स्कन्दपुराण में निदिध्यासन रूप ध्यान की परिपक्व अवस्था को समाधि कहा गया है।

**ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते।**

अर्थात् द्वादश मात्रा ध्यान से समाधि बनती है। समाधि चित्त का सार्वभौम धर्म कहा जाता है।

**योगः समाधि, स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः**—योगभाष्य।

केवल एकाग्र और निरुद्ध नामक चित्त वृत्तियों में होने वाली समाधि को योग कहा जाता है। योगसूत्र 2/45 में कहा गया है **'समाधिसिद्धिरीश्वर-प्रणिधानात्'** अर्थात् ईश्वर प्रणिधान सिद्ध होने पर समाधि की प्राप्ति होती है।

दक्षस्मृति में समाधि के बारे में कहा गया है कि समस्त विषय भोगों से विरक्त होकर मन जब निश्चल और सुस्थिर हो जाता है, केवल आत्मशक्ति से अपने रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है तो इसी स्थिति का नाम समाधि है—

**त्यक्त्वा विषयभोगांश्च मनोनिश्चलतां गतम्।**
**आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्तितः।**

दक्षस्मृति 7/21

सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् 2/14 में कहा गया है कि आत्मा में मन का ऐक्य होना ही समाधि है—**तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते।** इसी में आगे कहा गया है कि समस्त संकल्पों का नष्ट होना समाधि है—

**यत्समत्वं तयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः।**
**समस्तनष्टसंकल्पः समाधिरभिधीयते॥** 2/16

जब सांसारिक बोध से रहित मन में, बुद्धि शून्य मन में कुछ भी आभास नहीं होता, सब कुछ शून्यवत प्रतीत होता है ऐसी स्थिति समाधि कहलाती है।

**प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं निरामयम्।**
**सर्वशून्यं निराभासं समाधिरभिधीयते॥** 2/17

जब जीवात्मा निश्चल, नित्य, स्वयं प्रकाशरूप में विद्यमान हो जाता है तब वह अवस्था समाधि कहलाती है।

जब ध्यान अति प्रगाढ़ हो जाता है, तब वह समाधि की अवस्था होती है। उसमें साधक को अपनी विस्मृति हो जाती है।

अवधूतगीता में समाधि को Superflous कहा गया है। दत्तात्रेय के मत में परमात्मा के साक्षात्कार के लिए समाधि की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आत्मतत्त्व के लिए सदैव अभ्यास या ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। वह तो सत् चित् आनन्द और विज्ञानमय है। वह सर्वज्ञात व सर्वव्यापी है।

समाधि के लिए सत्त्व बाहुल्य की आवश्यकता होती है। समाधि का सुख अनिर्वचनीय होता है। मैत्रायण्युपनिषद् 4-3 में कहा गया है कि समाधि द्वारा चित्त की शुद्धि और तदनन्तर आत्मानुभूति होती है।

**समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं लभेत्।**
**न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥**

वसिष्ठसंहिता में कहा गया है—

**समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः।**

जीवात्मा और परमात्मा की समतावस्था (ऐक्यानुभूति) समाधि है।

समाधि का स्थान ध्यान के बाद है। समाधि में निर्विषय मन गुण प्रवाह से हीन होकर भगवान् में लय प्राप्त कर लेता है। अर्थात् ब्रह्म के आकार में परिणत हो जाता है।

समाधि अवृत्तिक अवस्था है।

## समाधि के लिए आवश्यक तत्त्व

1. चित्त की शुद्धि व उसका स्थैर्य (निश्चल)
2. चित्त का निर्विकार होना
3. शुद्ध भक्ति
4. मन की एकाग्रता, मन का प्रबोध
5. ध्यान (साढ़े तीन मात्रा वाले प्रणव (ओम्) का जप, तदनन्तर ध्यान)
6. गुरुकृपा, गुरुसेवा एवं गुरु अनुग्रह, गुरु में विश्वास
7. विद्या की प्रतीति
8. आत्मा में विश्वास

श्रीशंकराचार्य ने विवेकचूडामणि में कहा है कि समाधि से समस्त वासनाओं की ग्रन्थि नष्ट हो जाती है और सभी कर्मों का नाश हो जाता है। तत्पश्चात् साधक अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है।

**समाधिनानेन समस्तवासना ग्रन्थेर्विनाशोऽखिलकर्मनाशः।** 364

शाण्डिल्योपनिषद् 1/11 में बताया गया है कि जीवात्मा एवं परमात्मा की ऐक्यावस्था, ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता की त्रिपुटी विहीन परमानन्दस्वरूप एवं शुद्ध चैतन्यमय अवस्था ही समाधि है।

समाधि के दो प्रकार मुक्तिकोपनिषद् 2/51-52 में वर्णित हैं—

1. **सम्प्रज्ञात समाधि**—चित्तवृत्ति का अंहकार शून्य होकर ब्रह्माकार हो जाना।
2. **असम्प्रज्ञात समाधि**—चित्त की शान्तवृत्ति जो ब्रह्मानन्द देने वाली होती है। इसे निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

सरस्वतीरहस्योपनिषद् 60 में इसी को सविकल्प और निर्विकल्प समाधि कहा गया है।

**सविकल्पो निर्विकल्पः समाधिर्द्विविधो हृदि।**
**दृश्यशब्दानुभेदेन स विकल्पः पुनर्द्विधा॥**

अर्थात् हृदय में दो प्रकार की समाधि होती है एक सविकल्प और दूसरा निर्विकल्प। दृश्यानुविद्ध और शब्दानुविद्ध के भेद से सविकल्प समाधि के भी दो भेद होते हैं।

1. **दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि**—चित्त में प्रकट होने वाले कामादि विकार दृश्य हैं, चेतन आत्मा ही उनका साक्षी (द्रष्टा) है, ऐसा चिन्तन दृश्यानुविद्ध सविकल्प समाधि में करना चाहिए।
2. **शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि**—मैं निःसङ्ग, सच्चिदानन्द स्वरूप, प्रकाश स्वरूप एवं अद्वैत हूँ, ऐसा भाव शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि में होता है।

घेरण्डसंहिता में समाधियोग के छः भेद कहे गए हैं—

1. ध्यानयोग 2. नादयोग 3. रसानन्दयोग
4. लयसिद्धियोग 5. भक्तियोग 6. राजयोग

इसमें ध्यानयोग समाधि शाम्भवीमुद्रा से, नादयोग समाधि खेचरीमुद्रा से, रसानन्दयोग समाधि भ्रामरीमुद्रा से, लयसिद्धियोग समाधि योनिमुद्रा से, भक्तियोग समाधि मनोमूर्च्छा से एवं राजयोग समाधि कुम्भक से सिद्ध होना बताया गया है।

ॐ

# कुछ प्रमुख योग

## विभिन्न योगों की सूची

1. पूर्ण योग
2. ज्ञानयोग
3. कर्मयोग
4. भक्तियोग
5. हठयोग—मार्कण्डेय, मरीचि, जैमिनी, पराशर, भृगु, विश्वामित्र
6. लययोग—अंगिरा, याज्ञवल्क्य, कपिल, वसिष्ठ, कश्यप, व्यास
7. सांख्ययोग
8. भृगुयोग
9. तारकयोग
10. ऋजुयोग
11. राजयोग
12. क्रियायोग—नारद, भृगु, व्यास, बृहस्पति
13. सुरतिशब्दयोग (नामयोग-सहजयोग)
14. जपयोग
15. मंत्रयोग—नारद, पुलस्त्य, गर्ग, बाल्मीकि, भृगु, बृहस्पति
16. बुद्धियोग
17. समाधियोग
18. ध्यानयोग (चिन्तायोग)
19. महायोग—महर्षिरमण
20. प्रेमयोग

21. विरहयोग
22. पाशुपतयोग—रूरु, दधीचि, अगस्त्य, उपमन्यु
23. संकीर्तनयोग
24. शिवयोग
25. मनोयोग
26. मुक्तियोग
27. संन्यासयोग
28. आत्मयोग/हंसयोग
29. ब्रह्मयोग
30. अस्पर्शयोग
31. विभूतियोग
32. पुरुषोत्तमयोग
33. मण्डूकयोग
34. शीततोयाग्नियोग
35. क्रमयोग
36. अभ्यासयोग
37. कालयोग
38. सनातनयोग
39. शब्दयोग —भर्तृहरि, वसिष्ठ
40. माहेश्वरयोग
41. अनासक्तियोग
42. अध्यात्मयोग
43. भावनायोग
44. न्यासयोग
45. नाथयोग
46. कुण्डलिनीयोग
47. विवेकयोग

48. मृत्युञ्जययोग

49. तान्त्रिकयोग

इनमें से कुछ प्रमुख योगों के लक्षण, स्वरूप एवं प्रक्रिया के बारे में संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है—

**अस्पर्शयोग–**

प्रकृति—विकृति रहित, चैतन्य, अद्वितीय, असङ्ग, प्रत्यगभिन्न ब्रह्मविषयक समाधि चैतन्य समाधि कहलाती है। कतिपय विद्वान् अस्पर्शयोग को निर्विकल्पक समाधि भी कहते हैं। संसार के जो भी संस्पर्शजन्य भोग हैं वे दुःख के कारण हैं। **ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।** गीता 5/22 उनमें रमना या चित्त लगाना आत्म ज्ञान व आत्म साक्षात्कार में बाधक है। चैतन्य समाधि का नाम ही अस्पर्श योग है। सभी विषय स्पर्शों से, सम्बन्धों से अलिप्त (अनासक्त) रहना अस्पर्श योग है। इसे अभावयोग भी कहते हैं। जिसमें सम्पूर्ण विश्व के रूप मात्र का अवयव विलीन हो जाता है उस अभावयोग में उस समय सद्वस्तु का भी भाव नहीं रहता। आचार्य गौडपाद की माण्डूक्यकारिका 3/39 में कहा गया है—

**अस्पर्श योगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः।**
**योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः॥**

अर्थात् अस्पर्श योग सभी योगियों के लिए दुर्दर्श है। योगीगण इसे सर्वभयविनिर्युक्त आत्मनाश समझकर भयभीत होते हैं। वे अभयपद में भय का दर्शन करने से अविवेकी हैं। शंकराचार्य कहते हैं कि सम्पूर्ण भय से रहित होने पर भी इस योग को आत्मनाश मानने के कारण इस अभय योग में अविवेकी योगी लोग भय खाते हैं।

स्वामी चिन्मयानन्द ने गीता के मोक्षसंन्यासयोग को अस्पर्श योग के अति निकट माना है।

**मंत्रयोग :–**

**मननात् त्रायते यस्मात् तस्मान् मन्त्रः प्रकीर्तितः**—आह्निक तत्त्व। अर्थात् जो शब्द मनन से साधक का त्राण करता है वह मंत्र है। मनन के अभाव में मन्त्र निर्वीर्य हो जाता है। अद्वैतमार्तण्ड में सुख के महान् उपाय को मन्त्रयोग कहा गया है—

**सुखोपायं मन्त्रयोगमुत्तमम्।**

प्रणव (ॐ) का जप करते-करते जब चित्त वृत्ति का निरोध होता है तब उसे मंत्रयोग कहते हैं। योगवासिष्ठ में कहा गया है कि मन्त्रों का प्रभाव भावना द्वारा होता है—

**भावनावशतः कार्यं तथा यरलवादयः।**

भावना से तात्पर्य दृढ़ विश्वास से है। शिवपुराण में कहा गया है कि मंत्र जप के अभ्यास वश मंत्र के वाच्यार्थ में स्थित हुई विक्षेप रहित मन की वृत्ति का नाम मंत्रयोग है। प्राणयुक्त मन्त्र ही सिद्ध होता है। जप मानस, मौखिक व लेखात्मक तीन प्रकार का होता है।

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ध्येयं सर्व मुमुक्षुभिः**—ध्यानबिन्दूपनिषद्।

अर्थात् ओम् जो एकाक्षर ब्रह्म का वाचक है, सभी मोक्षार्थियों द्वारा ध्येय है। ॐ का जप सभी मुमुक्षुओं को अवश्य करना चाहिए। जप मध्यमा, पश्यन्ती और परावाणी के माध्यम से किया जाता है। मंत्रयोग के 16 अङ्ग— भक्ति, शुद्धि, आसन, पंचाङ्गसेवन, आचार, धारणा, दिव्यदेशसेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, याग, जप, ध्यान और समाधि हैं। दत्तात्रेय के योगशास्त्र में मन्त्रयोग को अधमयोग कहा गया है। मैत्रेय्युपनिषद् में भी **'अधमा मन्त्रचिन्ता च तीर्थभ्रान्त्यधमाधमा'** 2/21 के द्वारा मन्त्रों का चिन्तन अधम कहा गया है।

## सनातनयोग :-

गीता में वर्णित निष्काम कर्मयोग ही सनातन योग है। निष्काम कर्म बन्धन का कारण नहीं होता है। ममता, आसक्ति और कामना का त्याग कर किए जाने वाले कर्म बन्धन के हेतु नहीं बनते हैं। फल की कामना न करते हुए कर्म करे, कर्म फल का हेतु न बनना ही निष्काम कर्मयोग है। सभी कामनाओं व हृदय की भावनाओं को परमात्मा की ओर मोड़ देने से उसका सारूप्य, साधर्म्य व सायुज्य सहजता से प्राप्त हो जाता है।

## शब्दयोग :-

शब्द को परिष्कृत कर या शोधित कर लेने पर जीव को सर्व सुलभ हो जाता है। उसमें शब्द की स्थूल अवस्था से मुक्त कर विशुद्ध बनाया जाता है। संस्कृत (परिष्कृत) पद में गति और स्थिति प्राप्ति होती है। इसी को वाक्योग भी कहते हैं। भर्तृहरि, वसिष्ठ आदि इसके मनीषी प्रणेता रहे हैं। महाभाष्य में पतञ्जलि ने कहा है—

**एकः शब्दः सम्यक्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुक् भवति।**

अर्थात् एक भी परिष्कृत शब्द सम्यक् रूप से ज्ञात हो और सुप्रयुक्त हो तो वह इहलोक व परलोक में कामधेनु का कार्य करता है।

**ऋजुयोग :–**

सत्सङ्ग, भगवत्कथा श्रवण, कीर्तन और जप के माध्यम से व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार कर सकता है। ऋजुयोग के द्वारा भी मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है।

**''कर्मणा मनसा वाचा सर्वलोकहितेरतः।**
**समर्थयति देवेशं क्रियायोग स उच्यते॥''**

नारदीयपुराण 33/25

श्रीमद्भागवत 3/25/26 में ऋजुयोग का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि भक्ति से वैराग्य उत्पन्न होता है और जिसे वैराग्य उत्पन्न हो गया है ऐसा योगयुक्त पुरुष आत्मसाधन में तत्पर होकर ऋजुयोग से प्रभु प्राप्ति का प्रयत्न करता है। नारद, व्यास, बृहस्पति, भृगु आदि इसके प्रमुख वक्ता व उपदेशक रहे हैं।

**क्रियायोग :–**

**तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः**—पतञ्जलि योगसूत्र 2/1

तपस्या, स्वाध्याय, प्रणव (ओंकार) का जप, सद्ग्रन्थों का अध्ययन और ईश्वरप्रणिधान (ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण) क्रिया योग है। सभी क्रियाओं को ईश्वरार्पण करना ईश्वरप्रणिधान है। स्वाध्याय का तात्पर्य स्वयं का अध्ययन करना अर्थात् आत्म साक्षात्कार करना होता है। स्व-आत्म-अध्ययनम् वा स्वाध्यायः। स्वाध्याय से इष्ट देवता के दर्शन होते हैं।

**स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते।**

योगभाष्य 1/28

महर्षि व्यास के अनुसार 'प्रणवजपः' **मोक्षशास्त्राणामध्ययनं वा स्वाध्यायः।**

**लययोग :–**

इस योग में शाम्भवी मुद्रा सिद्ध करके कुण्डलिनी महाशक्ति को ऊपर ले जाकर ब्रह्म से मिला दिया जाता है। यह साधनावस्था का योग है। आत्मा

का परमात्मा से यह विलय करा देता है। इसे नाद योग भी कहते हैं। नाद एवं बिन्दु इस योग के मुख्य बिन्दु हैं। यह अद्वैत विचारधारा पर आधारित है। ध्यान की अपेक्षा सौ गुना अधिक फल लय योग से प्राप्त होता है। मन के लय होने पर द्वैधी भाव का विलय हो जाता है। लय योग के नौ अङ्ग बताए गये हैं। ये हैं—यम, नियम, स्थूल, सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि। इन सभी साधनों से लयक्रिया द्वारा ध्यानसिद्धि व समाधिसिद्धि होती है। तदोपरान्त आत्मसाक्षात्कार हो जाता है। कश्यप, अंगिरा, याज्ञवल्क्य, कपिल आदि इसके उपदेष्टा रहे हैं। नादबिन्दूपनिषद् लययोग का प्रमुख ग्रन्थ है।

**भक्तियोग :–**

**भजनं भक्ति**—शंकराचार्य। भक्ति शब्द भज् सेवायाम् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगातार बनता है। भज् धातु सकर्मक, अनिट्, उभयपदी धातु है। यह भ्वादिगणी धातु है। इसका रूप भजति व भजते बनता है। चुरादिगण में भज् विश्राणन धातु भी है।

परमात्मा भक्ति के अधीन हैं। जो अपने सारे कार्यों को ईश्वर में अर्पित करके अविचल भाव से भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करता है और ईश्वर में अपना चित्त स्थिर करके निरन्तर उनका ध्यान करता है उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है, यही भक्तियोग है। भागवत 11/20/33 में लिखा है—

**सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा।**

अर्थात् मेरे भक्त को मेरी भक्ति से सभी फल अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। गीता 12/6-7/ में अहंकार का निःशेष त्याग व भगवान् के शरणोपान्त होना ही सच्ची भक्ति कही गई है। गीता का 12वाँ अध्याय भक्तियोग है।

शंकराचार्य ने भक्ति को ज्ञानप्राप्ति का मुख्य साधन स्वीकार किया है। उनके अनुसार अपने शुद्ध स्वरूप का स्मरण करना ही भक्ति है। यह भक्ति विना चित्त शुद्धि के नहीं हो सकती। **स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते।** अर्थात् आत्मा के स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है। विवकेचूडामणि 32

योग और भक्ति अविनाभावी (अन्योन्याश्रित) है। सभी योगों में गुरु व इष्ट के प्रति भक्ति को स्वीकार किया गया है।

**"स्वकीयहृदये ध्यायेदिष्टदेवस्वरूपकम्।**

चिन्तयेद् भक्तियोगेन परमाह्लाद्पूर्वकम्॥"

घेरण्ड सं0 7/14

अर्थात् अपने हृदय में भक्तियोग के द्वारा परमाह्लाद्पूर्वक अपने इष्ट-देव के स्वरूप का चिन्तन करे। इससे मन में एकाग्रता आती है और समाधि प्राप्त होती है।

आदि शंकराचार्य विवेकचूडामणि में कहते हैं कि मोक्ष कारण की जितनी सामग्री है उनमें भक्ति सबसे श्रेष्ठ है—

**मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी** -32

श्रद्धा, भक्ति, पूजा और तादात्म्य—भक्तियोग के चार पड़ाव हैं। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य भक्तों के मुक्ति के चार रूप हैं।

नारद ने भक्तिसूत्र में ईश्वर के प्रति परमप्रेम को भक्ति कहा है। वैष्णवाचार्य रामानुज ने शरणागति या पराप्रपत्ति को भक्तियोग का प्रधान तत्त्व स्वीकार किया है। भक्ति के दो प्रकार माने गए हैं—गौणी भक्ति या अपरा भक्ति व दूसरी पराभक्ति, जो भक्ति की उच्चावस्था है। गीता 7/16 में श्रीकृष्ण ने ज्ञानी भक्त को ही पराभक्ति का अधिकारी बताया है। भागवत में भक्ति के नव भेद श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, साख्य और आत्म निवेदन बताया गया है। रामायण में नवधा भक्ति का वर्णन है। शण्डिल्यसूत्र में उन्नीस प्रकार के भक्ति का निदर्शन है। गरुडपुराण में भक्ति के आठ प्रकार के बताये गए हैं। रूपगोस्वामी ने भक्ति के तीन साधन भक्ति, भावभक्ति और प्रेम बताये हैं—भक्तिरसामृतसिन्धु 1-1-8

## महायोग :-

मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग का संयुक्त रूप और नाम महायोग है। महायोग का लक्ष्य मनुष्य को सांसारिक दुःखों से (आधिभौतिक, आधिदैविक और आधिदैहिक) मुक्ति दिलाना है। शिवपुराण में वर्णित है कि जब एक मात्र उपाधि शून्य शिव स्वभाव का चिन्तन किया जाता है और मन की वृत्ति शिवमयी हो जाती है तब वह महायोग कहलाता है। महायोग में सदात्मा प्रत्यगात्मा में स्थित हो जाती है। वर्तमान में इसके प्रवर्तक महर्षिरमण माने जाते हैं। निदिध्यासन महायोग का मुख्य साधन है। यह अद्वैत विचार धारा पर आधारित है।

## हठयोग :-

**सूर्याचन्द्रमसौरैक्यं हठ इत्यभिधीयते।**

योगशिखोपनिषद् 1/133

ह का तात्पर्य पिङ्गलानाड़ी या सूर्य स्वर है और ठ का तात्पर्य इडानाड़ी या चन्द्रस्वर है। इन दोनों स्वरों या नाड़ियों का मिलन हठयोग कहलाता है। हठयोग में प्राणविद्या को सबसे बड़ी विद्या तथा महाशक्ति माना गया है। हठयोग साधना का लक्ष्य शरीर व प्राण पर विजय प्राप्त करना है।

हठयोग विद्या के उपदेशक भगवान् आदिनाथ (शंकर) हैं। हठयोग के बिना शरीर शोधन नहीं हो सकता। प्राणवायु और अपानवायु का सम्मिलन ही हठयोग है। हठयोग प्राण और मन को योग की विभिन्न भूमियों तक ले जाने की एक प्रक्रिया है। हठयोग में शरीर शोधन के लिए साधक के लिए सप्तसाधन गुण शरीर का शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धैर्य, साधन, प्रत्यक्षता और निर्लिप्तता आवश्यक बताए गये हैं। हठ बिना राजयोग नहीं सिद्ध होता है।

**हठं विना राजयोगं राजयोगं विना हठः।**
**न सिध्यति ततो युग्ममानिष्पत्तः समभ्यसेत्॥**

हठयोगप्रदीपिका 2/76

हठयोग साधना में आसन, प्राणायाम, षट्कर्म ( धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालभाँति) मुद्रा का स्थान प्रमुख है।

## सुरति-शब्द योग :-

अनाहत शब्दों में सूरत, अर्थात् ध्यान को जोड़ने को सूरत शब्दयोग कहते हैं। राधा स्वामी मत में इसकी सर्वाधिक मान्यता है।

इसे नामयोग या सहजयोग भी कहा जाता है। इसमें उपासक अपने आराध्य भावन्नाम में ही परमात्मा के अखण्ड स्वरूप और ऐश्वर्य का अपनी आत्मा द्वारा अनुभव कर लेता है। उपासक के नाम साधना से प्रभु तुष्ट होते हैं। काक और सङ्गीत नामयोग साधना के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। नाम को नामी का अभेद आश्रय है। नाम की महिमा अगाध है। श्वास के द्वारा भी नाम जप होता है। शब्द के दो प्रकार आहत एवं अनाहत होते हैं। अनाहत शब्द स्वयं उत्पन्न होता है। कैवल्यदर्शनम् में स्वामी युक्तेश्वर गिरि ने सूरत शब्दयोग को भक्ति कहा है। उनके अनुसार इसमें अहंकार प्रणव ध्वनि में विलीन हो जाता है।

**राजयोग :–**

**राजत्वात् सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः।**

यह सभी योगों का राजा (योगों में श्रेष्ठ) होने से राजयोग कहा जाता है। सृष्टि, स्थिति और लय का कारण अन्तःकरण है। अन्तः करण की सहायता से जिसका साधन किया जाता है, उसे राजयोग कहते हैं। राजयोग साधना में सत्त्वगुण वृद्धि की प्रधानता रहती है। राजयोग के ध्यान को ब्रह्म ध्यान कहते हैं। राजयोग की सिद्धि वाले योगी को जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवन्मुक्त पुरुषों का शरीर आदि आत्मा स्वभाव से कभी पृथक् नहीं है। राजयोग साधना की चरमसीमा है। राजयोग के 16 अङ्ग होते हैं। गीता 9/2 में भगवान् ने राजयोग को "गुह्य" शब्द से प्रकट किया है।

राजयोग को यौगिक ग्रन्थों में सर्वदा सेवनीय बताया गया है—

**"यन्मूलं सर्वभूतानां यन्मूलं चित्तबन्धनम्।**
**मूलबन्धः सदासेव्यः योगोऽसौ राजयोगिनाम्"॥**

स्वामी विवेकानन्द ने राजयोग के बारे में लिखा है—"संसार के अन्य विज्ञानों की भाँति राजयोग भी एक विज्ञान है। यह विज्ञान मन का विश्लेषण तथा अतीन्द्रिय जगत् के तथ्यों का संकलन करता है और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत् का निर्माण करता है।"

**पाशुपतयोग :–**

देव से लेकर पिशाच तक सभी प्राणी पशु हैं। पशु पाश का विमोचन करने वाला पाशुपतयोग होता है—

**योऽयं पाशुपतो योगः पशुपाशविमोचकः**—सूर्यपुराण 6/27

सभी पशुओं के स्वामी पशुपति रुद्र से विकसित हुए योग को पाशुपत योग के रूप में जाना जाता है, जोकि सभी व्यक्तियों को आनन्दमयी समृद्धि देता है—लिङ्गपु0।

**जीवाः पशवः उक्ताः। तत्पतित्वात् पशुपति**—जाबाल्युपनिषद्। **पशुपतिः प्रणवस्तारकः स एव वेद**—पाशुपतब्रह्मोपनिषद्। अर्थात् संसार से तारने वाला प्रणव (ॐ) ही पशुपति है।

पाशुपतमत में महेश्वर सृष्टि, संहार और अनुग्रह करने वाला है अतः वह कारण हुआ। इस कारण को पति कहा गया है। पशुपति पाँच मन्त्रमूर्ति वाला है—ईशान, तत्पुरुष, अधोर, वामदेव, सद्योजात।

कूर्मपुराण में कहा गया है कि जीव को बन्धन रूप पाश से मुक्त करने के कारण यह पाशुपत योग कहा गया है। इसे सम्पूर्ण वेदान्त का सार बताते हुए सभी आश्रमों की अवस्था से अतीत अवस्था बतलाया गया है—

**एथ पाशुपतो योगः पशुपाशविमुक्तये।**
**सर्ववेदान्तसारोऽयमत्याश्रममिति श्रुति॥** उ0वि0 11/67

शिवपुराण की वायवीय संहिता में वायुदेवता ने महर्षियों को पाशुपत रूपी तत्त्वज्ञान बताया है। पाशुपतधर्म में चर्या, विद्या, क्रिया और योग—ये चार पद हैं।

## बुद्धियोग :–

गीता 10/10 में भगवान् ने कहा है कि मेरे तत्त्व के यथार्थ ज्ञान का नाम बुद्धि है उससे युक्त होना ही बुद्धियोग है। प्रेमपूर्वक मेरा भजन करने वाले को में बुद्धियोग देता है।

तत्त्वज्ञान से माया-मोह की निवृत्ति हो जाती है। तत्पश्चात् ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान होता है। इसे अद्वैत बुद्धि कहते हैं। भक्ति और ज्ञान दोनों ही चित्त वृत्ति की स्थिरता की अपसार खेल है। बुद्धि योग सब साधनों में उत्तम है। गीता में भगवान् ने कहा है कि बुद्धियोग के द्वारा मेरे में चित्त लगाना चाहिए—**बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।** 18/57 **एवं सर्वाणि भूतानि मणौ सूत्र इवात्मनि। स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः**—ध्यानबिन्दूपनिषद् 6 अर्थात् स्थिरबुद्धि से सम्पन्न मोहरहित ब्रह्मवेत्ता सूत्र में गूथे गए मणियों की तरह आत्मा में स्थित रहते हैं।

## समाधियोग :–

सभी संकल्पों से चित्त का निवृत्त हो जाना समाधि है। समाधि में सभी वृत्तियों—इच्छाओं का अन्त हो जाता है। सभी विक्षेप छूट जाते हैं।

**समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति**

जाबालदर्शनोपनिषद् 10/1

परमात्मा और जीवात्मा के एकीभाव के सम्बन्ध में निश्चयात्मक बुद्धि का उदय होना ही समाधि है। धारणा, ध्यान और समाधि की सिद्धि के लिए अभ्यास-वैराग्य अनिवार्य है। समाधिस्थ पुरुष परमात्मा से एकत्व की प्राप्ति करके अपने से अलग किसी भूत—प्राणी को नहीं देखता। योगसूत्र में यह कहा गया है कि ईश्वर-प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्  —योगसूत्र 2/45

**ध्यानयोग :–**

ध्यान में निश्चलता (अचलत्व) अपरिहार्य है। ईश्वर-प्राणिधान के लिए योग के शेष सात अङ्गों में जय (सिद्धि) प्राप्त करना आवश्यक है।

**सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते।** 31

—त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्।

अर्थात् मैं चिन्मात्र स्वरूप हूँ, यही चिन्तन ध्यान कहा गया है। ध्यानयोग ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनों का एकीकरण करता है। मूर्त और अमूर्त ब्रह्म का चिन्तन ही ध्यान कहा जाता है। ध्यान योग को ही चिन्तायोग (चिन्तन) कहते हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति में कहा गया है कि ध्यान योग से ही आत्मा को जाना जा सकता है। कैवल्योपनिषद् में भी श्रद्धा, भक्ति व ध्यान से आत्मा को जानने का उपदेश प्राप्त होता है। परमात्मा के ध्यान में लगाई गई आत्मा तदाकार हो जाती है। ध्यान करते समय अपने में ब्रह्म भावना का निश्चय करना चाहिए।

**''ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्या निरालम्बतया स्थितिः।**
**ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी॥''**

अपरोक्षानुभूति 123/

**ध्यानेनानीश्वरान्गुणान्।** वायुपुराण 10/93

ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है।

ध्यानबिन्दूपनिषद् में ध्यान की महिमा बताते हुए उसे पापनाशक कहा गया है—

**यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम्।**
**भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन॥**

ध्यानबिन्दूपनिषद् 1

ध्यानाच्च 4/1/18 कहकर महर्षि पतञ्जलि ने ध्यान के लिए आसन को आवश्यक बताया है।

आदिपुराण अध्याय 21 में कहा गया है कि उत्तम ध्यान से ही कर्मों का क्षय होता है। मोक्षाभिलाषी जीवों को निरन्तर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान का अनन्त सुख होता है।

**माहेश्वर योग :–**

वायुपुराण 10/76 में माहेश्वर योग के प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये पाँच धर्म बताए गए हैं। जिस धर्माचरण से द्विजगण सद्गति प्राप्त करते हैं, वह माहेश्वर योग है—

**येन–येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः।**
**तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योगं माहेश्वरं प्रभो।**

वायुपुराण 10/69

**तारक योग :–**

श्रुतियों में कहा गया है कि आत्म सृष्टि द्वारा तारक योग का अनुसन्धान करना चाहिए। इसका प्रधान साधन प्रेम है। तारक का तात्पर्य भव सागर(संसार जन्म कर्म, क्लेश) से तरने का है। तारक योग के ज्ञान से ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है। महर्षि पतञ्जलि ने योगसूत्र में कहा है कि विवेक से उत्पन्न तारकयोग ज्ञान सभी विषयों को प्रकाशित कर देता है। अद्वयतारकोपनिषद् में कहा गया है कि जो गर्भ, जन्म, जरा, मरण एवं संहार आदि पापों से तारता है वह 'तारक' ब्रह्म है। **गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद् भयात्संतारयति तस्मान्तारकमिति।** अमनस्कयोग 1/12 में कहा गया है कि यह तारकयोग भवसागर में गुरु और शिष्य दोनों का तारण करता है, और तारिका के उन्मेष (चित् शक्ति) से युक्त होने के कारण भी यह तारक कहा जाता है—

**तारको यं भवाम्भोधौ तारणो गुरु शिष्ययोः।**
**तारकोन्मेष युक्त्वादपि तारक उच्यते॥** 1/12

**ज्ञानयोग :–**

सत्त्व ज्ञान का बीज है। आत्मा व परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए विवेक, विचार, निर्ममत्व और संयम प्रधान साधन हैं। यथार्थज्ञान तत्त्व ज्ञान का वाचक है। श्री शंकराचार्य ने अपरोक्षानुभूति 20 में कहा है कि आत्मा ज्ञानमय, चित्स्वरूप और पवित्र है और देह मांसमय और अपवित्र है। दोनों को एक मानना अर्थात् देह को आत्मा मानना सबसे बड़ा अज्ञान है—

**आत्मा ज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयोशुचिः।**
**तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्॥**

1. योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम्।
योगो हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि।।
तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्।। योगतत्त्वोपनिषद् .4-15
2. ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः।
3. योगाद् संजायते ज्ञानम् ज्ञानान्मुक्तिः प्रजायते।
4. श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। गीता 4/33
5. ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। गीता 4/37
6. नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।। गीता 4/38
7. ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। गीता 4/39
8. प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।। गीता 7/17
9. ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।। गीता 7/18
10. ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।। गीता 7/19
11. ज्ञानतः सुलभा मुक्तिः। भक्तिरसामृतसिन्धु 1/36
12. अज्ञानादेव संसारो ज्ञानादेव विमुच्यते। योगतत्त्वोपनिषद् 16
13. जन्तुर्ज्ञानेन मुच्यते। महा0 शान्तिपर्व 320/50
14. आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं व्रतपरं व्रतम्। महा0 वनपर्व 213/30
15. मोक्षस्य ज्ञानहेतुत्वान्नतदन्यदपेक्षते। 11/15 उपदेशसाहस्री
16. ज्ञानादेव कैवल्यमिति शास्त्रेषु डिण्डिमः। पञ्चदशी 97
17. विद्याविद्ये श्रुतिप्रोक्ते एकत्वान्यधियौ हि नः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शास्त्रे विद्याविधीयते।। उपदेशसाहस्री 17/21
18. ज्ञानने चाऽपवर्गो --व्यक्ताव्यक्त-ज्ञ-विज्ञानात्। सांख्यकारिका
19. विद्ययाऽमृतमश्नुते। ईशावास्योपनिषद् 11
20. उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। गीता 4/34
21. सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि। गीता 4/36
22. गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः। गीता 5/17
23. ज्ञानादेव परा सिद्धिर्नत्वमुष्ठानदुःखतः। योगवासिष्ठ 3/6/1
24. ततो वच्मि महाबाहो यथा ज्ञानेतरा गतिः।
नास्ति संसारतरणे पाशबन्धस्य चेतसः।। योगवासिष्ठ 5/67/2
25. ज्ञानेन चापवर्गो विपर्ययादिष्यतेबन्धः। सांख्यकारिका 44
26. सांख्यं योगं समभ्यस्ते पुरुषं वा पञ्चविंशकम्—निरुक्त
27. निचाय्य तत् परममृतत्वमश्नुते —महाभारत शा0पर्व 206/32

28. तमात्मसिद्धिर्विज्ञानाज्जहाति पुरुषो बलात्—महा0शा0 231/29
29. ज्ञानं प्लावयते सर्वं यो ज्ञानं ह्यनुवर्तते। —महा0शा0 269/50
30. ज्ञानादेव च वैराग्यं जायते येन मुच्यते। —महा0शा0 320/29
31. ज्ञानं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः।
महा0शा0 318/109
32. ज्ञानान्मोक्षो जायते राजसिंह।
नास्त्यज्ञानादेवमाहुर्नरेन्द्र।। महा0शा0 318/87
33. ब्रह्मैव विद्वांस्तेन चाभ्येति सर्वं नान्यः पन्था अयनाय विद्यते
महा0उद्योग पर्व 44/24
34. असङ्गः श्रेयसो मूलं ज्ञानं चैव परागतिः। महा0शा0 298/3
35. सर्वेषामपि चेतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्रमाप्यतेह्यमृतं ततः।। मनुस्मृति 12/86
36. तथैव ज्ञानकर्माभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्। हारीतसंहिता
37. ज्ञानं विमोक्षाय न कर्मसाधनम्। अध्यात्मरामायण 5/21
38. विद्यया विन्दतेऽमृतम् केनोपनिषद् 2/4
39. कःशक्नुयाद्विनात्मानं कल्पकोटिशतैरपि। विवेकचूडामणि 57
40. ज्ञानविहीने सर्वमतेन न मुक्तिर्भवति जन्मशतेन-
शंकराचार्य चर्पटपञ्जरी
41. मोक्षे धीर्ज्ञानम् इत्यमरः। अमरकोश 1/5
42. ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो न चिरात्समुपैति माम्। उद्धवगीता 13/46
43. ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम्। उद्धवगीता 14/3
44. ज्ञानेनैव भवेन्मुक्तिः प्रसादो ज्ञानसिद्धिये। लिङ्गपुराण 75/5
45. विमर्शाज्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो भविष्यति।
स्कन्दपुराण मा0के0 9/44
46. ज्ञानमेव परं पुंसां श्रेयसामभिवाञ्छितम्। नरसिंहपुराण 15/12
47. प्रवृत्ति लक्षणो योगः ज्ञानं संन्यासलक्षणम्।
महाभारत आश्वमेधिक पर्व 43/2
48. यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा। मार्कण्डेयपुराण 39/5
49. वरिष्ठ सर्वधर्मेभ्यो ज्ञानं मोक्षैकसाधनम्। सूतसंहिता 4/20/27
50. तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिमे चान्यया-देवीभागवत।
7/37/30
51. चक्षुषा यन्न पश्यंति विना ज्ञानगतिं द्विज। शंकरगीता 6/38

52. **संसारात्तरणे जन्तोरूपायो ज्ञानमेव हि।**

योगवासिष्ठ मुमुक्षुप्रकरण 10/22

आदि श्रुति एवं पुराणप्रतिपादित वाक्य ज्ञानयोग से मुक्ति का प्रतिपादन करते हैं। अपने स्वरूप का ज्ञान व आत्मा व परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। आत्मा व परमात्मा में भेद देखना ही अज्ञान है। ज्ञान की प्रक्रिया की पूर्णता भगवान् की अनन्य भक्ति से होता है। गीता में भगवान् ने विनम्रता, दम्भविहीनता, अंहिसा, क्षान्ति, आर्जव, शौच, वैराग्य, आदि को ज्ञान घोषित किया है। ज्ञान से हीन व्यक्ति पशु तुल्य है—

**ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समाना।** नरसिंहपुराण 15/13

**प्रेमयोग :–**

प्रेमयोग भावना प्रधान योग है। प्रेम का उद्गम स्थल हृदय होता है। विशुद्ध प्रेम में इन्द्रिय सुख अभिप्रेत नहीं होता। सदैव अपने इष्ट का चिन्तन, मनन ही प्रेमयोग है। ब्रज की गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रतिप्रेम प्रेमयोग का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है। भागवत की गोपियाँ सर्वप्रथम श्रीकृष्ण की कामिनी हैं, उसके पश्चात् भगवद् भक्ता हैं और अन्त में मुक्ता हैं। कृष्ण उनके लिए साक्षात् कामदेव हैं। प्रभु (इष्ट) के प्रति अनुराग, प्रेम, रति, राग के भाव की चरम अवस्था ही प्रेमयोग है। प्रेम की पूर्णता आनन्द देती है। प्रेम अपने पवित्र रूप में आनन्द है। जिससे आनन्द मिलता है उससे प्रेम होना स्वाभाविक है। विरह प्रेम का प्राण होता है। मिलन में जहाँ प्रेम सुप्तावस्था में हो जाता है वहीं विरह में जाग्रत अवस्था में हो जाता है। इसी तरह मीरा प्रेम योगिनी के प्रेम में आनन्द है, सौन्दर्य है, तेज है, मधुरता है, सहजता है। नारद, राधा, मीरा, वल्लभाचार्य, सूरदास का भी अपने इष्ट प्रभु के प्रति प्रेम योग है। मोक्ष को ज्ञान लाभ कहा गया है। उस ज्ञान का मूल भक्ति है। जो कर्मशील व्यक्ति को ही प्राप्त होती है। प्रेम लक्षणा भक्ति के प्रति भक्त की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान् की कृपा होती है जिसे पोषण या पुष्टि कहते हैं। प्रेम की तीन अवस्थायें हैं जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं—पूर्वराग—मिलन—विरह (वियोग)। प्रेम में अहंकार का स्थान नहीं होता। विशुद्ध प्रेम में प्रेमी और प्रियतम में अभेद हो जाता है।

**कर्मयोग :–**

कर्मज्ञान से ब्रह्म उत्पन्न होता है, अकर्म ज्ञान से नहीं—मत्स्यपुराण।

गीता में कर्म योग का उत्कृष्ट निदर्शन है। बिना कर्म के कोई प्राणी एक क्षण भी नहीं रह सकता। अतः निष्काम भाव से अर्थात् फल की बिना इच्छा या कामना के कर्म करना कर्मयोग है। इसमें व्यक्ति में कर्तापन का अभाव होता है। जब व्यक्ति में कर्तापन का अभाव होगा, तो वह कर्म फल का हेतु नहीं बनेगा। ऐसी दशा में कर्म उसके लिए बन्धन का कारण नहीं बनेगे। गीता में भगवान् कहते हैं **"सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्"**। गीता 18/48 स्वधर्म के अनुसार कर्म करने का उपदेश देती है। उपनिषदों में निष्काम कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की बात कही गयी है। गीता कर्मसंन्यास से कर्मयोग को श्रेष्ठ मानती है।

**तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।** 5/2

कर्म से ही प्राचीन काल में जनक आदि ने सिद्धि प्राप्त की थी—

**कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।** गीता 3/20

'गीता-प्रबन्ध' में श्री अरविन्द कहते हैं कि कर्म का सच्चा संन्यास ब्रह्म में कर्मों का आधान करना ही है। इसलिए योगी पहले शरीर से, मन से, बुद्धि से अथवा केवल कर्मेन्द्रियों से ही आसक्ति छोड़कर आत्म शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। कर्म करते हुए भी वह उसमें लिप्त नहीं होता। वह यह जानता है कि कर्म उसके नहीं अपितु प्रकृति के हैं और इसी ज्ञान द्वारा वह मुक्त है। कर्मयोगी ममत्व बुद्धि से रहित होकर इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति रहित होकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं—

**कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।**
**योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥**

गीता 5/11

विज्ञानदीपिका में कहा गया है कि संसार के उच्छेदन के लिए कर्म का निर्हरण अपरिहार्य है। यह निर्हरण योग, ध्यान, सत्सङ्ग, जप, तप आदि से होता है—

**कर्मतो योगतो ध्यानात् सत्संगाज्जपतोऽर्थतः।**
**परिपाकाच्च लोकाच्च कर्म निर्हरणं जगुः॥**

मत्स्यपुराण 52/8-10 के अनुसार कर्मयोग के कर्म में आठ गुण प्रधानता से रहते हैं—सभी प्राणियों पर दया, शान्ति, रोगी की रक्षा, लोक में किसी से असूया न करना, वाह्य व अन्तर शौच, अकस्मात् होने वाले कार्यों में मङ्गलाचार पूर्वक वर्तना, द्रव्य में अकार्पण्य दीन दुखियों के प्रति, दूसरे के

धन की इच्छा न करना, पराई स्त्री की कभी इच्छा न करना।

**अनासक्ति योग :–**

आसक्ति या सङ्ग ही दुःख का कारण होता है। ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृति। अतः सांसारिक वस्तुओं में, कर्म में और देह में अनासक्त रहना ही अनासक्ति योग है। निर्ममता ही सुख का कारण है। यह संसार मन का विलास व प्रपंच मात्र है। उसमें आसक्ति दुःख व बन्धन का कारण बनती है। मार्कण्डेयपुराण 36/2 में कहा गया है—

**मुक्तिर्योगात् तथा योगः सम्यग्ज्ञानान्महीपते।**
**संगदोषोद्भवं दुःखं ममत्वासक्तचेतसाम्।।**

अर्थात् ममता में आसक्त चित्त से दुःख, दुःख से ज्ञान, ज्ञान से योग व योग से मोक्ष होता है। अनासक्ति से ही त्यागपूर्वक योग करना सम्भव है। इस प्रकार दुःख का अविर्भाव ममतासक्त चित्त से ही होता है।

**अध्यात्मयोग :–**

**'आत्मनि इति अध्यात्मम्'** विभक्त्यर्थे अव्ययीभाव समास अर्थात् आत्म तत्त्व से सम्बन्ध रखने वाला। गीता 13/11 के शांकरभाष्य में कहा गया है—

**आत्मादिविषयं ज्ञानं अध्यात्मज्ञानम्।**

आत्मा को जाने, तत्पश्चात् आत्मा व परमात्मा में अभेद जाने। इसी को अध्यात्म कहते हैं। कठोपनिषद् में कहा गया है—

**अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं**
**मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।।** कठो0 1/2/12

अर्थात् परमात्मा को अध्यात्म योग से जानकर साधक (बुद्विमान् मनुष्य) हर्ष व शोक को समूल त्याग देता है। गीता 8/3 में कहा है कि स्वभाव अध्यात्म कहा जाता है। परब्रह्म का जो प्रत्येक शरीर में अन्तरात्मभाव है, उसका नाम स्वभाव है। वह स्वभाव ही अध्यात्म कहलाता है। गीता 8/3 के शांकरभाष्य में कहा गया है—

**प्रत्यागात्मभावः स्वभावः स्वः भावः स्वभावः अध्यात्मं उच्यते।**

आत्मा में चित्त की समाधि ही अध्यात्मयोग है।

साधक परमात्मा का निरन्तर जप करे व लय लीन होकर जप करे। पूरी

श्रद्धा व विश्वास के साथ जप करे

**मंत्रजाप मम दृढ़ विश्वासा।** मानस0

**जपयोग :–**

ध्वनि, संख्या व भाव की त्रिपुटी जप है। जप भी साधना है। वाक्, प्राण और मन क्रम से इनके निर्वाहक हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने **"यज्ञानां जपयज्ञोस्मि"** कहकर जप का अतिशय महत्त्व प्रतिपादित किया है। जप यज्ञ को भगवान् ने अपनी विभूति (ऐश्वर्य) कहा है। इसे मन्त्रयोग भी कहते हैं। शास्त्रों में प्रणव (ॐ) के बाद गायत्री मंत्र की महिमा अतिशय है। वैदिक और पौराणिक अनेक मन्त्र हैं जिनका ध्यानपूर्वक एकाग्र होकर जप किया जा सकता है। मंत्र जप में एकाग्रता, श्रद्धा और विश्वास का होना अनिवार्य है। नाम जपत मङ्गल दिशि दसहूँ। कलियुग में नाम की अतिशय गति है। नाम और नामी में अभेद सम्बन्ध है। नाम का प्रेम व श्रद्धापूर्वक स्मरण व जप करने से स्मरणकर्ता व जापक के पास नामी स्वयं आ जाता है। इसी प्रकार पराशरगीता 66 में कहा गया है कि 'हरि' इन दो अक्षरों का एक बार भी जिसने श्रद्धाभक्ति समन्वित होकर उच्चारण कर लिया उसे मुक्ति मिल जाती है—

**सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।**
**बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।**

गोस्वामी तुलसीदास ने नाम जप की महिमा बताते हुए लिखा है—

**कलियुग केवल नाम अधारा।**

और

**जपत निरन्तर हनुमत वीरा।** मानस0

**विरहयोग :–**

विरह योग को प्रेम योग के साथ अन्वित किया जाता है। अपने इष्ट के प्रति अचल, अटूट भक्ति, समर्पण प्रेम है। विरहयोग में प्रेमी अहंकार शून्य होता है। विरह में प्रेम जाग्रत अवस्था में हो जाता है। गोपियाँ जब उद्धव को अपने प्रेम व तज्जन्य विरह के बारे में बताती हैं तब वह साधना की चरम अवस्था है। गोपियों के मन से श्याम सुन्दर निकल ही नहीं रहे हैं, उनके मन में ठौर बना रखे है। अपने प्रेम व विरह की अनन्यता व विशिष्टता की अभिव्यक्ति करके गोपियाँ जगत् प्रपञ्च से उपराम हो जाती हैं।

## सांख्ययोग :-

**संख्यया कृतमिति सांख्यम्।** सांख्य शास्त्र में कुल संख्या में 25 तत्त्वों की गणना की गई है। सांख्य शास्त्र का मुक्त पुरुष ही सांख्य योगी होता है। प्रकृति को अविद्या और पुरुष को विद्या कहा जाता है।—प्रकृति 'चला' और पुरुष निश्चल है। निश्चल पुरुष को ज्ञाता बताया गया हैं। प्रकृति का ही नाम तपा है और निष्कल पुरुष को अतपा कहा गया है—महाभारत शा0 पर्वमोक्षधर्मपर्व। इसी में आगे कहा गया है कि जो इस सांख्य दर्शन को जानते हैं, वे शान्तस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। उनकी संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती। मुक्तावस्था को प्राप्त पुरुष ही वास्तविक सांख्य योगी हैं। अपरिणामी व निर्गुण होने के कारण किसी पुरुष का न तो बन्धन होता है और न मोक्ष और न संसरण ही। अनेक पुरुषों के आश्रय में रहने वाली त्रिगुणात्मिका प्रकृति का ही संसरण व मोक्ष होता है। सांख्यशास्त्र के इन पच्चीस तत्त्वों के यथावत ज्ञान से मोक्ष हो जाता है।

**पंचविंशतितत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।**
**जटी मुण्डी शिखी वापि मुच्यते नात्र संशयः।**

गौडपादभाष्य

इस प्रकार गौड़पादाचार्य ने सांख्य के 25 तत्त्वों के ज्ञान को ही मुक्ति का साधन माना हैं।

सांख्ययोग परमोच्च योग है। गीता में वर्णित है कि सांख्य योगी संसार में रहता हुआ और सारे कार्यों को करता हुआ उसमें लिप्त नहीं होता। वह फलाकांक्षी नहीं होता। वह विरक्त (निष्काम) कर्मयोगी होता है। सांख्य मत में दो प्रकार की मुक्ति जीवन्मुक्ति व विदेहमुक्ति होती है।

## भृगुयोग :-

भृगुयोग में सत्य पालन का सर्वाधिक महत्त्व है। सत्य ही सभी सद्गुणों का मूल है। सत्य ही ब्रह्म है। सत्य से बढकर काई दूसरा धर्म नहीं है। सत्य वाणी, सत्य कार्य और सत्य विचार से व्यक्ति सरल, समदर्शी व निर्ममत्व बनता है। सत्य के पालक को ईश्वर का सर्वत्र दर्शन होता है। सत्य पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति की ईश्वर में दृढ़ आस्था होती है। साधक का यह संकल्प दृढ़मूल रहता है कि संसार में केवल ईश्वर ही सत्य, नित्य और सर्वव्यापी है। जो सत्य है वही शिव है और वही सुन्दर है। **सत्यमेव जयति नानृतं**

सत्येन पंथा विततोदेवयानः। मुण्डक 3/1/6

**भावनायोग :–**

भावनोपनिषद् में दैवी शक्तियों का आवाहन, आसन, पाद्य, धूप, दीप, नैवैद्य,पूजन, अर्चन भावसहित करने को भावनायोग बताया गया है। आत्मा व परमात्मा के ऐक्य का भाव मन में रखने वाला साधक भावना-परायण होता है। कहा गया है कि तीन मुहूर्त तक भावना—परायण रहने वाला साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। भावना अन्तःकरण से सम्बन्धित है। अद्वैत का भाव मन में उठे, यह तभी सम्भव है जब साधक का मन, कर्म व वचन पवित्र हो। उसमें दैवी सम्पत्ति हो। परमात्मा के चिन्तन में, पूजन में व दर्शन में शुद्ध भाव ही प्रमुख है। गीता 6/4 में कहा गया है कि कर्म की गति और दिशा को उसमें विद्यमान भाव ही निर्धारित करता है। **आरम्भ कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान्वियोजयेद्यः।**

गरुडपुराण 2/38/13 में कहा गया है कि भगवान् प्राणी के भाव में विराजमान रहते हैं—

**भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावं समाचरेत्**

**हंसयोग :–**

ब्रह्मविद्योपनिषद् 60-61 में कहा गया है कि—

**प्राणिनां देहमध्ये तु स्थितो हंसः सदाऽच्युतः।**
**हंस एव परं सत्यं हंस एव तु शक्तिकम्।**
**हंस एव परं वाक्यं हंस एव तु वैदिकम्।**
**हंस एव परो रुद्रो हंस एव परात्परम्॥**

अर्थात् प्राणियों के शरीर में अच्युतरूपी हंस सदा स्थित रहता है।

हंस ही परम सत्य हैं। हंस ही शक्तिस्वरूप, परमवाक्य, वेदों का सार, परमरुद्र व परमात्मा है।

गरुडपुराण में हंस को आत्मतत्त्व का परम बीज कहा गया है—

**आत्मनः परमं बीज हंसाख्यं स्फटिकामलम्**

—गरुडपुराण

सूतसंहिता में हंस विद्या को जाने बिना मुक्ति प्राप्ति का प्रयास निरर्थक बताया गया है।

**हंस विद्यामविज्ञाय मुक्तौ यत्नं करोति यः।**
**स नभो भक्षणेनैव क्षुन्निवृत्तिं करिष्यति।।**—सूतसंहिता

दादू, कबीर, नानक आदि संतों ने हंसयोग का उपदेश दिया था। इसमें संयम और अभ्यास की अधिक आवश्यकता होती है। आहार, वाक् और काम संयम आवश्यक होता है। हंसयोग की साधना से आत्म ज्योति दर्शन और अनाहत ध्वनि का श्रवण करके सिद्धि प्राप्त होती है। हंसयोग को सहज योग और आत्म योग भी कहते हैं। हंस में हं का तात्पर्य आकर्षण व स का तात्पर्य विकर्षण है। दोनों के योग से हंसयोग होता है। उपनिषद् में 'हंस प्रणवोरभेदः' कह कर हंस व प्रणव को एक बताया गया है। हंसयोग के योगाभ्यास से आत्मज्ञान स्फुरित होता है।

**हंसात्ममालिकावर्णब्रह्मकालप्रचोदिता।**
**परमात्मा पुमानिति ब्रह्मसंपत्तिकारिणी।।**

पाशुपतब्रह्मोपनिषद् उत्तरकाण्ड 1

अर्थात् हंस का जप ही वर्ण ब्रह्म है, इसी से ब्रह्म प्राप्ति की प्रेरणा प्राप्त होती है। यह ब्रह्म ही परमात्मा एवं पुरुष है। यह ब्रह्म सम्पत्तिकारक होता है।

महावाक्योपनिषद् में कहा गया है कि आत्मा आदित्य रूप ब्रह्म श्वास प्रश्वास रूप अजपा जप से युक्त होकर हर एक देह में स्थित रहने वाला "हंस" नाम से युक्त परमात्मा है। इसी हंस रूप परमात्मा का अंश अपने को मानकर साधना करनी चाहिए।

**न्यासयोग :–**

अपने गुरु, विप्र तथा इष्ट देव के चरणों में स्वयं आत्मा का समर्पण करना प्रपत्ति है, यही निक्षेप होने से न्यास कहा जाता है। **निक्षेपापर पर्यायोन्यासः।** न्यास का तात्पर्य है स्थापना। मन, वाणी, कर्म का सर्वथा अपने प्रभु व इष्ट में स्थापित कर देना। इसके पाँच अङ्ग हैं—

1. कायिक प्रपत्ति
2. मानसी प्रपत्ति
3. वाचिकी प्रपत्ति
4. सात्त्विकी प्रपत्ति
5. इष्ट के समक्ष अकिंचनभाव रखना।

नारदपञ्चरात्र में न्यासयोग का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। न्यासो नाम भगवति समर्पणम् अपने इष्ट व गुरु के प्रति न्यासयोग की भावना से श्रद्धाभाव से समर्पित होकर अतिशय कृतज्ञ भाव से बुद्धि रखे तो साधक परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

मानसी व सात्त्विकी प्रपत्ति मुख्य मानी गई है, क्योंकि इससे मनीषीगण शीघ्र ही परम सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं—

**सत्त्वजा मानसी त्वेका तत्र मुख्यतमा मता।**
**तथा हि परमां सिद्धिं सद्यो यान्ति मनीषिणः॥**

नारदपञ्चरात्र 1/29

## नाथयोग :-

नाथयोग की प्राचीन परम्परा गुरुवाद है। नाथयोग की साधना के पूर्व सद्गुरु बनाना अनिवार्य है। नाथयोग में गुरु को साक्षात् परमानन्द माना गया हैं।

**श्री गुरु परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम्।**
**यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः॥**

गोरक्षसंहिता

श्री दत्तात्रेय ने गुरु पद की महिमा स्थापित करने के लिए अलग-अलग चौबीस गुरु बनाए थे। गुरु की कृपा से अन्तःनाद सुनाई पड़ने लगता है। नाथ सम्प्रदाय में सबके गुरु गोरक्षनाथ माने जाते हैं। गुरु समस्त श्रेयों का मूल है। गुरु में आस्था समस्त भव बन्धनों का नाश कर मुक्ति प्राप्त करा देता है। गु का अर्थ अन्धकार (अज्ञान) और रु का अर्थ उसको दूर करने वाला, नष्ट करने वाला। इस प्रकार सद्गुरु अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर यथार्थ ज्ञान रूपी प्रकाश देता हैं।

## कुण्डलिनीयोग :-

इस साधना में कुण्डलिनी शक्ति ही लक्ष्य प्राप्ति का मुख्य साधन है। यहाँ कुण्डलिनी शक्ति को जागृत किया जाता है फिर वह षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर शिव के साथ एक हो जाती है। विना सद्गुरु के कुण्डलिनी योग में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। ध्यान व भक्ति की उच्चावस्था व प्रौढावस्था में कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के मूल में प्राण व अपान वायु का साम्य स्थापन होता है।

योगशिखोपनिषद् में कुण्डलिनी का स्थान मूलाधार त्रिकोण ही है। इसके अनुसार शरीर में नवचक्र होते हैं। गोरक्ष पद्धति, शिवमहापुराण व सौन्दर्य लहरी में षट्चक्रों का ही उल्लेख है। ज्ञानार्णव तन्त्र, घेरण्डसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, योगकुण्डल्युपनिषद्, योगस्वरोदय, रुद्रयामलतंत्र, योगचुडामण्युपनिषद्, सौन्दर्यलहरी आदि ग्रन्थों में कुण्डलिनी शक्ति का विस्तार से वर्णन है। चक्र इस प्रकार हैं—

1. मूलाधार चक्र (ब्रह्मचक्र) - भूलोक, ब्रह्माण्ड क्षेत्र में
2. स्वाधिष्ठान चक्र - लिङ्गमूल क्षेत्र
3. मणिपूर चक्र (नाभिचक्र) - नाभि में।

   यह तेजोमय, द्वादश दलों वाला व शिव का निवास माना जाता है।

**तृतीयं नाभिचक्रं स्यात्तन्मध्ये तु जगत् स्थितम्।**

योगराजोपनिषद् 9

यह मणि के समान कान्तिवाला होने के कारण मणिपद्म कहा जाता है—

देवीभागवत 7/35/37

4. अनाहत चक्र (हृदयचक्र) - दोनों स्तनों के जोड़, हृदय स्थान
5. विशुद्धि चक्र (कण्ठचक्र) - कण्ठ
6. तालुकाचक्र (घण्टिका स्थान में) - **षष्ठं च तालुकाचक्रं घण्टिकास्थानमुच्यते।**

   योगराजोपनिषद् 13
7. आज्ञा चक्र (भूचक्र) - भ्रूमध्य त्रिकुटी क्षेत्र, बिन्दु स्थान **भूचक्रं सप्तमं विद्याद्बिन्दुस्थानं च तद्विदुः।** योगराजो0 15
8. सहस्रार चक्र (ब्रह्मरन्ध्रचक्र) - मस्तिष्क में, इसमें सहस्रदल हैं। देवीभागवत में इसे शून्य चक्र भी कहा गया है। यह परम-निर्वाण सूचक है।
9. व्योमचक्र (सोलह दल सहित)

**नवमं व्योमचक्रं स्यादश्रैः षोडशभिर्युतम्।**

योगराजोपनिषद् 17

प्राणशक्तियों की केन्द्रीभूत शक्ति को देवी कुण्डलिनी कहा गया है। शरीरस्थ ब्रह्माण्ड की गति व क्रिया शक्ति का आधार श्री कुण्डलिनी महाशक्ति है। योगराजोपनिषद् 6 में कुण्डलिनी के बारे में लिखा है—

**अपाने मूलकन्दाख्यं कामरूपं च तज्जगुः।**
**तदैव वह्निकुण्डं स्यात् तत्त्वकुण्डलिनी तथा॥**

अर्थात् अपान के स्थान में कामरूपी मूलकन्द स्थित है, उसको ही अग्निकुण्ड व तत्त्वकुण्डलिनी बताया गया है।

मोक्ष मार्ग का द्वार कुण्डलिनी शक्ति को कहा गया है। उसके उद्‌बोधन से (जागृत करने से) मोक्ष का द्वारा खुल जाता है। जब कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है तब वह शाक्तयोग कहा जाता है।

कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में भ्रस्त्रिका प्राणायाम, कपालभाँति प्राणायाम, महाबन्ध, खेचरी मुद्रा व शक्तिचालिनी मुद्रा उपयोगी होती है।

एक बार कुण्डलिनी जागृत हो जाने पर उसे सदैव जागृत रखने के लिए यह आवश्यक है कि साधक का मनोनिग्रह, वैराग्य की भावना, साधना, पवित्रता आदि सदैव बना रहे। इस प्रकार मोक्ष का द्वार कुण्डलिनी शक्ति है और इसके उद्‌बोधन, जागरण से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसे ही कुण्डलिनी योग कहा गया है।

ॐ

# योगी के लिए पथ्य

स्वास्थ्य रक्षा व अध्यात्म साधना की दृष्टि से आहार-विहार का सर्वाधिक महत्त्व है। शरीर का स्वस्थ रहना मन के प्रसन्न, संतुष्ट व स्वस्थ रहने से जुड़ा हुआ है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य आवश्यक है। आहार का अतिशय प्रभाव व्यक्ति के मन पर पड़ता है। कहा भी गया है कि जैसा अन्न वैसा मन। योगी व साधक के लिए सात्त्विक आहार, सुपाच्य आहार, हल्का आहार व मिताहार अनिवार्य है। विना सम्यक् आहार के योग साधना सफल नहीं हो सकती। हितभुक्, मितभुक् व ऋतभुक् अच्छे स्वास्थ्य के लिए अपरिहार्य है। आहार की शुद्धता, स्वच्छता, समयबद्धता व प्रसन्नचित्त से उसका ग्रहण प्रधान रूप से ध्यातव्य है। कामोत्तेजक, अत्युष्ण, अत्यधिक ठण्डा, बासी, गरिष्ठ आहार त्याज्य है। बहुत उपवास भी योगी के लिए ठीक नहीं है। सद्विचार व सात्त्विक भोजन आत्मा व मन को पवित्र बनाते हैं।

**भुञ्जानो यावकं रुक्षं दीर्घकालमरिंदम।**
**एकाहारो विशुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात्।।**

महा0शा0 मोक्षधर्म पर्व 300/44

जो दीर्घकाल तक एक समय जौ (यव) का बना पदार्थ खाता है वह योगी शान्तचित्त होकर योग बल प्राप्त कर लेता है।

**भयक्रोधमथालस्यमतिस्वप्नातिजागरम्।**
**अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत्।।**

अमृतनादोपनिषद् 28

अर्थात् भय, क्रोध, आलस्य, अधिक सोना, अधिक जागना, अधिक भोजन करना या विल्कुल निराहार रहना ऐसे दुर्गुणों को योगी सदा के लिए त्याग कर दे।

**पुष्टं सुमधुरं स्निग्धं गव्यं धातुप्रपोषणम्।**
**मनोऽभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत्।।**

हठयोगप्रदीपिका 1/63

अर्थात् योगी को पुष्टिकारक, सुमधुर, स्निग्ध, गाय का दूध, घी, आदि धातु को पुष्ट करने वाले व मन को अच्छे लगने वाले आहार को ग्रहण करना चाहिए

**नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।**
**न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥**

**गीता 6/16**

हे अर्जुन ! योग न तो बहुत भोजन करने वाले कर सकते हैं और न सर्वथा उपवास करने वाले। यह बहुत सोने वाले के वश का भी नहीं है और नहीं सदा जागने वाले के वश का है।

**मिताहारं विना यस्तु योगारम्भं तु कारयेत्।**
**नानारोगा भवन्त्यस्य किञ्चिद्योगो न सिद्ध्यति॥**

घेरण्डसंहिता 5/16

मिताहार किये बिना जो योगाभ्यास का आरम्भ करता हैं उसे नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं और उसका कोई योग सिद्धि नहीं होती।

**भुञ्जन्सक्तुं यवागुं च तक्रमूलफलंपयः।**
**यावकं कणपिण्याकमाहारं योगसाधनम्॥**

ब्रह्मपुराण 235/6

योग साधक का आहार सत्तू, यवागु (लपसी), तक्र, मूल, फल, दूध, यावक (जौ की बनी वस्तु) चावल का कण, पिण्याक (केसर) आदि है।

**सुस्निग्धमधुराहारश्चतुर्थांशविवर्जितः।**
**भुञ्जते शिवसंप्रीत्या मिताहारी स उच्यते॥**

योगचूडामण्युपनिषद् 43

योग के साधक को मधुर व स्निग्ध भोजन आधा पेट लेना चाहिए। अर्थात् आधा पेट भोजन, एक चौथाई भाग पानी तथा एक चौथाई भाग खाली रखे। इस प्रकार शिव की प्रीति के लिए किया जाने वाला भोजन मिताहार कहलाता है।

1. लौंग
2. गूलर
3. गेहूँ की रोटी
4. गोदुग्ध

5. अरहर की दाल
6. जौ की रोटी
7. जातिफल
8. ऋतुफल
9. चना
10. चौलाई
11. चावल
12. बैगन
13. उड़द
14. सोंठ
15. परवल
16. हरड़
17. मिश्री
18. त्रिफला
19. मूली
20. मूँग
21. मानकन्द
22. मक्खन
23. मधु
24. कटहल
25. केला
26. करैला
27. ककड़ी
28. कठजामुन
29. कंकोल
30. बादाम
31. बथुआ

32. इलायची
33. ऋतुअनुकुलशाक
34. खजूर
35. घुइयाँ
36. गोघृत

योगसाधकों को सदैव सूर्य नाड़ी प्रवाह में ही भोजन करना चाहिए। सद्यः भोजनोपरान्त और भूखे रहने की स्थिति में भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। मिताहार किये बिना जो योगाभ्यास किया जाता है उससे शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आहार ग्रहण करने में ऋतु, रुचि एवं पाचन क्षमता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। अत्यन्त मधुर भोजन व अत्यन्त लवणयुक्त भोजन नहीं लेना चाहिए। अत्यन्त मधुर आहार जठराग्नि का शमन कर देता है और अत्यन्त लवणयुक्त आहार अचाक्षुष्य (नेत्रों की ज्योति के लिए प्रतिकूल) होता है। भोजन के समय जल पीना और भोजनोपरान्त सोना पाचन शक्ति के लिए अहितकर होता है। इस प्रकार योगसाधक को प्रसन्न मन होकर तथा शान्तचित्त होकर शुद्ध, सात्त्विक, सुपाच्य एवं हल्का आहार ग्रहण करना चाहिए। योगाभास के तत्काल बाद भी भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन करते समय और कोई कार्य जैसे वार्तालाप या टी0वी0 आदि देखना उचित नहीं है।

ॐ

# योग के लिए अपेक्षित तत्त्व

1. गुरु का मार्ग दर्शन

   **'यावद् ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः'** भागवत 11/19/39

2. **"आत्मवत् सर्वभूतेषु"** का भाव रखना
3. वाह्य और आन्तरिक शुचिता
4. देहाभिमान का त्याग
5. सात्त्विक भोजन व अभिवृत्ति
6. सकारात्मक विचार
7. सब प्राणियों के कल्याण में रत रहना

   **"भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः"**–भागवत 11/17/21

   **ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।** गीता 12/4

8. ज्ञानी पुरुषों से सम्पर्क
9. प्रसन्न मन से योगाङ्गों का अभ्यास

   **तदिदं नाप्रशान्ताय नादान्तायातपस्विने।** महा0शा0प0 246/16

10. प्राण, मन और इन्द्रिय पर विजय, इन्द्रियों का निग्रह

    **विवेकानुदारात्मा विजितेन्द्रिय उच्यते।** योगवासिष्ठ 3/163/15

11. पुण्य कृत्यों में संलग्न रहना
12. भोग साधनों की अभिलाषा न करना, भोगों में वैराग्य की प्रवृत्ति

    **'भोगेच्छामात्रको बन्धस्तत्यागो मोक्ष उच्यते'**

    योगवासिष्ठ 4/35/3

13. निरन्तर व नियमित अभ्यास
14. मिताहार

    **लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मनिमात्मनि।**

    महा0शा0पर्व 246/12

**'घृतं क्षीरं च मिष्टान्नं मिताहारश्च शस्यते'**

दत्तात्रेय योगशास्त्र 142

15. किसी के गुप्त रहस्य प्रसङ्ग को अन्यों के समक्ष न कहना
16. कर्तव्य कर्मों का निर्वाह करे।
17. कर्तापन का त्याग। कर्तृत्व का त्याग

**स्पन्दात्मकर्मविरामे तद्वत्प्रक्षीयते मनः।** योगवासिष्ठ 3/95/25

**'यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते'** गीता 18/17

18. कठोरता से ममता का नाश, **"ममेति मूलं दुखस्य"**
19. ईश्वर शरणागति, ईश्वर में चित्त लगाना

**'मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी'** गीता 13/10

20. अभिमान का त्याग। अहंभाव का त्याग

**'अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्'** गीता 13/7

21. शास्त्र अध्ययन एवं सत्सङ्ग से अपना ज्ञान बढ़ाना

**'स्वाध्यायान्माप्रमदः'** तैत्तिरीयोपनिषद् 1/11

22. धैर्य धारण—**जिह्वोपस्थजयो धृतिः** -भागवत
23. ध्यान, अध्ययन, सत्य, ऋजुता, क्षमा, शौच, आचार, आहार शुद्धि, इन्द्रियों का संयम व लज्जा आदि सद्गुणों का निरन्तर विकास व अभ्यास करे, इनसे व्यक्ति का तेज बढ़ता है।

महाभारत शान्तिपर्व 274/15-16

24. **योगस्य प्रथमद्वारं वाङ्निरोधोऽपरिग्रहः।**
**निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता॥**

विवेकचूडामणि 369

योग का प्रथम साधन है वैखरी वाणी का निरोध अर्थात् मौन। अपरिग्रह, निराशा (कामना त्याग), निरीहा (एषणाओं को त्याग) और नित्य एकान्त सेवन।

25. सम-भाव का अभ्यास

**हेयोपादेयदृशौ त्यक्त्वा शेषस्थः स्वच्छतां व्रज॥**

योगवासिष्ठ 5/13/21

26. संकल्पों का उच्छेदन

'संकल्पनं मनोबन्धस्तदभावो विमुक्तता' योगवासिष्ठ 6/1/27

27. वासनाओं का त्याग

वासना ही चित्त स्वरूप है। वासना का क्षीण होना ही जीवन्मुक्त स्थिति है—

**प्रक्षीणवासना येह जीवतां जीवनस्थितिः।**
**अमुक्तैरपरिज्ञाता सा जीवन्मुक्ततोच्यते॥** योगवासिष्ठ 3/22/8

28. ब्रह्मभाव का अभ्यास

**'अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय'** गीता 12/9

29. असङ्ग का अभ्यास

**'शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः'** गीता 12/18

30. सब वस्तुओं का त्याग

**'असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु'** गीता 13/9

31. एकान्त और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव

**'विविक्तदेशसेवित्वम्'** गीता 13/10

ॐ

# योग से लाभ

1. योग की ओर प्रवृत्त होने पर अन्तःकरण दिन प्रति दिन वासनात्मक चिन्तन से दूर हो जाता है।
2. योग साधक परमार्थ कर्मों को करता हुआ नित्य हर्ष का अनुभव करता है।

   **क्रियासूदाररूपासु क्रमते मोदतेऽन्वहम्-** अक्ष्युपनिषद् 2/4
3. योगी पुण्य कृत्यों में हमेशा संलग्न रहता है।

   **नोदाहरति मर्माणि पुण्यकर्माणि सेवते-** अक्ष्युपनिषद् 2/5
4. वह मृदुल व देश, काल, पात्र के अनुकूल वाणी का प्रयोग करता है।
5. योगसाधक भोग साधनों की इच्छा नहीं करता।
6. योगी सभी प्राणियों में समभाव रखता है।

   **नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नायोगाद् विन्दते सुखम्**

   —महाभारत शा0पर्व 286/16
7. गुरुगम्य योग करने से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।
8. योगी का मन मल रहित हो जाता है।
9. इन्द्रियाँ प्रमाद रूपी अवगुण को छोड़कर शुद्ध हो जाती हैं।
10. योग से बालो का पकना नष्ट हो जाता है।
11. योग से मनुष्य मनोजयी हो जाता है।
12. योगी सभी तरह के पापो से मुक्त हो जाता है।

    **सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्।** जाबालदर्शनोपनिषद् 6/19
13. प्राणायाम से चित्त पवित्र व निर्मल हो जाता है।
14. प्राणायाम से मुनष्य सभी तरह के रोगों से मुक्त हो जाता है।

    **न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्**

    -श्वेताश्व0 2/12

15. प्राणायाम से मनुष्य सौ वर्ष तक जीवन धारण करता है।

**सर्वरोगविनिर्मुक्तो जीवेद् वर्षशतंनरः।** जाबाल0दर्शनो0 6/23

16. प्राणायाम से शरीर में हल्कापन आ जाता है।

**दृढ़ता लघुता चापि तस्य गात्रस्य जायते।**

—शाण्डिल्योपनिषद् 1/7/4

17. इससे सिर, कान व नेत्र के सभी रोगों का शमन हो जाता है।

18. वात और पित्त जनित सभी प्रकार के रोग प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं।

**तेन गुल्मप्लीहज्वरपित्तक्षुधादीनि नश्यन्ति।**

-शाण्डिल्योपनिषद् 1/7/13

19. अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाने पर योगी का सभी प्राणियों से वैरभाव दूर हो जाता है।

20. योगी की वाणी ध्रुव सत्य प्रतिपादन अर्थात् अमोघ हो जाती है।

21. योग से यथार्थ ज्ञान का आविर्भाव होता है।

**तत्स्वयं योगसंसिद्धिः कालेनात्मनि विन्दति** - गीता 4-38

योगबीज 19 व योगशिखोपनिषद् 1.13 में भी लगभग ऐसा ही कहा गया है—

**योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरि।**

**योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमोमोक्षकर्मणि।।**

22. योग द्वारा व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द का अनुभव कर लेता है।

**योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्**—महा0 उद्योगपर्व 46/7

23. योग से शरीर के ज्ञान तन्तु बलवान होते हैं। ज्ञान से संशय नष्ट होता है और मुक्ति प्राप्त होती है।

**योगात् सन्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मुक्तिः प्रजायते।।** गरुडपुराण

24. **'भवतापेन तप्तानां योगो हि परमौषधम्'।**

अर्थात् संसार ताप से तपे हुए मनुष्यों के लिए योग ही बड़ी औषधि है।

25. **योगात् सम्प्राप्यते ज्ञानं योगोधर्मस्य लक्षणम्।**
**योगः परं तपो ज्ञेयस्तस्माद् योगं समभ्यसेत्।।** अत्रिसंहिता

योग से ज्ञान प्राप्त होता है। योग ही धर्म का लक्षण है। योग ही परम तप है, इसलिए योग का अभ्यास करना चाहिए।

26. **न च तीव्रेण तपसा न स्वाध्यायैर्न चेज्यया।**
**गति गन्तुं द्विजाः शक्ता योगात् सम्प्राप्नुवंति माम्।।** अत्रिसंहिता

द्विजों को तपस्या, स्वाध्याय और यज्ञों से जो सद्गति नहीं मिल सकती, वह योगाभ्यास से मिल सकती है।

27. योगी में मूत्र पुरीष की अल्पता आ जाती है। साथ ही साथ योगी की गन्ध उत्तम हो जाती है।

**सत्त्वं तथाऽऽरोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च।**
**गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे।।**

वायुपुराण 11/63

28. **योगे मोक्षे च सर्वेषां वेदनानामवर्तनम्।**
**मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा योगो मोक्षप्रवर्त्तकः।।**

अत्रिसंहिता, चरकसंहिता शारीरस्थान 1/137

योग से मनुष्य के समस्त शारीरिक और मानसिक रोगों का नाश हो जाता है। योग से मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है।

29. **योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।**
**ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।।**

भागवत 11/20/6

मनुष्यों के कल्याण सम्पादन के लिए मैंने तीन योग बतलाए हैं—ज्ञान, कर्म और भक्ति। इन तीन के अतिरिक्त मनुष्यों के कल्याण का और कोई भी उपाय नहीं है।

30. योग के अङ्गों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि दूर होने पर विवेक ख्यातिपर्यन्त ज्ञान का विकास हो जाता है।

**योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तितरा विवेकख्यतिः।**

विवेकचूड़ामणिभाष्य, पातञ्जलयोग 2/28

31. बाह्य इन्द्रियों का निरोध करने से (उन्हें अन्तर्मुखी बनाने से) प्राणतत्त्व रूपी यह आत्मा योग के माध्यम से ऊर्ध्व की ओर गमन करता है।

**एषोबाह्यावष्टम्भनेनोर्ध्वमुत्क्रान्तो व्यथमानोऽव्यथमानस्तमः प्रणुदत्येष आत्मेत्याह।** मैत्रायण्युपनिषद् द्वितीय प्रपाठक 2

32. योगी जाग्रत और निद्रा (स्वप्न) की अवस्था से मुक्त होकर अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिर हो जाता है।

33. योगी मान—अपमान से परे हो जाता है। समाधि द्वारा वह सभी का त्याग कर देता है।

**न मानं नावमानं च संत्यक्त्वा तु समाधिना।** नादबिन्दूपनिषद् 54

34. योगी का चित्त तीनों अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से मुक्त होकर सभी तरह की चिन्ताओं से रहित हो जाता है।

**अवस्थात्रयमन्वेति न चित्तं योगिनः सदा।** नादबिन्दूपनिषद् 54

35. **नास्ति माया समं पापं नास्ति योगान्तरं बलम्।**

घेरण्डसंहिता 1/4

"माया के समान कोई पाप नहीं और योग के समान कोई बल नहीं है।"

36. तथा **योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते।** घेरण्डसंहिता 1/5

योग के अभ्यास से तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति होती है।

37. योग द्वारा कर्मों का शमन होगा। योगी पुरुष को कर्म नहीं बाँधते।

**योगिनः कर्मकुर्वन्ति संगंत्यक्त्वात्मशुद्धये** गीता 5/11

38. प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियों की शुद्धि हो जाती है इससे कफ का शमन और जठराग्नि की वृद्धि होती है। शाण्डिल्योपनिषद्

39. योगी दूसरों के चित्तगत भावों का यथार्थ ज्ञान कर लेता है।

**प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्** —पतञ्जलि योगदर्शन 3/19

40. योग से हमारा सामाजिक व व्यक्तिगत समायोजन होता है।

41. योग द्वारा चेतना का विकास ही स्वास्थ्य का मूल आधार है।

42. योग एक सम्पूर्ण जीवन शैली व मुक्ति का मार्ग है।

43. **योगात्संजायते ज्ञानं योगो मय्ययेकचित्तता।**

**ज्ञानस्वरूपमेव स्याचिद्रूपमजमव्ययम्।।** सूर्यपुराण 9/23

योग से ज्ञान पैदा होता है। मेरे में एकनिष्ठ चित्त लगाना ही योग है। सत्, चित्, अज, व अव्यय परमात्मा ज्ञानस्वरूप ही है।

44. **योगविद्योगयुक्तात्मा परं निर्वाणमृच्छति-।।** सूर्यपुराण 10/36

योगी योग से युक्तात्मा होकर निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

**तस्माद् योगात्परतरो नास्ति मार्गस्त मोक्षदः।** योगबीज 66

45. योग से आत्मा का साक्षात्कार होता है—

**येनात्मा दृश्यतां गतः।** अहिर्बुध्न्यसंहिता 31/15

46. योग से धर्म और विद्या दोनों की रक्षा होती है।

**योगेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते**—विदुरनीति

47. **"जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः।**

**योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत्"।।**

इस संसार में जन्म, औषधि, तपस्या और मन्त्रादि के द्वारा जितनी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं, वे सभी योग के द्वारा मिल जाती हैं।

भागवत 11/15/34

48. **क्लेशानां च क्षयकरं योगादन्यन्न विद्यते**-श्रीविष्णुपुराण 6/7/25

क्लेशों को नष्ट करने वाला योग के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

49. **अनित्यत्वेन च स्नेहं क्षुधायोगेन पण्डितः।** महा0शा0पर्व 274/10

विद्वान् पुरुष वस्तुओं की अनित्यता का चिन्तन कर आसक्ति को और योगाभ्यास के द्वारा क्षुधा को जीते।

50. गुरु सेवा से ज्ञान और योग से शान्ति प्राप्त होती है—

**गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति।** महा0उद्योगपर्व 36/52

51. **अग्न्यादिभिर्न हन्येत् मुनर्योगमयं वपुः।**

**मद्योगश्रान्तचित्तस्य यादसामुदकं यथा।।** उद्धवगीता 10/29

योगयुक्त व्यक्ति को जिसका मन भगवान् के साथ एकनिष्ठ हो गया हैं, उसको आग, पानी और जानवर नष्ट नहीं कर सकते।

ऐसा ही भागवत 11/15/29 में भी कहा गया है।

52. **अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम्॥**

**विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः॥** भागवत 10/61/21

योगीजन भूत, भविष्य और वर्तमान की सभी बाते जानते हैं। उनसे कोई ऐसी बात नहीं छिपी रहती जो इन्द्रियों से परे है या बहुत दूर है।

53. नैसर्गिकी प्रतिभा से योगी सब कुछ जान लेता है—

**प्रतिभाद्वा सर्वम्**—पातंजलयोगदर्शनविभूतिपाद 33

54. **नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नायोगाद् विन्दते सुखम्।**

महाभारत शान्तिपर्व 246/16

जिसका चित्त योगमुक्त नहीं है उसे समत्व बुद्धि नहीं प्राप्त होती। योग के बिना कोई सुख नहीं प्राप्त करता है।

55. **ससांख्यधारणं चैव विदितात्मा नरर्षभ।**

**जयेच्च मृत्युं योगेन तत्परेणान्तरात्मना॥** महाभारत शान्तिपर्व 317/20

सांख्य और योग के अनुसार धारणापूर्वक योग तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके ध्यान योग द्वारा आत्मा को परमात्मा में लगा देने से योगी मृत्यु को जीत लेता है।

## योगबल

**नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम्**

—महा0शा0 पर्व 3/6/2

भारतीय वाङ्मय में योग के तेज, बल व योग की महिमा के बारे में पर्याप्त वर्णन व विवेचन प्राप्त होता है। ऋषियों, मुनियों एवं देवताओं द्वारा योगबल से किए गए महनीय एवं अलौकिक कार्यों में से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

1. **अधिगम्य तु योगेन भक्तिं भीष्म माधवः।**

महा0शान्तिपर्व 47/102

भगवान् श्रीकृष्ण अपने योगबल से भीष्म की भक्ति जानकर उनके निकट गये।

2. **ततो बुद्धिमुपागम्य भगवान् पाकशासनः।**

**योगेन महता युक्तस्तां मायां व्यपकर्षत॥**

महा0शान्तिपर्व 281/28

तब भगवान् इन्द्र ने उत्तम बुद्धि का आश्रय लेकर महान् योग से युक्त हो, उस माया को नष्ट कर दिया।

3. **तदेनमसुरश्रेष्ठं त्रैलोक्येनापि दुर्जयम्।**
**जहि त्वं योगमास्थाय मावमंस्थाः सुरेश्वर॥**

महा0शान्तिपर्व 281/35

हे इन्द्र। यह श्रेष्ठ असुर वृत्रासुर तीनों लोको के लिए दुर्जय है। तुम योग का आश्रय लेकर इसका वध करो। इसकी अवहेलना मत करो।

4. **ततो योगबलं कृत्वा सर्वयोगेश्वरेश्वरः।**
**तं यज्ञं स महातेजा भीमैरनुचरैस्तदा॥**
**सहसां घातयामास देवदेवः पिनाकधृक्॥**

महा0शान्तिपर्व 283/32

तब सम्पूर्ण योगेश्वरों के भी ईश्वर शिव ने योगबल का आश्रय लेकर भयानक सेवकों द्वारा उस यज्ञ को नष्ट करा दिया।

5. **तस्यात्मानमथाविश्य योगसिद्धो महामुनिः।**
**रुद्ध्वा धनपतिं देवं योगेन हृतवान् वसु॥**

महा0शान्तिपर्व 289/9

योगसिद्ध महामुनि उसना ने योगबल के द्वारा धनपति कुबेर के भीतर प्रवेश कर उनको वश में करके उनका सम्पूर्ण धन अपहरण कर लिया।

6. **नागान् नगान् यक्षगणान् दिशश्च**
**गन्धर्वसंघान् पुरुषान् स्त्रियश्च।**
**परस्परं प्राप्य महान्महात्मा।**
**विशेत योगी न चिराद् विमुक्तः॥**

महा0शान्तिपर्व 300/61

योगसिद्ध महात्मा योगबल से नाग, वृक्ष, यक्ष, दिशा, गन्धर्व, समस्त स्त्री-पुरुष, नदी, वन, मेघ प्रत्येक के पास पहुँच कर उसके भीतर प्रवेश कर सकता है।

7. **नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन् संयम्य रश्मिभिः।**
**सा स्म तं चोदयिष्यन्ती योगबन्धैर्बबन्ध ह।।**

महा0शान्तिपर्व 320/17

राजा जनक से प्रश्न करने को उद्यत सुलभा ने अपने नेत्र किरणों द्वारा उनके नेत्रों की किरणों को सयंत करके योगबल से उनके चित्त को बाँध कर वंश में कर लिया।

8. **तस्मै स होवाच पितामहश्च श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि।**

2 कैवल्योपनिषद्

ब्रह्मा जी ने आश्वलायन से कहा कि तुम अतिश्रेष्ठ परात्पर तत्त्व को श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग के अभ्यास से जानने का प्रयास करो।

9. **लभते योगयुक्तात्मा पुरुषस्तत्परं पद्म।** योगतत्त्वोपनिषद् 140

योग से युक्त योगी पुरुष उस परम पद अर्थात् मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है।

10. **न तु योगमृते शक्या प्राप्तुं सा परमागतिः।**

महा0शान्तिपर्व 330/52

अर्थात् योग के बिना उस परमगति को नहीं प्राप्त किया जा सकता।

11. **स पुनर्योगमास्थाय मोक्षमार्गोपलब्धये।**
**महायोगेश्वरो भूत्वा सोऽत्यक्रामद् विहायसम्।।**

महा0शान्तिपर्व 332/6

शुकदेव जी मोक्षमार्ग की उपलब्धि के लिए योग का आश्रय ले कर महान् योगेश्वर हो वे आकाश में उड़ने के लिए तैयार हो गये।

12. **अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।**
**योगस्य कलया तात न तुल्यं विद्यते फलम्।।**

महा0शान्तिपर्व 323/9

हजारों अश्वमेध और सैकड़ो वाजपेय यज्ञ का जो फल है, वह योग की सोलहवीं कला के फल की भी समानता नहीं कर सकता।

13. **ध्यानयोगेन शुद्धेन निर्ममा निरहंकृताः।**
**आप्नुवन्ति महात्मानो महान्तं लोकमुत्तमम्।।**

महा0अनुगीतापर्व 51/22

जो अंहता-ममता से रहित हैं, वे महात्मा विशुद्ध रूप ध्यानयोग के द्वारा महान् उत्तम लोक को प्राप्त करते हैं।

14. **सम्यग्युक्तो यदाऽऽत्मानमात्मन्येव प्रपश्यति।**
**तदैव न स्पृहयते साक्षादपि शतक्रतोः।।**

महा0अनुगीतापर्व 19/32

सम्यक् योगाभ्यास कर योगी अपने में ही आत्मसाक्षात्कार करने लगता है, उस समय वह साक्षात् इन्द्र के पद को भी पाने की इच्छा नहीं करता।

15. **बहुरूपो हि भगवान्छ्रूयते पाकशासनः।**
**सोऽहं योगबलादेनां रक्षिष्ये पाकशासनात्।।**

महा0अनुशासनपर्व 40/46

देवशर्मा पुत्र विपुल ने सोचा कि ऐश्वर्यशाली इन्द्र बहुरूपिया सुने जाते हैं। अतः मै योगबल का आश्रय लेकर ही इन्द्र से अपने गुरुपत्नी की रक्षा करूँगा।

16. **अन्तर्हितः पुनश्चास्मि पुनरेव च ते गृहे।**
**योगमास्थाय संसुप्तो दिवसानेकविंशतिम्।।**

महा0अनुशासनपर्व 55/19

च्यवन ऋषि ने कुशिक से कहा कि मै अन्तर्धान हुआ और पुनः तुम्हारे घर में आकर योग का आश्रय लेकर इक्कीस दिनों तक सोया।

17. **न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः।**
**परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया।।**

महा0आश्वमेधिकपर्व 16/12

अर्जुन द्वारा पुन गीता ज्ञान सुनाए जाने की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण ने कहा कि वह सारा का सारा धर्म उसी रूप में दुहरा देना अब मेरे वश की बात नहीं है। उस समय योगयुक्त होकर मैने परमात्मतत्त्व का वर्णन तुमसे किया था।

18. **एवंवृतः परित्यक्तः पिता स्नेहमपोह्य वै।**
**योगैश्वर्येण बलांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययो।।**

श्रीमद्भागवत 9/8/18

असमंजस के पिता सगर ने पुत्र स्नेह को छोड़कर उन्हे त्याग दिया। तब

असमंजस ने अपने योगबल से उन सब बालको को जीवित कर दिया जो उनके द्वारा सरयू नदी में फेक देने से मर गए थे। उन बच्चों को पिता को दिखाकर असमंजस वन में चले गए।

19. **यः शेते योगमास्थाय पर्यङ्के नागभूषिते।**
**फणासहस्त्ररचिते तस्मै निद्रात्मने नमः॥**

महा0शान्तिपर्व 47/49

जो योग बल के द्वारा शेषनाग के सहस्त्र फणों से निर्मित पलङ्ग पर सोते हैं, उन निद्रास्वरूप परमात्मा को नमस्कार है।

20. **देवर्षिलोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम्।**
**दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तं ज्ञानयोगेन वै पुरा॥**

महा0स्त्रीपर्व 26/20

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र से कहा कि तीर्थयात्रा के समय देवर्षि लोमस का दर्शन हुआ था। उन्हीं से मैने यह अनुस्मृति विद्या प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त पूर्वकाल में ज्ञानयोग के प्रभाव से मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी थी।

21. **दृष्ट्वा प्रभावं तपसो जैगीषव्यस्य योगजम्।**
**चिन्तयामास राजेन्द्र तदा स मुनिसत्तमः॥**
**मया दृष्टः समुद्रे च आश्रमे व कथं त्वयम्॥**

महा0शल्यपर्व 50/23

जैगीषव्य की तपस्या का वह योगजनित प्रभाव देखकर मुनि असित देवल सोचने लगे-मैने अभी-अभी इन्हे समुद्र तट पर देखा है फिर ये आश्रम में कैसे उपस्थित हैं ?

22. **पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।**
**न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥**

श्वेताश्वतरो0 2-12

ध्यान योगसाधन से पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और तेज इन पञ्चमहाभूतों से सम्बन्धित सिद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं। योगाग्निमय शरीर में जरा, व्याधि और मृत्यु नहीं आती। अर्थात् योगी का पाँचों महाभूतों व उससे निर्मित शरीर पर अधिकार हो जाता है।

23. **योगी स सर्वानभिभूय मर्त्यान्**
**नारायणात्मा कुरुते महात्मा॥** महा0शान्तिपर्व 300/62

योगसिद्ध महात्मा सब मनुष्यों से ऊपर उठकर नारायणस्वरूप हो जाता है। वह संकल्पमात्र से सृष्टि करने में समर्थ हो जाता है।

24. **यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग् ध्वस्तबन्धनः।**
**आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम्।।** भागवत 6-10-12

दधीचि के इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि संयत थे। उनके सारे बन्धन ध्वस्त हो चुके थे। परमयोग में स्थित होने के कारण उन्हें पता ही नहीं चला कि मेरा शरीर छूट गया।

25. **विशन्ति चावशाः पार्थ योगाद् योगबलान्विताः**
**प्रजापतीनृषीन् देवान् महाभूतानि चेश्वराः।।**
**न यमो नान्तकः कुद्धो न मृत्युर्भीमविक्रमः।**
**ईशते नृपते सर्वे योगस्यामिततेजसः।।**
**आत्मनां च सहस्राणि बहूनि भरतर्षभः।**
**योगः कुर्याद् बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्।।**

महा0 शान्तिपर्व 300/24-25-26

योगशक्तिसम्पन्न पुरुष स्वतन्त्रतापूर्वक प्रजापति, ऋषि, देवता और पञ्चमहाभूतों में प्रवेश कर जाते हैं।

अमित तेजस्वी योगी पर क्रोध में भरे हुए यमराज, अन्तक और भयङ्कर पराक्रम दिखाने वाले मृत्यु का भी शासन नहीं चलता है।

योगी योगबल द्वारा अपने हजारों रूप बना सकता है और उन सबके द्वारा इस पृथ्वी पर विचरण कर सकता है।

इस प्रकार योग के तेज व योग के बल, सामर्थ्य व शक्ति के अनेकों प्रसङ्ग व कथाएं हमारे भारतीय वाङ्मय में प्राप्त होती है। इससे स्पष्ट है कि विना योग के कोई प्राणी यहाँ तक कि देवता भी महान् कार्य करने में समर्थ नहीं होते। योग में अलौकिक, दिव्य व अवर्णनीय शक्ति व तेज होता है। योग के द्वारा ही सभी कष्टों दुःखों से मुक्ति सम्भव है। योग के द्वारा ही ज्ञान व भक्ति सम्भव है और अन्त में योग के द्वारा परमसुख, परमशान्ति, परमलाभ अर्थात् आत्मतत्त्व की प्राप्ति सम्भव है। आत्मा व परमात्मा में ऐक्य की अनुभूति ही योग का मुख्य साध्य व लक्ष्य है।

ॐ

# प्रसिद्ध योगी

1. लांगली
2. लम्बोदर
3. लम्बकेशक
4. लम्ब
5. गर्ग
6. गोरखनाथ
7. गोपन
8. अट्टहास
9. अन्तरिक्ष
10. औडुलोमि
11. आसुरि
12. आविर्होत्र
13. आदिनाथ
14. आंवट्य
15. आश्मरथ्य
16. अपान्तरतमा
17. असित
18. अत्रि
19. अंगिरा
20. नारद
21. जिनेन्द्रदेव
22. जटामाली
23. जैगीषव्य
24. जैमिनी
25. जड़भरत
26. जनक
27. तुकाराम
28. तपोनिधि
29. चमस
30. च्यवन
31. वलबन्धु
32. वाल्मीकि
33. वाल्कल
34. वामदेव
35. वार्षगण्य
36. वसिष्ठ
37. व्यास
38. द्रुमिल
39. देवल
40. देवसद
41. देवहूति
42. दुर्वासा
43. दधिवाहन
44. दधीचि

45. दण्डनाथ
46. दण्डी
47. उलूक
48. उग्र
49. उतथ्य
50. उडदयनाथ
51. सूर्य
52. सनन्दन
53. सन्तोषनाथ
54. सनातन
55. सनत्कुमार
56. सत्यनाथ
57. सुतार
58. सुवाहन
59. सुहोत्र
60. सुबालक
61. सर्वज्ञ
62. स्वात्माराम
63. साध्य
64. सहिष्णु
65. ज्ञानेश्वर
66. प्रबुद्ध
67. प्लक्ष
68. पुलस्त्य
69. पराशर
70. पतञ्जलि
71. पंचशिखाचार्य
72. भवनाथ
73. भार्गव
74. भीष्म
75. हारीत
76. हरि
77. निरामित्र
78. विन्धवासी
79. विश्वामित्र
80. पिप्पलाइन
81. हिरण्यगर्भ
82. शिखण्डभृत
83. मनु
84. मेघवाह
85. मेघ
86. मत्स्येन्द्रनाथ
87. मुण्डीश्वर
88. मदन
89. मार्कण्डेय
90. मरीचि
91. महाकाय
92. भृगु
93. कूर्मनाथ
94. केतुमान
95. कुणिबाहु
96. कुणि
97. कुण्डकर्ण
98. करभाजन

99. कवि
100. कपिल
101. कश्यप
102. बृहद्रथ
103. बृहस्पति
104. इक्ष्वाकु
105. श्वेताश्व
106. श्वेत
107. शूली
108. शतरूप
109. शुक
110. ऋचीक
111. ऋभु
112. याज्ञवल्क्य
113. ध्रुव
114. एकनाथ
115. महर्षिरमण
116. भोलानाथ
117. विशुद्धानन्द
118. आर्षिषेण
119. उसना
120. सुलभा
121. असमंजस
122. आश्वलायन
123. युधिष्ठिर

ॐ

# गीता और योग

श्रीमद्भगवद्गीता योगशास्त्र का अप्रतिम ग्रन्थ है। इसके उपदेष्टा योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं। तस्माद्योगी भवार्जुन 6/46 कह कर श्रीकृष्ण ने योगी की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। गीता में श्रीकृष्ण को महायोगेश्वर (11/9) कहा गया है। गीता में योग शब्द 48 बार, युक्त शब्द 35 बार व योगी शब्द 27 बार आया है। गीता सर्वसुलभ लोकोन्मुख विश्वग्रन्थ है। यह वेदों की शिक्षाओं का सार संग्रह है। गीता मानवमन में उपजने वाली सभी समस्याओं, हृदय की दुर्वलताओं, चिन्ताओं, शंकाओं, जिज्ञासाओं एवं द्वन्द्वों का सम्यक् एवं युक्तियुक्त समाधान प्रस्तुत करती है। इसमें उस सहज सत्य की सरल प्रस्तुति है जो मानव जीवन की समस्याओं का अन्त कर सके। जीवन की सारी जटिलताओं एवं संशय की अभिव्यक्ति का माध्यम मोहग्रस्त कुन्तीपुत्र अर्जुन है, जो कि धर्म संकट की गम्भीर अवस्था में अवसाद युक्त किंकर्तव्यविमूढ़ मानव का प्रतिनिधित्व करता है और उसका समाधान प्रस्तुत करने वाले हैं—अर्जुन के मित्र, पथप्रदर्शक और गुरु योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के भ्रम, शोक, विषाद, द्वन्द्व एवं भय की मीमांसा करके उसका व्यावहारिक, तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक समाधान दिया है। गीता वास्तव में जीवन जीने की शैली सिखाती है। गीता देश, काल, धर्म, लिङ्ग, जाति से निरपेक्ष मानव मात्र के श्रेय एवं प्रेय का उत्स है। गीता का निष्काम कर्म योग सभी धर्म, सम्प्रदाय व जाति के मनुष्यों के लिए अनुकरणीय है। यद्यपि गीता को समझने के लिए आस्तिक्य बुद्धि का होना आवश्यक है। भगवद्गीता का ध्येय व्यक्ति की परम उन्नति है। शंकराचार्य ने गीता को गीताशास्त्र कहा है, जबकि तिलक ने कर्मयोगशास्त्र और महात्मा गाँधी ने इसे अनासक्ति योग का ग्रन्थ कहा है। गीता एक पूर्ण व सार्वभौम शास्त्र है। वस्तुतः यह ब्रह्मविद्या का ग्रन्थ होते हुए भी योगशास्त्र है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य योग ही है। इसके सभी अध्यायों के अन्त में (पुष्पिका में) इसे योगशास्त्र कहा गया है। उदाहरण स्वरूप प्रथम अध्याय की पुष्पिका द्रष्टव्य है—

**ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे**

**श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोध्यायः॥**

इसके प्रत्येक शब्द महत्त्वपूर्ण व विचार्य हैं।

1. **ॐ तत्सत्** - ये भगवान के तीन नाम हैं। गीता 17/23
2. **श्रीमद्भगवद्गीतासु** - श्रीमता भगवताश्रीकृष्णेन गीता अर्थात् श्रीयुक्त, भगयुक्त श्रीकृष्ण द्वारा गायी गई।
3. **उपनिषत्सु** - गीता उपनिषद् स्वरूप है, क्योंकि उपनिषदों का सार गीता में है।
4. **ब्रह्मविद्या** - गीता में ब्रह्म को जानने का साधन व युक्ति वर्णित होने से वह ब्रह्मविद्या है।
5. **योगशास्त्र** – 'योगात् संजायते ज्ञानम्' इस उक्ति के अनुसार गीता में अर्जुन को ज्ञान देने व उसका अज्ञान दूर करने के लिए भक्तियोग, ज्ञानयोग व कर्मयोग आदि योगों को माध्यम बनाया गया है।
6. **श्रीकृष्णार्जुनसंवादे** - गीता श्रीकृष्ण व अर्जुन के संवाद के रूप में है।
7. **अर्जुनविषादयोगो** - गीता का पहला अध्याय अर्जुन के मन में उठे हुए विषाद व मोह का वर्णन करता है।

गीता में अध्यायों के नाम भिन्न-भिन्न टीकाओं में भिन्न-भिन्न पाए जाते हैं।

गीता में कुल 18 अध्याय व 699 श्लोक हैं। उपनिषदों की परम्परा रही है कि अन्तिम श्लोक को दो बार पढ़ा जाता है, इस प्रकार गीता रूपी उपनिषद् में कुल 700 श्लोक हैं। गीता का प्रारम्भ धृतराष्ट्र की पृच्छा से होता है जो स्वयं अज्ञानान्धकार से आवृत है। उसकी यह पृच्छा संजय सम+जय से होती है जो सम बुद्धि का व जितेन्द्रिय है। गीता के अन्त में भी संजय द्वारा समापन होता है।

गीता में श्रीकृष्ण व अर्जुन के बीच का मुख्य संवाद अध्याय 02 के श्लोक ग्यारह में अर्जुन के शोच (शोक, चिन्ता) से प्रारम्भ हुआ है और उसका समाधान (अन्त) श्रीकृष्ण ने अध्याय अठारह के श्लोक छाछठ में मा शुचः (अर्थात् शोक व चिन्ता मत करो) से हुआ है।

गीता का प्रधान वाक्य निम्नश्लोक को कहा जा सकता है—

**मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।**
**अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥** 18/58

अर्थात् हे अर्जुन तुम मुझमें चित्त को एकनिष्ठ कर मेरी कृपा से सभी विघ्नों व बाधाओं को पार कर जाएगा और यदि अहंकार के कारण तुम मेरी बात नही सुनोगे (मानोगे) तो तेरा विनाश (पतन) हो जाएगा।

गीता में भगवान् ने भक्त के चार प्रकार बताए हैं—

1. आर्त 2. जिज्ञासु 3. अर्थार्थी 4. ज्ञानी

भगवान् को ज्ञानी भक्त सर्वाधिक प्रिय है। अव्यभिचारिणी भक्ति (अनन्य भक्ति) को श्रीकृष्ण ने 13/10 में ज्ञान घोषित किया है। इस प्रकार विना अव्यभिचारिणी (श्रीकृष्ण में एक निष्ठ) भक्ति के व्यक्ति ज्ञानी नहीं हो सकता। क्योंकि शास्त्रों में परमात्मा विषयक ज्ञान को ज्ञान कहा है, शेष को अज्ञान। गीता ज्ञान और भक्ति में भेद नहीं मानती। गीता के ज्ञान में भी भक्ति का समन्वय अभीष्ट है।

स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ने 'श्रीगीतारसरत्नाकर' में लिखा है कि मै गीता को ज्ञानयोग, भक्तियोग व कर्मयोग के रूप में नहीं परिभाषित करता हूँ, अपितु मै इसे बुद्धियोग का ग्रन्थ कहता हूँ। गीता उसी व्यक्ति के लिए है जो पूर्ण रूप से सतर्क हो, चैतन्य हो व जिज्ञासु हो।

गीता 10/10 में श्रीकृष्ण ने कहा भी है कि जो लोग मेरी प्रीतिपूर्वक भजन करते हुए मुझसे सतत युक्त हैं उन्हे मै बुद्धियोग देता हूँ, जिसके द्वारा वे मुझे प्राप्त होते हैं—

**ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥** आगे भी
**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते॥** 2/50

अर्थात् बुद्धियोगी पाप व पुण्य से मुक्त रहता है और वह फलाकाङ्क्षी नहीं होता है, अतएव वह कर्मफल का भोक्ता न बनने से मुझे प्राप्त होता है। बुद्धियोग मनुष्य को पाप व पुण्य दोनों से परे ले जाता है।

योग प्राप्ति में मोह बाधक होता है। योग की प्राप्ति साधना सापेक्ष है।

गीता में जिन योगों का उल्लेख प्रसङ्ग विशेषों में हुआ है वे हैं—

1. बुद्धियोग 10/10
2. समत्वयोग 2/48
3. ज्ञानयोग 3/13

4. कर्मयोग 5/2
5. दैवयज्ञयोग 4/25
6. ध्यानयोग 18/52
7. आत्मयोग 10/58
8. सततयोग 12/9
9. अभ्यासयोग 8/8
10. ब्रह्मयोग 5/21
11. संन्यासयोग 9/28
12. दुःखसंयोगवियोगयोग 6/23
13. नित्याभियोग 9/22
14. ऐश्वरयोग 9/5
15. आत्मसंयमयोग 4/27
16. यज्ञयोग 4/28
17. भक्तियोग 14/26
18. सांख्ययोग 5/5
19. विभूतियोग 10/7
20. अविकम्पयोग 10/7

भक्तियोग की पराकाष्ठा गीता के श्लोक संख्या 9/35 में मिलती है। यह श्लोक गीता के विल्कुल मध्य में है।

**"मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे"**

श्रीकृष्ण अपने में एकनिष्ठ भक्त को परमात्मा की प्राप्ति की गारंटी देते हैं। श्रीकृष्ण इसमें शपथ खाकर व सत्य की दुहाई देकर अपनी बात को कहते हैं। कुछ विद्वानों ने गीता के प्रथम छः अध्यायों में कर्मनिष्ठा, द्वितीय छः अध्यायों में भक्तिनिष्ठा और अन्तिम छः अध्यायों में ज्ञाननिष्ठा मुख्य प्रतिपाद्य रूप से माना है।

गीता में सांख्य व योग की अभिन्नता श्रीकृष्ण ने स्वीकार की है। दोनों की निष्ठाओं का एक ही फल निःश्रेयस् है।

**सांख्ययोगौ पृथग्बाला प्रवदन्ति न पण्डिताः।** 5/4

**एकं साख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति** 5/5

महाभारत मोक्षधर्म पर्व 307/44 में सांख्य व योग को एक ही कहा गया है—

**यदेव शास्त्रं सांख्योक्तं योगदर्शनमेव तत्॥**

ब्रह्मपुराण 136/44 में भी सांख्य व योग की एकता (अभेद) प्रतिपादित है।

इस प्रसङ्ग में 'गीतारहस्य' में लोकमान्य तिलक का यह कथन अवधेय है—

> "इसलिए यह कहना पड़ता है कि सांख्य और योग शब्दों का जो प्राचीन और पारिभाषिक अर्थ (**सांख्यं निवृत्ति योगः प्रवृत्तिः**) नारायणीय धर्म में दिया गया है, वही अर्थ गीता में भी विवक्षित है। यदि इसमें किसी को शंका हो तो गीता में दी हुई इस व्याख्या '**समत्वं योग उच्यते**' या '**योगः कर्मसु कौशलम्**' तथा उपर्युक्त '**कर्मयोगेन योगिनाम्**' इत्यादि गीता के वचनों से उस शंका का समाधान हो सकता है। इसलिए अब यह निर्विवाद सिद्ध है कि गीता में योग शब्द प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् कर्मयोग के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। वैदिक धर्मग्रन्थों में कौन कहे, यह योग पालि और संस्कृत भाषाओं के बौद्ध धर्मग्रन्थों में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त है।"

गीता में निष्काम कर्म के लिए चित्त की शुद्धि पर बल दिया गया है। यज्ञ, दान, तपकर्म सदैव चित्तशुद्धि के कारण होते हैं। उनसे निष्काम बुद्धि पैदा होती है और बढ़ती है। जब परमेश्वर को अर्पित कर सभी कर्म निष्काम बुद्धि से किया जायेगा तो वह कर्म यज्ञ हो जाएगा। फिर जो यज्ञ के लिए कर्म किया जाएगा, उससे बन्धन नहीं होगा। निष्काम कर्मयोग में कर्म ब्रह्मकर्म हो जाता है। गीता कर्म का संन्यास नहीं अपितु कर्म में संन्यास का उपदेश देती है।

गीता उस कर्म को करने की प्रेरणा देती है जिस कर्म के विषय में गीता कहती है कि जिसको जानकर भक्त अशुभ अर्थात् कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है।

**तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्**

—गीता 4/16

फलाकांक्षी को गीता में कृपण कहा गया है—

**कृपणाः फलहेतवः** 2/49

इस प्रकार गीता ऋत एवं सत्य का प्रतिपादक ग्रन्थरत्न है। गीता में कर्म चित्तशुद्धि का साधन है, मोक्ष का मार्ग हैं। गीता समष्टि व व्यष्टि का अद्‌भुत सामंजस्य करती है। गीता के एक एक श्लोक असीम ऊर्जा, ज्ञान से भरे हुए हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गीता में कर्म, उपासना (भक्ति) व ज्ञान का पूर्ण सामञ्जस्य है। यही गीता का प्रतिपाद्य है। बुद्धियोग भी उपरोक्त तीनों की तरह निःश्रेयस् प्राप्ति का हेतु है। सब कुछ भगवान् को अर्पण करने की भावना विश्वकल्याण की अनूठी भावना है। समर्पण गीता का केन्द्रबिन्दु है। सब कुछ अर्पण करने की भावना के मूल में अनासक्ति का भाव होता है। अनासक्ति के लिए ज्ञान आवश्यक है, ज्ञान के लिए युक्तमन व शुद्धचित्त का होना अपरिहार्य है और वह मिलेगा निष्काम कर्म से।

**"योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये"** 5/11

जब ज्ञान प्राप्त हो जाएगा तो मुक्ति सद्यः प्राप्त हो जाएगी। इसीलिए श्रीकृष्ण ने ज्ञान को परम पवित्र घोषित किया है—

**न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते** 4/38

और भी—

**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्** 7/18, **ज्ञानवान्मां प्रपद्यते** 7/19

## गीता में योगी का लक्षण

गीता का यह उपदेश है कि अध्यात्मपथ में आत्मोत्सर्ग का सर्वातिशायर महत्त्व है। गीता के उपदेष्टा भगवान् श्रीकृष्ण महायोगेश्वर हैं।

गीता के अनेक श्लोको में योगी के लक्षण या गुण दिये गए हैं। उनमें से प्रमुख श्लोक इस प्रकार हैं—

1. **श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।**
   **समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥** गीता 2/53

जब अनेक प्रकार वेदों और उपनिषदों से भ्रमित (विक्षिप्त) तुम्हारी बुद्धि निश्चल होकर समाधि में स्थिर होगी, तब तुम्हे योग प्राप्त होगा।

2. **प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।**
**आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥** गीता 2/55

जब कोई मनोगत (मन में स्थित) सभी कामनाओं को छोड़ देता है और अपनी आत्मा से स्वयं ही संतुष्ट हो जाता है, तब वह स्थितप्रज्ञ (ज्ञानी) कहा जाता है।

3. **दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।**
**वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥** गीता 2/56

दुःखों में अनुद्विग्न (न प्रक्षुभित) मन वाला और सुखों में निःस्पृह रहने वाला तथा राग, भय व क्रोध से मुक्त हो जाने वाला स्थितबुद्धि संन्यासी कहा जाता है।

4. **यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।**
**इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥** गीता 2/58

जैसे कछुआ अपने अङ्ग सिकोड़ लेता है उसी प्रकार जब योगी भी अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से पूरी तरह समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि प्रतिष्ठित हो जाती है।

5. **गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।**
**यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥** गीता 4/23

निवृत्त आसक्ति वाले, धर्म-अधर्म आदि बन्धनों से मुक्त, ज्ञान में स्थित चित्त वाले, यज्ञ के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के समस्त कर्म भली भाँति विलीन हो जाते हैं।

6. **ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।**
**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥** गीता 5/3

उसे नित्य संन्यासी जानना चाहिए जो न किसी से द्वेष करता है और आकांक्षा विहीन है। जो स्त्री पुरुष के द्वन्द्व से रहित है, वह आसानी से बन्धन मुक्त हो जाता है।

7. **यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।**
**विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः॥** गीता 5/28

जिसकी मन, बुद्धि व इन्द्रियाँ वश में हैं-ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित है, वह सदा मुक्त ही है।

8. **अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।**

**स.संन्यासी च योगी च न निराग्निर्न चाक्रियः॥** गीता 6/1

जो कर्म फल का आश्रय न लेकर करणीय कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है। केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है और केवल क्रियाओं का त्यागी योगी नहीं है।

9. **ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।**

**युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥** गीता 6/8

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जो कूटस्थ, जितेन्द्रिय है और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण एक समान है, वह योगी युक्त कहा जाता है।

10. **सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।**

**साधुष्वपि च पापेषु समबुद्विर्विशिष्यते॥** गीता 6/9

सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धु-बान्धवो में, साधु पुरुषों में और पापियों में भी समान भाव रखने वाला श्रेष्ठ है।

11. **प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।**

**मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥** गीता 6/14

ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित, प्रसन्न व शान्त आत्मा वाला, निर्भय होकर जो मुझ में संयमित होकर अपना चित्त लगाता है, वह मेरे में परायण होकर युक्त होता है।

12. **युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**

**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥** गीता 6/17

समुचित आहार-विहार वाला, कर्मों में यथोचित प्रयत्न करने वाला और यथायोग्य सोने व जागने वाला ही दुःखहीन योगी होता है।

13. **यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।**

**निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा॥** गीता 6/18

जब वह संयमित चित्त का होकर अपनी आत्मा में स्थित हो जाता है और सभी कामनाओं से निस्पृह हो जाता है, तब वह योगयुक्त कहा जाता है।

14. **यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।**

**यत्र चैवात्मनाऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥** गीता 6/20

योगाभ्यास द्वारा जिस अवस्था में निरुद्ध चित्त का उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में परमात्मा के ध्यान से शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि द्वारा आत्मा को साक्षात् करता हुआ आत्मा में ही संतुष्ट रहता है।

15. **प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।**

**उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥** गीता 6/27

जिसका मन भलीभाँति शान्त है, जो पाप से रहित है, जिनका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम सुख प्राप्त होता है।

16. **सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**

**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥** गीता 6/29

युक्तात्मा होकर योगी सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को तथा अपनी आत्मा में सभी प्राणियों को देखता है और सर्वत्र समदर्शी होता है।

17. **सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।**

**सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥** गीता 6/31

जो पुरुष एकत्व भाव में स्थित हुआ सबमें मुझको भजता है, वह योगी सब प्रकार से बर्ताव (व्यहार) करता हुआ भी मुझमें ही बर्ताव करता है।

18. **आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**

**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥** गीता 6/32

जो योगी अपनी तरह सम्पूर्ण भूतों में समान रूप से देखता है और सुख या दुःख को भी सम भाव से देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

19. **असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।**

**नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति॥** गीता 18/49

जो अनासक्त तथा आत्मसंयमी है, विगतस्पृहा वाला है, वह संन्यास के अभ्यास के द्वारा कर्मफल से मुक्ति की परमसिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

## गीता में शरणागत भक्त को अभयदान

भगवान् की शरणागति होने, भगवत् शरणापन्न होने पर भगवान् श्रीकृष्ण भक्त को हर प्रकार के परमसिद्धि का आश्वासन देते हैं। भक्त के सारे योग-क्षेम को वहन करने का उत्तरदायित्व वह अपने ऊपर ले लेते हैं। ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति सरल व सुगम साधन है। नीचे दिए गए श्लोकों में भक्ति की श्रेष्ठता, भक्त की सर्वप्रियता एवं भक्त की मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है—

**उदाहरणार्थ द्रष्टव्य श्लोक :-**

1. ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
   मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ गीता 4/11
2. न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
   इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥ गीता 4/14
3. भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
   सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति। गीता 5/29
4. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
   तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ गीता 6/30
5. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
   मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। गीता 7/14
6. अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
   यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ गीता 8/5
7. तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
   मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥ गीता 8/7
8. अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
   तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ गीता 8/14
9. मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
   नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः॥ गीता 8/15
10. आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते। गीता 8/16

11. अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि। गीता 9/3

12. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।। गीता 9/14

13. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। गीता 9/22

14. अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।। गीता 9/24

15. यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। गीता 9/25

16. शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।। गीता 9/28

17. समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् गीता 9/29

18. अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। गीता 9/30

19. क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। गीता 9/31

20. मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। गीता 9/32

21. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।। गीता 9/34

22. यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। गीता 10/3

23. अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। गीता 10/8

24. तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ गीता 10/10

25. मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥ गीता 11/55

26. तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ गीता 12/7

27. मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥ गीता 12/8

28. अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि॥ गीता 12/10

29. ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥ गीता 12/20

30. मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥ गीता 18/58

ॐ

# योग सिद्धियाँ

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण ने उद्धव को उपदेश देते हुए कहा है कि धारणायोगपारंगत योगियों में अठारह प्रकार की सिद्धियाँ बताई गई हैं। इनमें आठ सिद्धियाँ तो प्रधान रूप से मुझमें ही रहती हैं और दस सत्त्व गुण के विकास से लोगों को मिलती हैं। महर्षि पतञ्जलि इन सिद्धियों को योग में विघ्न स्वरूप मानते हैं। भागवत 11/15/33 में भी इन्हें अन्तराय (विघ्न) कहा गया है।

**अन्तरायान् वदन्त्येता युजतो योगमुत्तमम्।**
**मया समद्यमानस्य कालक्षपण हेतवः॥**

महाभारत अनुशासन पर्व उमामहेश्वरसंवाद में कहा गया है कि योग के इन आठ गुणों से दिव्य एश्वर्य की प्राप्ति होती है। योगी इनको पाकर जगत् पर शासन करने में समर्थ हो देवताओं से भी बढ़ जाते हैं। योगी मन के द्वारा ज्योतिर्मय परमेश्वर का दर्शन करने अणिमा आदि आठ एश्वर्यों से युक्त हो देवताओं के लिए भी स्पृहणीय परमपद प्राप्त कर लेता है—

**दृष्ट्वा तदा मनो ज्योतिरैश्वर्याष्टगुणैर्युतः।**
**प्राप्नोति परमं स्थानं स्पृहणीयं सुरैरपि॥**

मार्कण्डेयपुराण 37/31 में इन अष्टविध ऐश्वरिकगुणों को निर्वाणप्रद कहा गया है। ये गुण मुक्ति की सूचना कर देते हैं अर्थात् इन सब गुणों के प्रकाशित होने पर ही जानना चाहिए कि योगी शीघ्र ही मुक्तिलाभ करेगा। अब उसको जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ेगा। उसे क्षय और वृद्धि को प्राप्त नहीं होना पड़ेगा। विष्णुधर्मोत्तरपुराणान्तर्गत शंकरगीता 7/19 में कहा गया है कि ये सिद्धियाँ केशव की अराधना से प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं है।

महाभारत अनुशासनपर्व में भगवान् शंकर ने इन आठ गुणों को पाने वाले योगी को देवताओं से भी समर्थ बताया है—

**अणिमा महिमा चैव प्राप्तिः प्राकाम्यमेव हि।**
**ईशित्वं च वशित्वं च यत्र कामावसायिता॥**

एतानष्टौ गुणान् प्राप्य कथंचिद् योगिनां वराः।
ईशाः सर्वस्य लोकस्य देवानप्यतिरोरते॥

1. **अणिमा—अणोः भावः इति अणिमा।** अणु+इमनिच् अर्थात् अणुत्व। सबसे छोटा रूप पा लेने की शक्ति। यह सिद्धि उस साधक को मिलती है जो केवल ईश्वर की उपासना करता है और अपने मन को तदाकार बना कर उसी में लगा देता है। वायुपुराण में इसे प्रथम योगबल कहा गया है। अणिमा ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला योगी तीनों लोकों में प्राणियों द्वारा दुष्प्राप्य को भी प्राप्त कर लेता है।

2. **महिमा—महतो भावः महिमा।** महत्+इमनिच्। शरीर को विशाल कर लेने की शक्ति। यह सिद्धि उस साधक को प्राप्त होती है, जो ईश्वर के रूप में अपने मन को तन्मय कर देता है। महिमा द्वारा एक स्थान में रह कर भी योगी तीनों लोकों की सभी वस्तुओं से संयुक्त हो सकता है।

3. **लघिमा—लघोर्भावः इति लघिमा।** लघु+इमनिच्। शरीर को हल्का (लघु) कर लेने की शक्ति। यह सिद्धि उस योगी को प्राप्त होती है, जो चारों भूतों के परमाणुओं को मेरा रूप समझकर चित्त को तदाकार कर देता है। लघिमा द्वारा योगी सब जीवों के बीच शीघ्रता से चले जाते हैं। वे आकाश में उड़ सकते हैं, पानी में तैर सकते हैं।

4. **प्राप्ति**—मनोवाञ्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लेने की क्षमता। यह इन्द्रियों की सिद्धि है। यह सिद्धि उसे प्राप्त होती है, जो सात्त्विक अहंकार को परमात्मा का ही रूप समझकर उसी में चित्त की धारणा करता है।

5. **प्राकाम्य**—प्रकाम+ष्यञ्। जिसके द्वारा व्यापित्वशक्ति उत्पन्न हो उसका नाम प्राकाम्य है। दृष्टि व श्रवण शक्ति बढ़ा लेना, लौकिक व पारलौकिक पदार्थों का इच्छानुसार अनुभव कर लेना। जो महत्तत्त्वाभिमानी सूत्रात्मा में अपना चित्त स्थिर करता है, यह सिद्धि उस साधक को मिलती है। प्राकाम्य का शब्दार्थ है इच्छा का अनभिघात।

6. **ईशिता—ईशिनो भावः ईशिता।** ईशिन्+तल्+टाप्। स्वामित्व की प्राप्ति। माया और उसके कार्यों का इच्छानुसार संचालन करना। जो त्रिगुणमयी माया के स्वामी मेरे काल स्वरूप विश्व रूप की धारणा करता है उसे यह सिद्धि प्राप्त होती है। ईशिता के द्वारा योगी सब का ईश्वर हो जाता है। उसे यह अनुभूति होती है कि मै इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियामक हूँ, मैं ही स्थूल सूक्ष्म सभी वस्तुओं को नियमित रखता हूँ।

**7. वशिता—वशिनः भावः वशिता।** वशिन्+तल्+टाप्। संकल्प के अनुसार सिद्धि।

विषयों में रहकर भी उसमें आसक्त न होना। जिसके प्रभाव से योगी के सब वशीभूत हो जाते हैं, उसका नाम वशित्व है। वशित्व नामक विभूति में योगी को यह प्रत्यक्ष अनुभूति होती है कि भूत और भौतिक रूप से सभी मेरी सत्ता से सत्तावान् हैं।

**8. कामवसायित्व**—साधक जिस-जिस सुख की कामना करे उसकी सीमा तक पहुँच जाना। इस सिद्धि में योगी की सभी कामनाएँ उसके वशीभूत हो जाती हैं। जिसके द्वारा अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ गमन हो और इच्छानुसार सब कार्य साधन हो, उस ऐश्वर्य का नाम कामवसायिता है। ऐसा योगी अपने को पूर्णकाम, आप्तकाम समझता है। उसे अब कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं है।

शिवसंहिता 3/61 में कहा गया है कि योगी प्राणायाम से उपर्युक्त आठ ऐश्वर्यों को प्राप्त करके पाप-पुण्य रूप समुद्र को पारकर त्रिलोकों में विचरण करता है—

**प्राणायामेन योगीन्द्रो लब्ध्वैश्वर्याष्टकानि वै।**
**पापपुण्योदधिं तीर्त्वा त्रैलोक्यचरतामियात्॥**

ॐ

# आत्मा का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

आत्मा के बारे में आदि काल से सभी सन्तों, साधकों, ऋषियों, मुनियों एवं ज्ञानियों की जिज्ञासा रही है। आत्म दृष्टि ही समस्त विपत्तियों से बचने का एक मात्र साधन है। आत्मा के स्वरूप एवं वैशिष्ट्य का वर्णन वेदों, महाभारत, आरण्यकों, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों में विस्तार से प्राप्त होता है। विद्वानों ने आत्मा की उन्नति के लिए सात गुण ज्ञान, पवित्रता, प्रेम, शान्ति, सुख, आनन्द व शक्ति बताया है। भगवद्गीता, भागवत, योगवासिष्ठ, विवेकचूडामणि, कठोपनिषद्, शिवसंहिता, उद्धवगीता, अष्टावक्रगीता, अवधूतगीता, योगसूत्र आदि में आत्मा को सत्, अजर, अमर, शाश्वत, नित्य, चैतन्य, निष्कल, स्थिर, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त व एक बताया गया है। उपरोक्त ग्रन्थों के आधार पर आत्मा का स्वरूप व विशिष्टताएं नीचे अंकित की जाती हैं :—

कठोपनिषद् में कहा गया है कि इन्द्रियों से शब्दादि विषय बलवान् हैं और शब्दादि विषयों से मन बलवान् है और मन से बुद्धि बलवती है और बुद्धि से आत्मा श्रेष्ठ और बलवान् है। यह आत्मा समस्त प्राणियों में रहते हुए भी माया के परदे में छिपे रहने के कारण प्रकाशित नहीं होता। किन्तु सूक्ष्मदर्शी तत्त्वज्ञानी अपनी अतिसूक्ष्म दृष्टि से इसे अनुभव कर सकते हैं।

**इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।**
**मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥** 1-3-10
**ऐष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।**
**दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥** 1-3-12

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की नित्यता, निराकारता और निर्विकारता का उपदेश देते हुए कहा है—

**अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।**
**नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥** गीता 2/24
**अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।**
**तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥** गीता 2/25

यह आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। यह आत्मा नित्य, सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन है।

यह आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य, विकाररहित कहा जाता है। इस आत्मा को उपर्युक्त प्रकार से जानकर तू शोक करने योग्य नहीं हैं।

**योऽयमात्मा स्वयंज्योतिः पञ्चकोशविलक्षणः।**
**अवस्थात्रयसाक्षी सन्निर्विकारो निरञ्जनः॥** विवेकचूडामणि 213

यह आत्मा स्वयं प्रकाश, पञ्चकोशों से विलक्षण, तीन अवस्थाओं का साक्षी, विकार रहित और अविद्या के कार्यरूप अञ्जन से रहित है।

**अवच्छिन्नो यतो नास्ति देशकालस्वरूपतः।**
**आत्मनः सर्वथा तस्मादात्मा पूर्णो भवेत्खलु॥**

शिवसंहिता 1/58

देश काल एवं स्व स्वरूप से यह आत्मा अवच्छिन्न नहीं हैं। इसलिए आत्मा सर्वथा पूर्ण तत्त्व है।

**न जायते न म्रियते चेतनः पुरुषः क्वचित्।**
**स्वप्नसंभ्रमवद्भ्रान्तमेतत्पश्यति केवलम्॥**

योगवासिष्ठ 3/55/67

चेतन पुरुष (आत्मा) न कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है। भ्रमवशाद् स्वप्न की तरह इन सब बातों का केवल अनुभव करता है।

**अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।**
**तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः॥**

कठोपनिषद् 1/2/20

आत्मा इस जीवात्मा के हृदय रूपी गुफा में अणु से भी अतिसूक्ष्म और महान् से भी अतिमहान् रूप में स्थित है। निष्काम कर्म करने वाला तथा शोक रहित कोई विरला साधक सर्वाधार परमात्मा की अनुकम्पा से उसे देख पाता है।

आत्मा की प्रमुख विशेषताएँ :—

| | | |
|---|---|---|
| 1. | सूक्ष्म | आणविक |
| 2. | अग्राह्य | जिसे ग्रहण न किया जा सके, इन्द्रियातीत |
| 3. | अदृश्य | जो दिखाई नहीं देता, अकाय |
| 4. | शुद्ध | विमल, पवित्र |

| | | |
|---|---|---|
| 5. | स्थिर | ध्रुव, अटल, अचल, निश्चल, अविचल |
| 6. | निर्लिप्त | बिना दोष के, निर्दूषित, निर्विकार |
| 7. | निःस्पृह | अकाम, बिना विषय की इच्छा वाला, इच्छारहित |
| 8. | निरुद्विग्न | जो उद्विग्न न हो |
| 9. | अव्यक्त | जो किसी इन्द्रिय द्वारा जानने योग्य न हो |
| 10. | निष्कल | बिना दोष या दाग के |
| 11. | ऋत | शाश्वत |
| 12. | सत्यरूप | जो त्रिकालाबाधित हो। |
| 13. | नित्य सिद्ध | नित्य चित्स्वरूप, अतः सिद्ध। |
| 14. | विज्ञानघन | विज्ञान स्वरूप, प्रज्ञानघन |
| 15. | असङ्ग | आसक्ति रहित, अल्पित, असंलग्न, निरवद्य |
| 16. | तेजस्वरूप | तेजस्वी |
| 17. | अरूप | जिसका कोई स्वरूप न हो, अनिरूप्य |
| 18. | सर्वेश्वर | सब का स्वामी |
| 19. | सर्वव्यापी | सर्वत्र व्याप्त, व्यापक, स्वगतादि तीन भेदों से रहित |
| 20. | प्रकाशवान | स्वयं प्रकाशित, स्वयंप्रभ, ज्योतिस्वरूप, सकृद्विभातम् स्वयंज्योतिः |
| 21. | दिव्य | अलौकिक |
| 22. | देदीप्यमान | आलोकित, प्रदीप्त, शुक्र |
| 23. | अमृत | अविनाशी, अनश्वर |
| 24. | अज | जिसका जन्म न हो, अकृत, अजन्मा |
| 25. | एक | अद्वैत, अद्वितीय, अद्वयः, द्वयरहित, निर्द्वयः, द्वैतविवर्जित |
| 26. | नित्य | त्रिकाल में जिसकी सत्ता हो |
| 27. | निरंजन | निष्कलंक, निर्दोष, सम्पूर्ण प्रपञ्च से रहित |
| 28. | शाश्वत | सर्वदा एक रूप में स्थित, कूटस्थ, शश्वद्भवः शाश्वतः। |
| 29. | स्वप्रकाशित | (स्वराट्) जिसको प्रकाशित होने के लिए किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता न हो, स्वदृक्, स्फुटप्रभ |
| 30. | सभी कर्मों का उक्थ | सबका उपादान कारण |

| | | |
|---|---|---|
| 31. | अचिन्त्य | जो मन का विषय न हो |
| 32. | अविकार्य | विकार रहित, अविकारी, अविक्रिय, विक्रियारहित |
| 33. | अच्छेद्य | जिसका उच्छेदन न हो |
| 34. | सर्वगतः | सर्वत्र गति वाला, समस्त भूतों में अनुस्यूत, पर्यग |
| 35. | स्थाणु | अटल, स्थिर |
| 36. | सनातन | निरन्तर, प्राचीन |
| 37. | अक्लेद्य | जिसे गीला न किया जा सके |
| 38. | अशोष्य | जिसे सुखाया न जा सके |
| 39. | पुराण | चिरकालीन, पुरातन, प्राचीन, अनवः |
| 40. | अप्रमेय | अमाप, माप रहित, अन्तहीन, अनन्त, जिसे प्रमाण द्वारा न जाना जः सके। |
| 41. | अदाह्य | जिसको जलाया न जा सके |
| 42. | बुद्ध | प्रकाशमान, ज्ञानी, परमज्ञानमय |
| 43. | सम | जो विषम न हो, सबके प्रति समान रहने वाला |
| 44. | अवध्य | जिसका बध न किया जा सके |
| 45. | अकर्ता | जो कर्ता नहीं है |
| 46. | अविनाशी | नाश रहित |
| 47. | विज्ञानमय | विज्ञानवान् विशिष्ट ज्ञानरूप |
| 48. | हृदयाकाशशायी | हृदय रूपी आकाश में रहने वाला |
| 49. | अभय | भय रहित |
| 50. | मुक्त | बन्धन रहित, मुक्त स्वभाव |
| 51. | विरज | निर्मल, रजोगुणहीन |
| 52. | अन्तर्यामी | अन्तः स्थित |
| 53. | विभु | सर्वोपरि, सर्वव्यापक |
| 54. | असंसारी | जो संसारी नहीं है। |
| 55. | साक्षी | द्रष्टा, इक्षिता, अवस्थात्रयसाक्षी |
| 56. | अक्रिय | क्रियारहित, निष्क्रिय |
| 57. | शीतल | सुखरूप |

| | | |
|---|---|---|
| 58. | निर्भर | सच्चिदानन्दघनरूप |
| 59. | अगाधबुद्धि | जिसका कोई पार न पा सके। |
| 60. | शान्त | प्रवृत्तिनिवृत्ति रहित |
| 61. | श्रोतव्य | सुनने योग्य |
| 62. | मन्तव्य | मनन करने योग्य |
| 63. | द्रष्टव्य | देखने योग्य |
| 64. | निदिध्यासितव्य | ध्यान करने योग्य, अनुभव करने योग्य, ध्येय |
| 65. | अखण्ड | जिसका खण्ड न हो। सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्य |
| 66. | परिपूर्ण | पूर्ण, पूर्णकाम |
| 67. | निर्विकल्प | संकल्प रहित |
| 68. | निरन्तर | सातत्य |
| 69. | निर्व्याकुल | जो व्याकुल नहीं होता |
| 70. | समरस | समान, एक रस |
| 71. | निरालम्ब | बिना आलम्बन के |
| 72. | उपद्रष्टा | साक्षी स्वरूप |
| 73. | अनुमन्ता | अनुमति दाता, सम्मति दाता, शास्ता |
| 74. | निर्गुण | गुणरहित |
| 75. | प्रकृति से परे | प्रकृति के तीनों गुणों से परे |
| 76. | जन्म वृद्धि आदि से रहित | आद्यन्तरहित, अनाद्यन्त, असृष्ट, स्वयम्भू |
| 77. | अव्यय | व्यय रहित, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, अविनाशी, अपक्षयरूप विकार से रहित |
| 78. | सुखात्मक | सुख स्वरूप |
| 79. | निरस्तसर्वातिशय | सम्पूर्ण विशेषणों से रहित |
| 80. | अपाप्मा | पापरहित, विपाप्मा, अपापविद्धम् |
| 81. | विजरो | जरारहित |
| 82. | विशोक | शोकरहित |
| 83. | अपिपास | तृषारहित |
| 84. | सत्यकाम | सत्यकाम से युक्त, सत्यप्रेमी |

| | | |
|---|---|---|
| 85. | सत्यसंकल्प | सत्यसंकल्प से युक्त |
| 86. | प्रत्ययसारं | अनुभवगम्य |
| 87. | प्रपञ्चोपशम | सभी प्रपञ्चों का लय स्थान |
| 88. | अव्यपदेश्य | वाणी द्वारा अकथनीय |
| 89. | शिव | मङ्गलमय, कल्याणरूप |
| 90. | अक्षय | क्षयरहित |
| 91. | अलिङ्ग | लिङ्गरहित |
| 92. | नित्यपूत | सदैव पवित्र |
| 93. | वरेण्य | वरण करने योग्य |
| 94. | अविषय | विषय रहित |
| 95. | अनल्प | अल्प रहित |
| 96. | निराकार | अवयव रहित |
| 97. | अनाश्रयम् | किसी का आश्रय न लेने वाला |
| 98. | अनीदृश | अतुलनीय |
| 99. | अनाधेय | किसी आधार के ऊपर न रहने वाला |
| 100. | सत्समृद्ध | सत्त्वगुण की अधिकता वाला |
| 101. | कल्पनापथवर्जित | जिसकी कल्पना न की जा सके। |
| 102. | स्वतन्त्र | जो स्वतन्त्र रूप से निवास करता है। |
| 103. | अनन्त | अन्तहीन |
| 104. | ब्रह्मरूप | जो स्वयं ब्रह्मरूप है। |
| 105. | प्राण | जीवन प्रदान करने वाला |
| 106. | निर्ममत्व | ममता से रहित |
| 107. | महत्तर | महान् से भी महान् |
| 108. | सेव्या | सेवनीय |
| 109. | अपूर्व | पूर्वापर रहित |
| 110. | अनादि | आदि रहित, स्वयम्भू |
| 111. | वशी | सबको वश में करने वाला |
| 112. | अतर्क्य | तर्क से परे |

| | |
|---|---|
| 113. आश्चर्य रूप | आश्चर्य स्वरूप |
| 114. अकाम | कामना विहीन |
| 115. विरक्त | असङ्ग |
| 116. धीर | धैर्यवान |
| 117. सर्वगन्ध | सभी गन्धों से युक्त |
| 118. सर्वरस | सर्वरसयुक्त |
| 119. अनेजत् | निष्कम्प |
| 120. अस्नाविर | नाड़ी विहीन |
| 121. मनीषी | मन का नियामक |
| 122. सर्वाधिष्ठान | सबका अधिष्ठान |

ॐ

# योग व अध्यात्म सुभाषितशतक

1. साष्टाङ्ग प्रणाम—

दोर्भ्यां पदाभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥

स्कन्दपुराण वै.मा.मा. 10/30

हाथों से, चरणों से, घुटनों से, वक्षस्थल से, शिर से, नेत्रों से, मन और वाणी से—इन आठ अङ्गों से किया गया प्रणाम साष्टाङ्ग प्रणाम कहलाता है।

2. ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण—

येन केनचिदाच्छन्नो येन केनचिदाशितः।
यत्र क्वचन शायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

महा0शान्तिपर्व 245/12

जो किसी भी वस्तु से अपना शरीर ढक लेता है, जो किसी वस्तु से अपनी भूख मिटा लेता है, जहाँ कहीं भी सो लेता है, उसे देवता ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) कहते हैं।

3. गुण परिवर्तन के हेतु—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः॥

श्रीमद्भागवत 11/13/4

शास्त्र, जल, प्रजा, देश, समय, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र और संस्कार ये दस पदार्थ गुण परिवर्तन के कारण हैं। अर्थात् ये यदि सात्त्विक हों तो सत्त्वगुण की, राजसिक हो तो रजोगुण की और तामसिक हों तो तमोगुण की वृद्धि करते हैं।

4. समबुद्धि—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।

साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।।

श्रीमद्भगवद्गीता 6/9

सुहृद्, मित्र, अरि, (बैरी) उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य (द्वेष पात्र), बन्धु, साधु और पापी के प्रति भी जिसकी समबुद्धि होती है, वही समदर्शी कहा जाता है।

5. नारायण की कृपा से ही द्रव्य, जीव आदि की सत्ता—

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च।
यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया।।

श्रीमद्भागवत 2-10/12

नारायण की कृपा से ही द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव आदि की सत्ता है। उनके उपेक्षा कर देने पर और किसी का अस्तित्व नहीं रहता।

6. स्त्री मोह का कारण—

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादकारिणी।
स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम्।।

शृङ्गारशतक 42

स्त्री के स्मरण से ताप, देखने से उन्माद और स्पर्श से मोह (बुद्धिभ्रंश) होता है। ऐसी दशा में वह दयिता (प्रेयसी) कैसे हो सकती है।

7. शोक व हर्ष से अप्रभावित—

शोकस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।।

महाभारत शान्तिपर्व 174/40, 25/20, 330/2,
स्त्रीपर्व 2/22, वनपर्व 2/16

शोक के सहस्रों स्थान हैं, भय के भी सैकड़ों अवसर हैं परन्तु वे प्रतिदिन मूढ़ मनुष्यों पर ही प्रभाव डालते हैं, विद्वान् पर नहीं, अर्थात् विवेकी व्यक्ति शोक व भय से प्रभावित नहीं होते।

कुछ श्लोकों में भय के स्थान पर हर्ष शब्द मिलता है।

8. कामना निवृत्ति -ब्रह्म साक्षात्कार

यदा निवृत्तः सर्वस्मात् कामो योऽस्य हृदि स्थितः।
तदा भवति सत्त्वस्थस्ततो ब्रह्म समश्नुते।।

महाभारत शान्तिपर्व 66/38

मनुष्य के हृदय में जो-जो कामनाएँ स्थित हैं, उनसे जब वह निवृत्त हो जाता है, तब उसकी विशुद्ध सत्त्वगुण में स्थिति होती है और इसी समय उसे परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है।

9. कर्म फल भोग-अनिवार्य

स्वकर्मफलनिक्षेपं विधानपरिरक्षितम्।
भूतग्राममिमं कालः समन्तादपकर्षति॥

महाभारत शा0पर्व 322/11

अपने-अपने कर्मों का फल एक धरोहर के समान है, वह शास्त्र विधान के अनुसार सुरक्षित रहता है। उपयुक्त समय आने पर यह काल प्राणिसमूह को कर्मानुसार खींच ले जाता है।

10. पूर्ण ब्रह्म में अन्तःकरण लगाने वाले बिरले—

बुभुक्षुरिह संसारे मुमुक्षुरपि दृश्यते।
भोगमोक्षनिराकाङ्क्षी विरलो हि महाशयः॥

अष्टावक्रगीता 17/5

इस संसार में विषय भोग और मोक्ष की अभिलाषा करने वाले बहुत लोग दिखाई देते हैं, परन्तु भोग व मोक्ष दोनों की इच्छा न करने वाले और पूर्ण ब्रह्म में अन्तःकरण लगाने वाले कोई बिरले ही होते हैं।

11. योगियों की पण्डितों पर श्रेष्ठता—

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्राणि चैव हि।
सारस्तु योगिभिः पीतस्तक्रं पिबन्ति पण्डिताः॥

ज्ञानसंकलिनी तन्त्र

चारों वेदों तथा सभी शास्त्रों को मथ कर उसका मक्खन स्वरूप सार तो योगी खा गए हैं, उसका तक्र पण्डित (विद्वान) लोग पी रहे हैं।

12. ब्रह्माभ्यास का स्वरूप—

दृश्यासम्भवबोधेन रागद्वेषादितानवे।
रतिर्नवोदिता यासौ ब्रह्माभ्यासः स उच्यते॥

योगवासिष्ठ

दृश्य पदार्थों के असम्भव होने के बोध से जब राग-द्वेष क्षीण हो जाते हैं, तब जो नवीन स्थिति उत्पन्न होती है वह ब्रह्माभ्यास कहा जाता है।

13. ज्ञानवान् की श्रेष्ठता—

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥

मनुस्मृति 2/159

सिर के बालों के श्वेत हो जाने से ही कोई वृद्ध अर्थात् सम्मान के योग्य नहीं हो जाता। यदि कोई युवा पुरुष भी ज्ञानवान् है तो उसे वृद्ध अर्थात् सम्माननीय माना जाता है।

14. नाड़ी से शुभ विचार—

निर्गमे तु शुभा वामा प्रवेशे दक्षिणा शुभा।
चन्द्रः समः सुविज्ञेयो रविस्तु विषमः सदा॥ शिवस्वरोदय 59

बाहर जाते समय बायीं नाड़ी (इडा) शुभ होती है। लौटते या प्रवेश करते समय दाहिनी (पिङ्गला) नाड़ी शुभ कही गई है। चन्द्रमा को सदा सम और सूर्य को विषम जानना चाहिए।

15. तत्त्वों के शरीर में स्थान—

स्कन्धद्वये स्थितो वह्निर्नाभिभूले प्रभञ्जनः।
जानुदेशे क्षितिस्तोयं पादान्ते मस्तके नभः॥

शिवस्वरोदय 156

मनुष्य के शरीर के दोनों कन्धों में अग्नितत्त्व, नाभि के मूल में वायु तत्त्व, जानुदेश में पृथ्वीतत्त्व, पावों के अन्तिम भाग में जलतत्त्व और सिर में आकाशतत्त्व रहता है।

16. देह में पांच तत्त्वों का परिमाण—

पृथिव्याः पलानिपंचाशच्चत्वारिंशत्तथाम्भसः।
अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसो दश॥

शिवस्वरोदय 197

देह में पृथ्वी की मात्रा पचास पल, जल के चालीस पल, तेज के तीस पल, वायु के बीस पल और आकाश के दस पल होते हैं।

17. चिन्ता से दुख का उत्पन्न होना—

चिन्तया जायते दुःखं नान्यथेहेति निश्चयी।
तया हीनः सुखी शान्तः सर्वत्र गलितस्पृहः॥

अष्टावक्रगीता 11/5

इस संसार में चिन्ता से दुख उत्पन्न होता है, किसी अन्य कारण से नहीं। इस प्रकार निश्चय वाला चिन्ता रहित पुरुष सुख और शान्ति को प्राप्त करता है तथा उसकी सभी कामनाएँ उससे दूर हो जाती हैं।

**18. कर्म के तीन प्रकार—**

**त्रिविधो विधिकूटः स्यान्नित्यनैमित्तकाम्यतः।**
**नित्येऽकृते किल्विषं स्यात्काम्ये नैमित्तिके फलम्॥**

शिवसंहिता 1/22

कर्म को तीन प्रकार का बताया गया है — नित्य, नैमित्तिक व काम्य। नित्य कर्म न करने से पाप (प्रत्यवाय) लगता है, काम्य व नैमित्तिक कर्म करने से फल प्राप्त होता है।

सन्ध्या, तर्पण आदि नित्य कर्म हैं।

**19. फल प्राप्ति के लक्षण—**

**फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथमलक्षणम्।**
**द्वितीयं श्रद्धया युक्तं तृतीयं गुरुपूजनम्॥**
**चतुर्थं समताभावं पञ्चमेन्द्रियनिग्रहम्॥**
**षष्ठं च प्रमिताहारं सप्तमं नैव विद्यते॥**

शिवसंहिता 3/19-20

'फल प्राप्ति होगी' यह विश्वास सिद्धि का प्रथम लक्षण है। दूसरा लक्षण श्रद्धा का होना तथा तीसरा गुरु का पूजन है। चौथा लक्षण समता भाव और पाँचवा इन्द्रिय निग्रह है। संयमित आहार छठा लक्षण है। सातवाँ अन्य कोई नहीं है।

**20. योगसिद्धि के उपाय—**

**धृतिः क्षमा तपः शौचं ह्रीर्मतिर्गुरुसेवनम्।**
**सदैतानि परं योगी नियमानि समाचरेत्॥**

शिवसंहिता 3/42

धृति, क्षमा, तप, शौच, बुद्धि, लज्जा और गुरु सेवा—इन नियमों का योगी सदा आचरण करें।

**21. योग से प्राप्त शक्तियाँ—**

**जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः।**
**मयि धारयतश्चेत् उपतिष्ठन्ति सिद्धयः॥** उद्धवगीता 10/1

जितेन्द्रिय, प्राणायाम करने वाले और मेरे में ही ध्यान केन्द्रित करने वाले योगी को विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

**22. समाधि -परम योग—**

**दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।**
**सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः॥**

उद्धवगीता 18/46

दान, स्वधर्मपालन, नियम व यम का पालन, शास्त्रश्रवण, उत्कृष्ट कर्म, अच्छे संकल्प आदि से मन का नियन्त्रण होता है और मन की समाधि परम योग कहलाता है।

**23. प्रपत्ति—**

**प्रपत्तिरानुकूलस्य प्रातिकूलस्य वर्जनम्।**
**विश्वासो शरणं न्यासः कार्पण्यं इति षड्विधा॥**

नारदपञ्चरात्रभरद्वाजसंहिता 1/17

अर्थात् इष्ट के अनुकूल आचरण करना, उसके प्रतिकूल आचरण न करना, उस पर विश्वास करना, उसकी शरण में जाना, उसको अपने को अर्पण कर देना, उसके सामने दीन-हीन (अकिंचन भाव हृदय से प्रस्तुत करना) होना-यह प्रपत्ति के छः भेद हैं।

**24. स्वंय शुद्ध बुद्ध आत्मा—**

**षडङ्गयोगान्न तु नैव शुद्धं मनोविनाशान्न तु नैव शुद्धम्।**
**गुरूपदेशान्न तु नैव शुद्धं स्वयं च तत्त्वं स्वयमेव बुद्धम्॥**

अवधूतगीता 1/48

आत्मा षडङ्गयोग से शुद्ध नहीं होता। यह मनोविनाश से भी शुद्ध नहीं होता। यह गुरूपदेश से भी शुद्ध नहीं होता। यह आत्मा स्वंय से शुद्ध और बुद्ध है।

**25. सुख दुःख कर्मफल के अधीन—**

**कालः स्वभावो नियतियर्दृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।**
**संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः॥**

श्वेताश्वतरोपनिषद् 1/2

काल, स्वभाव, निश्चित कर्मफल व्यवस्था, आकस्मिक घटना, पंचमहाभूत और जीवात्मा—ये इस जगत् के कारणभूत तत्व हैं या नहीं, इस पर सदैव

चिन्तन करना चाहिए। इन सब का समुदाय भी जगत् का कारण नहीं हो सकता क्योंकि ये सभी आत्मा के अधीन हैं। आत्मा भी जगत् का कारण नहीं हो सकता क्योंकि यह सुख दुःख के कारणभूत कर्मफल व्यवस्था के अधीन है।

**26. यमः—**

**सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः।**
**यमोऽयमितिसम्प्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः॥**

अपरोक्षानुभूति 104

यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है ऐसा समझ कर इन्द्रियों को नियन्त्रित करना यम कहा गया है और इसका बार-बार अभ्यास करना चाहिए।

**27. समस्त वस्तुओं में पाँच अंश व्याप्त—**

**आस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम्।**
**आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥**

वाक्यसुधा 20

अस्तित्व, स्फुरण, प्रियता, रूप और नाम—ये पांच अंश सभी वस्तुओं में रहते हैं। इनमें से प्रथम तीन (सत्ता, चैतन्य और आनन्द) ब्रह्म रूप हैं और शेष दो (रूप व नाम) जगत्स्वरूप हैं।

**28. पंचतत्त्वों के स्वामी—**

**आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।**
**वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥**

कपिलतन्त्र

विष्णु आकाश के, सूर्य वायु के, शक्ति अग्नि की, गणेश जल (जीवन) के और शिव पृथ्वी के अधिपति हैं।

**29. पूर्ण योग की सिद्धि का साधन—**

**अभियोगात् तथाभ्यासात् तस्मिन्नेव तु निश्चयात्।**
**पुनः पुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्ध्यति नान्यथा॥**

दक्षस्मृति 7/6

विभिन्न प्रकार के अभियोग व अभ्यास से, उनमें दृढ़ निष्ठा तथा संसार की निःसारता को ध्यान में रखते हुए तीव्र बैराग्य के आशय से पूर्ण बैराग्य की सिद्धि होती है।

30. मन, बुद्धि व इन्द्रियों पर नियन्त्रण की महत्ता—

न यमं यममित्याहुरात्मा वै यम उच्यते।
आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति॥

आपस्तम्बधर्मसूत्र 10/3

इस विश्व के नियामक यम नहीं है। आत्मा को ही यम कहा गया है। जिसने मन, बुद्धि व इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर लिया, उसका यम (वैवस्वत) क्या करेंगे।

31. ईर्ष्या, शोक आदि मनोविकार—

ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः॥

चरकसूत्र 7/25

ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान, द्वेष आदि मनोविकार हैं। ये सभी प्रज्ञापराध के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

32. काम का मूल—

काम जानामि ते मूलं संकल्पात् किल जायसे।
संकल्पं न करिष्यामि मूलाच्छिन्नो भविष्यसि॥

वृद्धशातातपस्मृति 64, महा0शान्तिपर्व 177/25

हे काम ! मैं तुम्हारा मूल जानता हूँ। तुम इच्छा (संकल्प) से पैदा होते हो। मै तेरा संकल्प ही नहीं करूँगा। अतः (काम का) मूल ही नष्ट हो जायेगा।

33. ब्रह्म की अवधारणा—

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद् ब्रह्मनाम रूपमन्नं च जायते॥

मुण्डकोपनिषद् 1/1/9

जो सर्वज्ञ और सबको जानने वाला है, जिसका ज्ञान ही एक मात्र तप है। जिससे समस्त प्राणियों तथा लोकों के नाम, रूप और अन्न भी उत्पन्न हो जाते हैं, वही ब्रह्म है।

34. ओंकार अक्षर ब्रह्म—

इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोंकारसंज्ञितम्
यस्तु वेद वरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः।

संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः
प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि॥

मार्कण्डेयपुराण 42/14-15

यह अक्षर ब्रह्म ही ओंकार कहा जाता है, जो इस श्रेष्ठ को सम्यक् जान लेता है तथा इसका ध्यान करता है, वह त्रिविध बन्धनों से मुक्त होकर भवसागर के आवागमन चक्र से मुक्त होकर ब्रह्म साक्षात्कार कर लेता है और परमात्मा में विलीन हो जाता है।

**35. पाँच वायुओं का व्यापार—**

नागो हिक्काकरः कूर्मो निमेषोन्मेषकारकः।
क्षुतं करोति कृकलो देवदत्तो विजृम्भणम्॥
स्थौल्यं धनन्जयः कुर्यान्मृतं च न विमुञ्चति

मानसोल्लास 9/14-15

नाग वायु उद्गार, डकार, कूर्म वायु आंखों का खोलना बन्द करना, कृकल वायु भूख लाना, देवदत्त जमुहाई लाने व धनन्जय वायु शरीर को पुष्ट करने का कार्य करती है। यह मृत्यु हो जाने पर भी शरीर का त्याग नहीं करती है।

**36. लिङ्ग शरीर—**

बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया।
शरीरं सप्तदशभिः सुसूक्ष्मं लिङ्गमुच्यते॥

शारीरकोपनिषद् 16

पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन एवं बुद्धि—इन सत्रह का सूक्ष्म स्वरूप लिङ्ग शरीर कहा गया है।

**37. विद्या और अविद्या—**

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

ईशावास्योपनिषद् 11

विद्या (आध्यात्मिकज्ञान) और अविद्या (भौतिक ज्ञान) इन दोनों को एक साथ जानों। इसमें अविद्या (कर्मों के अनुष्ठान) द्वारा मृत्यु को पार करके विद्या द्वारा अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

**38. सब कुछ ब्रह्म में लीन—**

**यस्मिन्सर्वमिदं प्रोतं ब्रह्म स्थावरजंगमम्।**
**तस्मिन्नेव लयं यान्ति स्रवन्त्यः सागरे यथा।।**

मन्त्रिकोपनिषद् 17

यह सम्पूर्ण चेतन व जड़ जगत्—उसी तरह ब्रह्म में समाहित हैं जैसे नदियाँ बहती हुई समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उसी ब्रह्म में लय को प्राप्त होता है।

**39. मन से ब्रह्म का ज्ञान नहीं—**

**यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।**
**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।।**

केनोपनिषद् 1/5

मन से जिसका मनन नहीं किया जा सकता, बल्कि मन जिसकी शक्ति से मनन करता है, उसी को ब्रह्म जानो। मन द्वारा मनन कर जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर मन और बुद्धि से अतीत है।

**40. परमात्मा की व्यापकता—**

**धाता विधाता पवनः सुपर्णो विष्णुर्वराहो रजनी रहश्च।**
**भूतं भविष्यत्प्रभवः क्रियाश्च कालः क्रमस्त्वं परमाक्षरं च।।**

एकाक्षरोपनिषद् 6

परमात्मा धारण करने वाले, सृष्टि रचना करने वाले, पवन, गरुड़, विष्णु, वराह, रात और दिन हैं। वही भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान भी हैं। सभी क्रियाएँ, कालगति और परमाक्षर (परमतत्त्व ॐ) रूप में वही विद्यमान है।

**41. अविद्या–विद्या**

**या तदभिमानं कारयति सा अविद्या।**
**सोऽभिमाना यया निवर्तते सा विद्या।।**

सर्वसारोपनिषद् 3

देहाभिमानी रूप अहं भाव की जन्मदात्री अविद्या है, जिसके द्वारा अहंभाव समाप्त हो जाए, वही विद्या है।

**42. गुरु महिमा—**

**अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा।**

**यथैव तेन न गुरुभोजनीयस्तथैव चान्नं न भुनक्ति श्रुतं तत्॥**

शाट्यायनीयोपनिषद् 38

शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी जो व्यक्ति मन, वाणी और कर्म से अपने गुरुजनों का आदर नहीं करते, ऐसे लोगों के अन्न को कल्याणकामी ग्रहण नहीं करते तथा गुरु भी उसके अन्न को स्वीकार नहीं करते। यति भी उसके अन्न को न स्वीकार करें, ऐसा श्रुति कहती है।

**43. चित्त वृत्ति नष्ट करने के साधन—**

**द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं मुनीश्वर।**
**योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्॥**

शाण्डिल्योपनिषद् 1/7/24

चित्त को नष्ट करने के दो प्रमुख मार्ग हैं—(1) योग (2) ज्ञान। योग अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् उनका शमन करना तथा ज्ञान अर्थात् वस्तु के तत्त्व को यथार्थ रूप में देखना।

**44. परमात्मा का स्वरूप—**

**समस्तसाक्षी सर्वात्मा सर्वभूतगुहाशयः।**
**सर्वेन्द्रियगुणाभासः सर्वेन्द्रियविवर्जितः॥**

ब्रह्मविद्योपनिषद् 107

परमात्मा सभी का साक्षी, सर्वात्मा, सब भूतों का गुह्य आशय, सब इन्द्रियों के गुणों का प्रकाशक तथा समस्त इन्द्रियों से रहित भी है।

**45. यज्ञोपवीत का महत्त्व—**

**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।**
**आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥**

ब्रह्मोपनिषद् 5

परम पवित्र यज्ञोपवीत सर्वप्रथम प्रजापति के साथ ही सहज रूप से प्रादूर्भूत हुआ। यह दीर्घायु प्रदान करने वाला है। यह जानकर तुम उत्तम और शुभ्र यज्ञोपवीत धारण करो। यह यज्ञोपवीत तुम्हारे लिए बल एवं तेज प्रदान करने वाला हो।

**46. ध्यान के प्रकार—**

**आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।**
**भूप मूर्तममूर्तः च परं चापरमेव च॥**

विष्णुपुराण 6/4/47

चित्त के आश्रय से स्वाभावतः ब्रह्म (ध्यान) दो प्रकार का होता है। मूर्त (साकार) अमूर्त (निराकार)। पर और अपर भी इसी को कहते हैं।

**47. "गुरु" का लक्षण—**

**अविद्याहृदयग्रन्थिबन्धमोक्षो यतो भवेत्।**
**तमेव गुरुरित्याहुर्गुरुशब्देन योगिनः॥**

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसंग्रह 257

जिससे अविद्या (अज्ञान) के बन्धन की गाँठ नष्ट होकर मोक्ष प्राप्त हो जाए, योगीजन गुरु शब्द का यही अर्थ बताते हैं।

**48. गुरु भक्ति की महत्ता—**

**यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।**
**तस्माद्धि श्रीगुरोर्भक्तिर्भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥**

शिवपुराण 6/3/42

जो गुरु है वह शिव कहा गया है, जो शिव है वह गुरु है। अतः गुरु की भक्ति मुक्तिदायिनी होती है।

**49. योग से ज्ञान प्राप्त होना—**

**योगात्संजायते ज्ञानं योगो मय्येकचित्तता।**
**ज्ञानस्वरूपमेव स्याच्चिद्रूपमजमव्ययम्॥**

सूर्यपुराण 9/23

योग से ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और यह योग मुझमें एक चित्तता (एकाग्र) का होना ही है। ज्ञान तो मेरा स्वरूप ही है, जो चिद्रूप अर्थात् ज्ञान के स्वरूप वाला अव्यय-अज-और शुद्ध है।

**50. शुद्ध अन्तःकरण परमात्मा का स्थान—**

**न निजं निजवद्भात्यन्तःकरणजृम्भणात्।**
**अन्तःकरणनाशेन संविन्मात्रस्थितो हरिः॥**

स्कन्दोपनिषद् 2

जब साधक अपने देह को भूलकर अन्तःकरण का विकास करते हुए सबको अपने समान प्रकाशमान मानता है, तब उसका अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) समाप्त होकर वहाँ एक मात्र परमात्मा की सत्ता रहती है।

**51. विष्णुभक्त चाण्डाल श्रेष्ठ—**

**चाण्डालोऽपि मुनेः श्रेष्ठो विष्णुभक्तिपरायणः।**

**विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचोऽधमः॥**

पद्मपुराण

विष्णु भक्ति में लीन रहने वाला चाण्डाल भी मुनि से श्रेष्ठ है और विष्णु भक्ति से रहित ब्रह्मण चाण्डाल से भी अधम है।

**52. विष्णु का स्मरण करने वाला पवित्र—**

**अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।**
**यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥**

ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म0 17/17

व्यक्ति पवित्र हो या अपवित्र हो, किसी भी अवस्था में क्यों न हो, यदि वह पुण्डरीकाक्ष विष्णु का स्मरण कर लेता है तो वह बाहर व भीतर दोनों से शुद्ध हो जाता है।

**53. वास्तविक तत्त्व—**

**न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।**
**न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥**

आत्मोपनिषद् 31, अमृतबिन्दु उपनिषद् 10, पंचदशी 71

जिसका न निरोध है, न उत्पत्ति है, न बद्ध है, न साधक है, न मुमुक्ष है और न मुक्त है—यही परमार्थता अर्थात् वास्तविक तत्त्व है।

**54. जितेन्द्रिय—**

**श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः।**
**न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः॥**

मनुस्मृति 2/18

जो नर सुनकर, छू कर, देखकर, खाकर और सूँघ कर न प्रसन्न होता है और न ही दुखी होता है उसे जितेन्द्रिय जानना चाहिए।

**55. उत्तम तप—**

**आगते स्वागतं कुर्याद् गच्छन्तं न निवारयेत्।**
**यथाप्राप्तं सहेत्सर्वं सा तपस्योत्तमोत्तमा॥** बोधसार

जो कुछ प्रारब्धवश आ जाये, उसका स्वागत करे, जाने वाले को रोके नहीं और जो जैसे प्राप्त हो उसे वैसे ही सहन करे, यही उत्तमोत्तम तप है।

**56. गुरु शब्द का तात्पर्य—**

**गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।**

अन्धकारनिरोधित्वागुरुरित्यभिधीयते।।

अद्वयतारकोपनिषद् -16

गु शब्द का अर्थ है अन्धकार एवं रू शब्द का अर्थ है अन्धकार का निरोध करने में समर्थ। अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने वाला गुरु कहलाता है।

**57. रुद्राक्ष धारण करने वाले के लिए त्याज्य पदार्थ—**

**मद्यं मासं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।**
**श्लेष्मातकं विड्वराहमभक्ष्यं वर्जयेन्नरः।।**

रुद्राक्षजाबालोपनिषद् 43

रुद्राक्ष धारण करने वाले को लहसुन, प्याज़, कुकुरमुत्ता, लिसोड़ा, विड्वराह (एक प्रकार का शाक), शराब एवं मांस आदि अभक्ष्य वस्तुओं को त्याग देना चाहिए।

**58. योगयुक्त का लक्षण—**

**अतीन्द्रियं गुणातीतं मनो लीनं यदा भवेत्।**
**अनुपमं शिवं शान्तं योगयुक्तं सदाविशेत्।।**

नादबिन्दूपनिषद् 18

जब साधक का मन सभी इन्द्रियों, सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से परे होकर परमतत्त्व में विलीन हो जाता है तब ऐसे उपमारहित, शान्त व शिव स्वरूप साधक को योगयुक्त कहा जाता है।।

**59. ज्ञानी के लिए सब जगह तीर्थ—**

**तीर्थे श्वपचगृहे वा तनुं विहाय याति कैवल्यम्।**
**प्राणानवकीर्य याति कैवल्यम्।।**

पैंगलोपनिषद् 4/7

ज्ञानी पुरुष तीर्थ में शरीर त्याग करे या चाण्डाल के घर में शरीर त्याग करे, वह प्राणों को छोड़कर सर्वदा मोक्ष (कैवल्य) को ही प्राप्त होता है।

**60. सभी देव ब्रह्म ही हैं—**

**स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।**
**स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः।।**

कैवल्योपनिषद् 8

वह परमात्मा ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर रूप में

शाश्वत ब्रह्म है। वही विष्णु, प्राण, काल, अग्नि और चन्द्रमा भी है।

**61. मानव शरीर की माप—**

**शरीरं तावदेव स्यात्षण्णवत्यङ्गुलात्मकम्।**
**देहमध्ये शिखिस्थानं तप्तजाम्बूनदप्रभम्॥**

जाबालदर्शनोपनिषद् 4/1

यह मानव शरीर अपने हाथ की माप से 96 अङ्गुल का होता है। इसके मध्य भाग में अग्नि का स्थान होता है। उसका वर्ण तपाये हुए स्वर्ण के समान बताया गया है।

**62. कर्म बन्धन के हेतु—**

**कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते।**
**तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः॥**

संन्यासोपनिषद् 2/117

समस्त प्राणी कर्म से ही बन्धन को प्राप्त होते हैं और विद्या द्वारा मुक्ति को प्राप्त करते हैं। इसी कारण ज्ञानवान् संन्यासी कर्म से सदा दूर रहते हैं।

**63. माया मोहित करने वाली—**

**अतिमोहकरी माया मम विष्णोश्च सुव्रत।**
**तस्य पादाम्बुजध्यानाद्दुस्तरा सुतरा भवेत्॥**

शरभोपनिषद् 24

ब्रह्मा ने सुव्रत (पैप्पलाद ऋषि) से कहा कि माया मुझे व विष्णु को भी अत्यन्त मोहित करने वाली है उससे निकलना अति दुस्तर है, परन्तु उनके (विष्णु) चरण कमलों का ध्यान करने से माया से सरलता से पार पाया जा सकता है।

**64. उमा और शिव का मिलन विष्णु—**

**उमाशंकरयोगो यः स योगो विष्णुरुच्यते।**
**यस्तु तस्मै नमस्कारं कुर्याद्भक्तिसमन्वितः॥**

रुद्रहृदयोपनिषद् 9

उमा और शंकर का जो मिलन है वह योग ही विष्णु कहा जाता है। अतः विष्णु का भक्ति भाव से नमन करना चाहिए।

**65. आहार शुद्धि से चित्त शुद्धि—**

**अभक्ष्यस्य निवृत्या तु विशुद्धं हृदयं भवेत्।**

**आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वतः॥**

पाशुपतब्रह्मोपनिषद् पूर्वकाण्ड 36

अभक्ष्य-भक्षण का त्याग करने से चित्त पूर्णतया पवित्र हो जाता है। जब आहार की शुद्धि होती है तब चित्त की स्वतः शुद्धि हो जाती है।

**66. योगाभ्यास का महत्त्व—**

**योगाभ्यासरतस्येह नश्येयुः पातकानि च।**
**तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियान्तरे॥**

श्रीनरसिंहपुराण 61/3

योगाभ्यासपरायण व्यक्ति के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः कर्तव्य कर्म से अवकाश मिलने पर प्रतिदिन योग-निष्ठ होकर ध्यान करना चाहिए।

**67. विद्या और तप से मुक्ति—**

**विद्यातपोभ्यां सम्पन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः।**
**देहद्वन्द्वं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात्॥**

श्रीनरसिंहपुराण 61/12

विद्या और तप से सम्पन्न योगतत्पर ब्राह्मण दैहिक द्वन्द्वों को शीघ्र त्याग कर भव बन्धन से मुक्त हो जाता है।

**68. अद्वैत भाव की महिमा—**

**अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम्।**
**ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति॥**

श्रीविष्णुपुराण 1/22/87

मै तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन हरि ही है, उससे भिन्न कुछ भी कार्य कारणादि नहीं है, जिसके मन ऐसी भावना है उसे फिर देहजन्य राग-द्वेष आदि द्वन्द्व नहीं होते।

**69. स्वाध्याय व योग से परमात्मा प्रकाशित—**

**स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात्स्वाध्यायमावसेत्।**
**स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥**

श्रीविष्णुपुराण 6/6/2

स्वाध्याय से योग का और योग से स्वाध्याय का आश्रय लें। इस प्रकार स्वाध्याय और योगरूप सम्पत्ति से परमात्मा प्रकाशित होते हैं।

**70. इन्द्रियजयी को परमात्मा का साक्षात्कार—**

**एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो**
**निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि।**
**विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा**
**दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः॥**

अध्यात्मरामायण उत्तरकाण्ड 5/53

जो निरन्तर समाधि योग का अभ्यास करता है, जिसके सम्पूर्ण इन्द्रियगोचर विषय निवृत्त हो गए हैं, जिसने काम, क्रोध आदि सभी शत्रुओं को परास्त कर दिया है, उस छः इन्द्रियों अर्थात् मन और पांच ज्ञानेन्द्रियों को जीतने वाले महात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

**71. उत्पन्न हुए की मृत्यु निश्चित—**

**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।**
**मोक्षः कर्मविशेषेण प्रायश्चित्तेन निश्चितम्॥**

श्रीवराहपुराण 187/87

जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु और जो मरता है उसका जन्म निश्चित है। हाँ कोई विशेष कर्म अथवा प्रायश्चित्त का सहयोग प्राप्त होने से मोक्ष होना भी निश्चित है।

**72. योग से मोक्ष की प्राप्ति—**

**समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।**
**समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥**

मार्कण्डेयपुराण 41/26

जो एकाग्रचित्त, ब्रह्मपरायण, प्रमादरहित, पवित्र, एकान्तप्रिय और जितेन्द्रिय होता है, वही महात्मा इस योग को प्राप्त करता है और फिर अपने उस योग से वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

**73. ध्यान से ब्रह्म की प्राप्ति—**

**वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात्।**
**ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः॥**

मार्कण्डेयपुराण 41/25

वेदों में सम्पूर्ण यज्ञ कर्म श्रेष्ठ हैं, यज्ञों से जप, जप से ज्ञान मार्ग और उससे आसक्ति एवं राग रहित ध्यान श्रेष्ठ है। ऐसे ध्यान से सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

74. दुखः का मूल शरीर—

यच्छरीरमिदं प्रोक्तं पुरुषस्य ततः परम्।
अशुद्धमवशं दुःखमध्रुवं न च विद्यते।
विपदां बीजभूतेन पुरुषस्तेन संयुतः।
सुखी दुःखी च मूढश्च भवति स्वेन कर्मणा॥

शिवपुराण वा0सं0पू0ख0 5/51-52

पुरुष का जो यह शरीर कहा गया है उससे बढ़कर अशुद्ध, पराधीन, दुःखमय और अस्थिर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। शरीर ही सब विपत्तियों का मूल कारण है। उससे मुक्त हुआ पुरुष अपने कर्म के अनुसार सुखी, दुःखी और मूढ़ होता है।

75. आत्मा का स्वरूप—

न च स्त्री न पुमानेष नैव चापि नपुंसकः।
नैवोर्ध्वं नापि तिर्यक् च नाधस्तान्न कुतश्चन॥
अशरीरं शरीरेषु चलेषु स्थाणुमव्ययम्।
सदा पश्यति तं धीरो नरः प्रत्यवमर्शनात्॥

शिवपुराण वा0सं0पू0ख0 5/48-49

आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक है। वह न ऊपर है, न अगल बगल है, न नीचे है और न किसी स्थान विशेष में। यह सम्पूर्ण चल शरीरों में अविचल, निराकार एवं अविनाशी रूप से स्थित है। ज्ञानीपुरुष निरन्तर विचार करने से उस आत्म तत्त्व का साक्षात्कार कर पाते हैं।

76. दैव-पुरुषार्थ और काल तीनों फलदायक—

दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम्॥

मत्स्यपुराण 221/8

मत्स्यजी कहते हैं कि हे मनु! इस मनुष्य के दैव, पुरुषार्थ और काल यह तीनों पदार्थ इकट्ठे होकर फलदायक होते हैं।

77. आसक्ति बन्धन का कारण—

द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥

गरुडपुराण 49/93

बन्धन और मोक्ष के लिए इस संसार में दो ही पद हैं, एक पद 'यह मेरा है' इससे बन्धन होता है और दूसरा पद 'यह मेरा नहीं है' इससे वह मुक्त हो जाता है।

**78. सत्कर्म व विद्या की विशेषता—**

**तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा।**
**आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥**

गरुडपुराण 49-94

जो कर्म बन्धन में नहीं ले जाता वही सत्कर्म है। जो प्राणी को मुक्ति प्रदान करने में समर्थ हो, वही विद्या है। इसके अतिरिक्त दूसरा कर्म परिश्रम करने के लिए और विद्या कला नैपुण्य को प्रदर्शित करने के लिए होती है।

**79. सत्सङ्ग व विवेक का महत्त्व—**

**सत्संगश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्।**
**यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥**

गरुडपुराण 49/57

सत्सङ्ग और विवेक ये दो प्राणी के निर्मल, स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है और वह कुमार्ग पर कैसे नहीं जायेगा ? अर्थात् बिना सत्सङ्ग व विवेक के व्यक्ति कुमार्गगामी हो जाता है।

**80. संचित कर्म—**

**अनेकजन्मसञ्जातं प्राक्तनं संचितं स्मृतम्।**
**सात्त्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः॥**
**जन्मजन्मनि जीवानां संचितानाञ्च कर्मणाम्।**
**निःशेषस्तु क्षयो नाऽभूत्कल्पकोटिशतैरपि॥**

श्रीमद्देवीभागवत पुराण 6/10/8,11

अनेक जन्मों के संचय किये हुए पुराने कर्मों को संचित कर्म कहा गया है। उसके भी तीन भेद होते हैं—सात्विक, राजसिक और तामसिक। तभी तो प्राणियों द्वारा जन्म जन्मान्तर में संचित किए गए कर्मों के फल युग-युगान्तरों में भोगने पर समाप्त नहीं होते।

**81. मोक्षमार्ग का अवलम्बन करने से जीवन कृतार्थ—**

**कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।**
**विमुक्तिमार्गे सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥**

स्कन्दपुराण मा0 कुमा0 52/38

जिसका चित्त मोक्ष मार्ग में आकर परब्रह्म परमात्मा में संलग्न होकर सुख के अपार सिन्धु में निमग्न हो गया हो, उसका कुल पवित्र व माता कृतार्थ हो गयी तथा उसे पाकर यह पृथ्वी भी सौभाग्यवती हो गयी।

**82. प्रारब्ध कर्म—**

**प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः।**
**प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः॥**

श्रीमत् देवीभागवतपुराण 6/10/14

प्रारब्ध कर्म उसे जानना चाहिए जिसके कारण वर्तमान योनि प्राप्त होती है। प्राणी मात्र को उसे भोगना आवश्यक है, इसमें रञ्चमात्र भी संशय नहीं है।

**83. योग से इन्द्रिय विजय—**

**इन्द्रियाणां जये योगमातिष्ठेच्च सदा नरः।**
**इन्द्रियाणां जयाच्चैव लोकयोः सुखमाप्नुयात्॥**

श्री विष्णुधर्मोत्तरपुराण 2/141/90/88

इन्द्रियों के जीतने में सदा मनुष्य को योग में स्थिर होना चाहिए। इन्द्रियों को जीतकर ही इस लोक व परलोक में सुख प्राप्त होता है।

**84. आचार्य शब्द का अर्थ—**

**स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापत्यपि।**
**आचिनोति च शास्त्राणि आचार्यस्तेन चोच्यते॥**

ब्रह्माण्डपुराण पू0 भाग 32/2/32, वायुपुराण 59/30, द्वयोपनिषद् 3, श्रीलिङ्गमहापुराण 10/15/16

शास्त्रों के अर्थों को चुनकर जो उनकी स्थापना हेतु स्वयं भी वैसा आचरण करता है, उसे आचार्य कहा जाता है।

**85. योग से पाप समूहों का नाश—**

**योगाग्निर्दहति क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।**
**प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्॥**
**योगात् संजायते ज्ञानं ज्ञानाद् योगः प्रवर्तते।**
**योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः॥**

कूर्मपुराण 11/2-3

योगरूपी अग्नि शीघ्र ही सम्पूर्ण पाप समूह को भस्म कर देती है, उसके

बाद साक्षात् मुक्ति स्वरूप सिद्धिदाता निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवर्तित होता है। योग तथा ज्ञान से युक्त व्यक्ति पर महेश्वर प्रसन्न होते हैं।

**86. अद्वितीय परमात्मा सर्वव्यापी—**

**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः**
**सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।**
**तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति धीरा**
**स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥**

कूर्मपुराण उ0 वि0 9/18, ब्रह्मोपनिषद् 16

सभी प्राणियों के अन्तरात्मा, सर्वव्यापी एक देव ही सभी प्राणियों में व्याप्त हैं। जो धीर पुरुष उन एक अद्वितीय का अपने में दर्शन करते हैं, उन्हें ही शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं।

**87. इन्द्रियाँ बहुत शक्तिशालिनी हैं—**

**न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत्।**
**इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥**

शुक्रनीति 3/15

इन्द्रियों को बल पूर्वक इनके विषयों से हटाकर न तो अधिक पीड़ित करें न अधिक छूट देकर विषयाक्त बताए। ये अत्यधिक शक्तिशालिनी हैं। ये बल पूर्वक मन को अपनी ओर खींचती हैं।

**88. सुख और दुःख मनुष्य द्वारा उत्पादित—**

**खेदोल्लासविलासेषु स्वात्मकर्तृतयैकया।**
**स्वसंकल्पे क्षयं याते समतैवावशिष्यते॥**

महोपनिषद् 6/3

दुःख, सुख और विलास स्वंय मनुष्य द्वारा उत्पादित हैं। अपने संकल्प के क्षय होने पर समता का भाव ही शेष रहता है।

**89. पद्मासन में ॐ का जप—**

**पद्मासनं समारूहय समकायशिरोधरः।**
**नासाग्रदृष्टिरेकान्ते जपेदोङ्कारमव्ययम्॥**

योगचूडामण्युपनिषद् 71

एकान्त स्थान में पद्मासन में स्थित होकर कमर (कटि भाग) से शिर

तक शरीर को सीधा करके नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि लगाकर अव्यय ॐ का जप करना चाहिए।

**90. निराकार ब्रह्म साकार रूप धारण करते हैं—**

**चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।**
**उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥**

रामपूर्वतापिन्युपनिषद् 1/7

चिद्रूप परमात्मा यद्यपि अद्वितीय, निष्कल व अशरीरी है परन्तु उपासकों के कार्य व इष्ट की सिद्धि हेतु ब्रह्म साकार रूप धारण करते हैं।

**91. देहाभिमान की समाप्ति पर परमात्मा-ज्ञान—**

**देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।**
**यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम्॥**
**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।**
**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥**

सरस्वतीरहस्योपनिषद् 66-67

देहाभिमान समाप्त हो जाने पर परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान प्रकट होता है। इस श्रेष्ठ ज्ञान के हो जाने पर जहाँ-जहाँ मन जाता है वहाँ-वहाँ अमृतत्व का अनुभव करता है। उस समय हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं और सभी संशय नष्ट हो जाते हैं। उस परमात्मा का साक्षात्कार होने पर मनुष्य के सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं।

**92. आत्मा ब्रह्म ही प्रतिभासित होता है—**

**आत्मसंज्ञः शिवः शुद्ध एक एवाद्वयः सदा।**
**ब्रह्मरूपतया ब्रह्म केवलं प्रतिभासते॥**

आत्मोपनिषद् 1 ङ

आत्मा संज्ञावाला वह परम पवित्र, कल्याणकारी, एक मात्र शुद्ध ब्रह्मरूप होने के कारण केवल ब्रह्म ही प्रतिभासित होता है।

**93. सभी प्राणियों में एक ही चैतन्य सत्ता ब्रह्म—**

**चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्वगवादिषु।**
**चैतन्यमेकं ब्रह्मातः प्रज्ञानं ब्रह्म मय्यपि॥**

शुकरहस्योपनिषद् 32

चतुर्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, सम्पूर्ण देव, मनुष्य, अश्व, गौ आदि पशुओं में

तथा सभी प्राणियों में एक ही चैतन्य सत्ता है और वह ब्रह्म है, वही प्रज्ञान ब्रह्म मुझमें भी व्याप्त है।

94. आत्म-ज्ञानी दुःखी नहीं होता—

**आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।**
**किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥**

बृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/12

यदि पुरुष को आत्म ज्ञान हो जाय अर्थात् उसे यह ज्ञान हो जाय कि मैं क्या हूँ तो फिर किसी कामना व इच्छा से उसे दुःखी नहीं होना पड़ेगा।

95. सांसारिक आलम्बन त्यागने वाला योगी और संन्यासी—

**निरालम्बं समाश्रित्य सालम्बं विजहाति यः।**
**स संन्यासी च योगी च कैवल्यं पदमश्नुते॥**

निरालम्बोपनिषद् 1

जो निरालम्ब परमात्मा का आश्रय लेकर सालम्ब सांसारिक आश्रय त्याग देता है, वह योगी और संन्यासी है और वही कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त करता है।

96. सूर्य सभी प्राणियों के प्राणस्वरूप--

**विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।**
**सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥**

प्रश्नोपनिषद् 1/8

सूर्यदेव सर्वरूप, सर्वाधार, रश्मिवान्, सर्वज्ञाता, तपोनिष्ठ एवं अद्वितीय हैं। वे सहस्त्रों किरणों वाले शतधा विद्यमान रहते हुए प्राणियों के प्राणस्वरूप होकर उदित होते हैं।

97. सम्पूर्ण जगत् वायुजनित—

**वायोर्जातः स्वयं ब्रह्मा वायोर्जातः स वै हरिः।**
**वायोर्जातः महादेवः सर्वं वायुमयं जगत्॥** भविष्यपुराण

ब्रह्मा स्वंय वायु से उत्पन्न हुए हैं, भगवान् विष्णु भी वायु से पैदा हुए हैं, महादेव शंकर वायु से उत्पन्न हुए हैं, सभी जगत् वायुजनित है।

98. वायु ही प्राणियों का आयु और सबका प्रभु—

**वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।**
**वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः॥**

चरकसंहिता चिकित्सितस्थान 28/1

प्राणियों के शरीर में वायु आयु है, वायु ही बल है, वायु शरीरधारक है। वायु सम्पूर्ण विश्व में है। वायु ही सबका प्रभु कहा गया है।

**99. वायु के बिना शरीर निर्जीव—**

**शरीरं हि विना वायुः समतां याति दारुभिः।**
**वायुः प्राणः सुखं वायुर्वायुः सर्वमिदं जगत्॥**

रामायण 7/35/61

वायु के बिना शरीर निर्जीव काष्ठ के समान हो जाता है। वायु ही शरीर का प्राण है, सुख है। सम्पूर्ण संसार का वायु ही सर्वस्व है।

**100. सम भाव धारण करना अमृत के समान—**

**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।**
**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥**

ऋग्वेद 10/191/4

सभी मनुष्यों के संकल्प, निश्चय, प्रयत्न एवं आचरण समान हों, सभी समान भाव वाले, समान मन वाले व समान हृदय वाले होकर शोक रहित हों।

**101. सत् एक हैं किन्तु उसका वर्णन अनेक प्रकार है—**

**इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।**
**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥**

ऋग्वेद 1/164/46 अथर्ववेद 9/10/28

इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, रुद्र, वायु आदि सब एक ही हैं। एक ही सत् को मनीषी विद्वान् अनेक प्रकार से, अनेक नामों से कहते हैं। एक ही सत् परमात्मा सभी में व्याप्त है।

ॐ

# मनुष्यों के अठारह दोष

योगशास्त्र में मनुष्यों के दोषों का विस्तार से उल्लेख है। ऐसे कुल अठारह दोष मनुष्यों में बताए गये हैं। ये दोष मनुष्यों के साधना, उत्थान, प्रगति व विकास में बाधक हैं। साधक व योगाभ्यासी को इनसे दूर रहना आवश्यक बताया गया है। ये ही योग के शत्रु व विघ्न हैं। बिना इन दोषों के परित्याग के योग सिद्ध नहीं हो सकता, और न ही आत्मोन्नति हो सकती है। इन दोषों का त्याग ही साधना है।

1. निद्रा
2. तन्द्रा
3. भय
4. क्रोध
5. मोह
6. मद
7. उन्माद
8. विस्मय
9. सन्देह
10. लोभ
11. असूया
12. मात्सर्य
13. कपटता
14. मिथ्या
15. नास्तिकता
16. अगमदर्शिता

17. अशिक्षा

18. प्रमाद

महाभारत में भी कहा गया है कि मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, भयभीत, क्रुद्ध, श्रान्त, क्षुधित, जल्दबाज, शिकारी और कामुक ये दस लोग धर्म को नहीं समझते। महाभारत में ही इन सभी दोषों को अज्ञान की श्रेणी में रखा गया है।

**1. निद्रा**—निद्रा तमोबाहुल्य से उत्पन्न होती है। **निद्रा हेतुस्तमः-सुश्रुत।** जबकि समाधि के लिए सत्त्व बाहुल्य आवश्यक होता है। निद्रा एक चित्तवृत्ति है। योगसूत्र में निद्रा की परिभाषा इस प्रकार है—

**अभाव प्रत्ययावलम्बनावृत्तिर्निद्रा।**

अर्थात् पदार्थ मात्र के अनुभव के अभाव का नाम निद्रा है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी गाढ़ी नींद परम आरोग्यप्रद होती है। कहा भी गया है कि अर्ध रोगहरी निद्रा। शरीर धारण के तीन उप स्तम्भों में से निद्रा एक है। दिन में निद्रा दोष है। दिन में निद्रा से व्याधि उत्पन्न होती है। अधिक निद्रा भी दोष है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में शरीर के पांच दोषों में निद्रा को भी एक दोष बताया गया है। निद्रा के तीन प्रकार तामसी, स्वाभाविकी और वैकारिकी होते हैं। निद्रा 'वृत्ति है, क्योंकि इसमें जाग्रत् आदि वृत्तियों के अभाव के कारण तमोगुण का आश्रय रहता है। सत्त्वगुण सेवन से निद्रा का नाश होता है।

**2. भय**—भय से अशान्ति होती है और कहा गया है कि अशान्तस्य कुतः सुखम्। शरीर का एक दोष भयभीत होना भी है। भयभीत व्यक्ति धर्म-अधर्म में भेद नहीं कर पाता। भय का एक कारण अज्ञान भी है। महाभारत में लिखा है **'अज्ञानप्रभवो मोहः पापाभ्यास प्रवर्तते'**। निर्भय रहना दैवी सम्पत्ति कहा गया है। मोह के दोषों में से एक दोष भय भी है। कुलार्णवतन्त्र में भय की अष्टपाश में गणना की गई है। साधना के पूर्व इनसे छुटकारा पाना आवश्यक है। मन की कल्पना शक्ति भय को बढ़ाती है। भय के अनेक रूप हैं यथा—धन विनाश का भय, रोग भय, अपमान का भय, हार का भय, कुलच्युति का भय, जरा भय, राज भय आदि। श्रीमद्भागवत 11/2/37 में **'भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्'** कहा गया है। प्रमाद के त्याग से भय का नाश होता है। भय ही मृत्यु है। भय से मुक्ति का तात्पर्य अमरता

है।

भावप्रकाश 5/228 में कहा गया है कि ईर्ष्या, भय, क्रोध से युक्त और लोभी, रोगी, दीन एवं द्वेषयुक्त व्यक्ति द्वारा किया गया भोजन ठीक से नहीं पचता।

**ईर्ष्याभयक्रोधसमन्वितेन लुब्धेन रुग्दैन्यपीडितेन।**
**विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति॥**

व्यक्ति को स्वयं अभय रहना चाहिए और वह दूसरों के लिए भी भय का कारण न बने। भय दूसरे से होता है—

**द्वितीयाद्वै भयं भवति।** —बृहदा0 1-4-2

सबके प्रति आत्मभाव रखने से भय नहीं होता।

**3. तन्द्रा—**

**इन्द्रियार्थेष्वसम्प्राप्तिः गौरवं जृम्भणं क्लमः।**
**निद्रार्त्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रा विनिर्दिशेत्॥**

इन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण न होना, शरीर का भारीपन, जभाँई आना, थकावट प्रतीत होना तथा निद्रा से पीड़ित की भांति चेष्टा को तन्द्रा कहते हैं। जो जितेन्द्रिय होता है उसे जाग्रत अवस्था में तन्द्रा, मोह और भ्रम उत्पन्न नहीं होते। तन्द्रा चित्त की तमोगुणी वृत्ति है। ताटक क्रिया से तन्द्रा आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। महा0 शान्तिपर्व 159/6 में राग, द्वेष, क्रोध, मोह, शोक व तन्द्रा आदि को अज्ञान कहा गया है।

**4. मोह**—मोह मन से सम्बन्धित ऊर्मि (तरङ्ग) है। गीता में मोह को तामसिक प्रवृत्ति कहा गया है। इससे जड़ता, अंधकार व प्रमत्तता का प्राकट्य होता है।

**अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।**
**तमस्येतानि जायन्तें विवृद्धे कुरुनन्दन॥**

(गीता 14/13)

मेधा से मोह नष्ट हो जाता है। मोहग्रस्त व्यक्ति विवेकपूर्ण निर्णय नहीं ले पाता है। मोह सभी व्याधियों का मूल है (मानस 7/120) मोह सत्य को पहचानने में अवरोधक का कार्य करता है। '**मिथ्याध्यवसायो मोहः**' अर्थात् वस्तु के यथार्थ रूप को न जानने से मोह होता है। मोह के अङ्ग मिथ्याज्ञान, विचिकित्सा, मान, प्रमाद और घृणा हैं। जिसको समस्त प्राणी अपने समान

दीखते हैं उस आत्मज्ञानी पुरुष के लिए मोह और शोक नहीं रहता -यजुर्वेद 40/7, श्रीमद्भागवत 11-15-18 में 6 उर्मियों में मोह भी है। महाभारत में कहा गया है कि मोह की कन्या रति है। मोह के वशीभूत होकर किया गया कर्म तामस कहलाता है—

**मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।।** गीता 18/25

देवीभागवत 7/35/3 में योग विघ्न कारक छः प्रत्यूह बताए गए हैं। ये हैं लोभ, मोह, क्रोध, मद, मात्सर्य और काम

**तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरानघाः।**
**कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ।।**

महा0 शान्तिपर्व 123/16 में कहा है कि बुद्धि का नाश ही मोह है। वह धर्म और अर्थ दोनों का नाश करती है।

**5. असूया—असूया परगुणेषु दोषाविष्करणम्** (वाचस्पत्यम्) किसी के गुणों में दोष खोजने की प्रवृत्ति असूया है। **असूया तु दोषारोपो गुणेष्वपि** (अमरकोश) यह मनोगत कालुष्य है। दूसरे के गुणों को सहन न करना असूया है। यह ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध व द्रोह के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। साधक को असूया पर विजय प्राप्त करना चाहिए। असूया द्वेष का दोष है। योगदर्शन में मनोगत कालुष्य के भेदों में असूया की गणना होती है। मनुस्मृति 7/48 में क्रोध से उत्पन्न आठ व्यसनों में असूया की भी गणना की गई है। दोष दर्शन या द्वेष बुद्धि व्यक्ति को अवनति की ओर ले जाती है।

**धनाद्यैरधिकं दृष्ट्वा भृशं मनसि तापनम्।**
**असूया कीर्तिता सद्भिस्त्यागो ह्यनसूयता।।**

नारदीयपुराण 33/85

**6. प्रमाद**—प्रमाद तमस् का रूप है। गीता (14.13) में प्रमाद को तामसिक प्रवृत्ति का कहा गया है। प्रमाद व्यक्ति को आलसी, शिथिल व निष्क्रिय बना देता है। कर्तव्य कर्म से भिन्न कर्म में प्रवृत्ति करने वाली असावधानी का नाम प्रमाद है -रामानुजाचार्य

**प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन।**
**प्रमादो मृत्युरित्याहुर्विद्यायां ब्रह्मवादिनः।।**

तैत्तिरीयोपनिषद् एकादश अनुवाक् में लिखा है कि **सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम् कुशलान्न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।**

प्रमाद से कर्तव्य निष्ठा नष्ट हो जाती है। यह चित्त का विक्षेप है। यह योग में विघ्न स्वरूप है। प्रमादी मनुष्य कल्याण मार्ग से च्युत हो जाता है। प्रमाद से विगर्हित कार्य भी होते हैं।

**स्वानुभूतं परित्यज्य न तिष्ठन्ति क्षणं बुधाः।**
**स्वानुभूतौ प्रमादो यः स मृत्युर्न यमः सताम्॥**

सर्ववेदान्तसिद्धान्तसार संग्रह

समाधि साधन में उदासीनता प्रमाद है। गौतम बुद्ध ने इसीलिए 'अप्रमत्तोभव' का उपदेश दिया था।

**7. क्रोध**—क्रोध रजोगुण से उत्पन्न होता है। क्रोध शान्ति को भङ्ग करने वाला मनोविकार है। एक व्यक्ति का क्रोध दूसरे व्यक्ति में भी क्रोध का संचार करता है। गीता में क्रोध को आसुरी सम्पत्ति बताया गया है। आसुरी सम्पत्ति बन्धन कारक होती है। क्रोध से मोह उत्पन्न होता है। क्रोधी व्यक्ति में सद् असद् में विवेक करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। गीता में कहा गया है कि काम से अर्थात् किसी भी कारणवश रोकी गई इच्छा से क्रोध उत्पन्न होता है—

**कामात्कुतश्चित् प्रतिहतात् क्रोधोभिजायते।**

गीताशांकरभाष्य। 2/62

**क्रोध पित्त निज छातीजारी॥** मानस 7/30

अर्थात् क्रोध पित्त है, जो निरन्तर छाती जलाता रहता है।

बृहन्नारदीय पुराण 34/55 में क्रोध को संसार में बन्धन का कारण व धर्म का क्षय करने वाला कहा गया है—

**क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम्।**
**धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्तं परिवर्जयेत्॥**

इसी में पूर्व में कहा गया है कि क्रोध अपनी उन्नति के फलस्वरूप अहंकारी का निष्ठुर भाषण का प्रयोग है—

**आत्मनस्तु समुत्कर्षादिति निष्ठुरभाषणम्।**
**क्रोधमाहुर्धर्मविदो ह्यक्रोधस्तद् विपर्ययः॥**

नारदीयपुराण 33/84

याज्ञवल्क्योपनिषद् 29 में क्रोध को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय का बलवान शत्रु बताया गया है। महाभारत में वाणी की उग्रता, कटुता, दण्ड की कठोरता, शरीर कैद कर लेना, किसी को सदा

के लिए त्याग देना और आर्थिक हानि पहुँचाना—ये क्रोध जनित व्यसन बताए गये हैं। क्षमा से क्रोध का नाश होता है।

क्रोध मनुष्य का प्रबल व प्रथम शत्रु है जो देह में रहकर देह का ही विनाश करता है। सत्य ही कहा गया है—

**क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां देहस्थितो देहविनाशनाय।**
**यथास्थितः काष्ठगतो हि वह्निः स एव वह्निर्दहते शरीरम्॥**

**8. उन्माद**—असंतुलित, विक्षिप्त, पागलपन उन्माद के पर्याय हैं। उन्माद एक प्रकार का मानसिक विकार है। उन्मादी व्यक्ति से सही निर्णय व सही समय पर सही कार्य की अपेक्षा नहीं की जा सकती। उन्माद ग्रस्त व्यक्ति सही रूप में स्वयं को भी नहीं पहचान पाता हैं, दूसरों को पहचानने की बात ही क्या है।

**9. मद**—यह मन का गुण या धर्म है। अहंकार, अज्ञान, उन्माद आदि के पर्याय के रूप में मद का प्रयोग होता है। भागवत में मद का कारण धन बताया गया है (11/23)

**मद मत्सर अभिमान ज्ञान-रिपु इन महँ रहनि अपारो** (वि0 117)

सभी प्रकार के दुर्व्यसन मद में शामिल रहते हैं।

अभिमान को 'मद' भी कहते हैं।

महाभारत उद्योगपर्व 34/44 में विद्यामद, धनमद और परिवारमद के रूप में तीन मद बताये गये हैं—

**विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।**
**मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः॥**

महापुरुषों की सेवा से धीरे-धीरे इस विघ्न को दूर करना चाहिए।

**10. नास्तिकता—**

**अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः**—4.4.60 अष्टाध्यायी
**अस्ति परलोकः इत्येवं मतिर्यस्य स आस्तिकः।**
**नास्ति इति मतिर्यस्य स नास्तिकः।**
**दिष्टम् (भाग्यं) इति मतिर्यस्य स दैष्टिकः।**

जो वेदों की प्रमाणिकता, पुनर्जन्म और ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता उसे नास्तिक कहते हैं। **नास्तिको वेद निन्दकः**—अष्टाध्यायी 4.4.60 की वृत्ति। मैत्रायण्युपनिषद् में नास्तिकता को तमोगुण का विकार

बताया गया है।

**11. विस्मय—विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।** सा0दपर्ण 207/ लोक सीमा का अतिवर्तन करने वाले (लोकोत्तरता लिए हुए) विस्मय है। विविध पदार्थों में चित्त का विस्फारित होना (फैलजाना) आश्चर्य, अचम्भा आदि विस्मय के पर्याय हैं। विस्मय एक विकार है।

**12. सन्देह**—संदेह को संशय, उभय कोटिक ज्ञान या विचिकित्सा कहते हैं। यह चित्त का विक्षेप (अन्तराय) है। सन्देह योग का मल, शत्रु और आन्तरिक विघ्न है। योग साधन के फल में या अपनी क्षमता (शक्ति) में सन्देह होना संशय है। शंका की गणना कुलार्णवतन्त्र में "अष्टपाशो" में की गई है। यह साधना में बाधक है। सन्देह व्यक्ति को कमज़ोर बनाता है। सन्देही व्यक्ति का कोई सच्चा मित्र नहीं होता। वह अपनी पूरी क्षमता से कार्य सम्पादन नहीं करता। साधना के पूर्व इससे छुटकारा पा लेना आवश्यक है। जो योगाभ्यास द्वारा सभी प्राणियों एवं पदार्थों में परमेश्वर को व्यापक जानता है, वह सन्देह से परे हो जाता है (यजुर्वेद 40/6)

**13. मिथ्या—**

**यथार्थकथनं यच्च सर्वलोकसुखप्रदम्।**
**तत्सत्यमिति विज्ञेयमसत्यं तद्विपर्ययः॥** (पद्मपुराण)

सब लोगों को सुखदेने वाला जो यथार्थ कथन है उसी को सत्य कहते हैं। उसके विपरीत असत्य (मिथ्या) कहलाता है। महाभारत में कहा गया है कि जो सत्य छल से युक्त हो वह मिथ्या ही है—**यच्छलेनाभिसंयुक्तं सत्यरूपं मृषैव तत्।** ब्रह्म सत्य में ही प्रतिष्ठित है। **तत्सत्ये प्रतिष्ठम्**—बृहदारण्यकोपनिषद्। संशयात्मक ज्ञान भी मिथ्या कहलाता है क्योंकि उसमें भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। **धरम न दूसर सत्य समाना**—मानस0। द्वन्द्व, मोह भी मिथ्या ज्ञान के लिए कारण है। वीरवर्धमान-चरित्र 4/44 में लिखा है कि मिथ्यात्व के समान पाप न पूर्व में हुआ है न भविष्य में होगा—

**मिथ्यात्वेन समं पापं न भूतं न भविष्यति।**

**14. मात्सर्य**—यह षड्रिपुओं में से एक है—

**कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यमित्यरिषड्वर्गः**—मुद्गलोपनिषद् -4.4।

किसी के वैभव विलास को देखकर जलन या डाह करना मत्सर है।

परोत्कर्ष द्वेष ही मत्सर कहा जाता है।

**मत्सरोऽन्यशुभद्वेषे तद्वत्कृपणयोस्त्रिषु**—अमरकोश 3/3/172

मैत्राण्युपनिषद् में मात्सर्य को तमोगुण का विकार बताया गया है। महाभारत में कहा गया है कि '**सत्यत्यागात् तु मात्सर्यं महितानां च सेवया**'। मात्सर्य में क्रोध का भाव भी सम्मिलित रहता है। इसकी उत्पत्ति कई भावों के संयोग से होती है। मात्सर्य के मूल में अहंकार, आलस्य, अभिमान, नैरास्य और क्रोध रहता है।

बृहन्नारदीयपुराण 34/57 में कहा गया है कि समस्त दुःख समूह का मूल मात्सर्य है। मात्सर्य नरक का साधन हैं, अतः इसे छोड़ देना चाहिए—

**समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम्।**
**नरकाणां साधनं च मात्सर्यं तत्परित्यजेत्।।**

दूसरे की धन सम्पत्ति से अपनी तुलना करना अभिध्या है—अभिध्या परस्य विषये स्पृहा। अभिध्या से ही मात्सर्य की नींव पड़ती है।

**15. लोभ**—लोभ का अर्थ लालसा, लालच और लोलुपता है। लोभ के दो अवयव हैं। पहला किसी वस्तु का अच्छा लगना और दूसरा उस वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा का प्रकट होना। जब दोनों अवयवों का संयोग होगा तभी व्यक्ति लोभी कहलाएगा। लोभ पाप का कारण होता है। **लोभ मूलानि पापानि।** लोभ के कारण व्यक्ति में विरोधी भाव आते हैं जैसे सत्य में असत्य, अपरिग्रह में परिग्रह के भाव आदि। मनुस्मृति 7/49 में काम व क्रोध की जड़ लोभ को बताया गया है। मानस में त्रिदोषों के रूप में लोभ को कफ बताया गया है—रामचरित मानस 7/29

अहिर्बुध्न्यसंहिता 7/18 में काम क्रोध, लोभ, मान अपमान एवं तृषा को अहंकार का रूप बताया गया है। मैत्राण्युपनिषद् में लोभ को रजोगुण से युक्त विकार बताया गया है। गीता 14/12 में भगवान् ने कहा है कि रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, प्रवृत्ति, स्वार्थबुद्धि व विषयभोगों की लालसा—ये सब उत्पन्न होते हैं। लोभी व्यक्ति धर्म-अधर्म व पाप-पुण्य का विवेक नहीं कर पाता। देवीभागवत 7/35/3 में लोभ आदि को योग में विघ्न डालने वाला महान् दोष बताया गया है।

**16. अशिक्षा**—अशिक्षा का अर्थ अज्ञान होता है। अज्ञान या अविद्या के कारण अनित्य में नित्य व अनात्मा में आत्मा की प्रतीति होती है। अज्ञानता के कारण विवेक शक्ति का अभाव हो जाता है। गीता 16/4 में अज्ञान की

गणना आसुरी सम्पत्ति के रूप में की गई है। अज्ञान के कारण—

**लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च।**
**देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव ज्ञायते।।**

अर्थात् लोकवासना, शास्त्रवासना और देहवासना के कारण जीव को यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता। अज्ञान की निवृत्ति हेतु विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं। **विद्याविपरीतं ज्ञानमविद्या।** अर्थात् ज्ञान के जो विपरीत है वह अज्ञान है। अविद्या ही मुख्य क्लेश है। विद्या और अविद्या का एक साथ रहना सम्भव नहीं है। जैसे प्रकाश व अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते। विद्या से अमृत प्राप्त होता है—**विद्ययाऽमृतमश्नुते।** यहाँ अमृत से तात्पर्य मोक्ष है। अविद्या या अज्ञान अभिशाप है। आत्मा व परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान वास्तविक ज्ञान है।

17. **कपटता**—धोखा देने की प्रवृत्ति, छलने की प्रवृत्ति। कपटता से तात्पर्य प्रवंचना अर्थात् ठगना है। ईश्वर को कपटी व्यक्ति अप्रिय होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है कि भगवान् को छल कपट नहीं अच्छा लगता है। **मोंहि कपट छल छिद्र न भावा**—रामचरित मानस। कपटी व्यक्ति पर कोई भी विश्वास नहीं करता। कपटी व्यक्ति स्वस्थ मनोभाव का नहीं होता। ऋजुयोग के द्वारा जीवन को छल-कपट से मुक्त किया जा सकता है।

18. **अगमदर्शिता**—निर्धारित लक्ष्य या फल (सिद्धि) प्राप्त नहीं होगी, ऐसा भाव रखना अगमदर्शिता है। अगमदर्शी व्यक्ति को अपने पुरुषार्थ व प्रयत्न के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं होता। उसे मन का निग्रह होगा, अनासक्त भाव होगा असम्भव प्रतीत होता है। किसी भी क्षेत्र में अगमदर्शी व्यक्ति सफल नहीं होता। अगमदर्शिता योग साधना का प्रबल विघ्न है। साधक को ऐसी मनोवृत्ति से उबरने की आवश्यकता होती है। उसे लक्ष्य या उद्देश्य के प्रति व अपनी सामर्थ्य के प्रति व साधना (मार्ग, साधना) के प्रति पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है।

ॐ

# योग शब्दावली - हिन्दी

| क्र0 | शब्द | अर्थ |
|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 |
| 1 | अलेपक | असङ्ग , निर्लिप्त, निरन्जन |
| 2 | अन्तराय | विघ्न |
| 3 | अन्तर | विच्छेद |
| 4 | अनाहत शब्द | स्वयं निर्गत होने वाला शब्द |
| 5 | अनादि | शाश्वत |
| 6 | अचेत्य | अदृश्य, रूप रहित |
| 7 | अवसादन | शिथिलीकरण |
| 8 | अवद्य | दोष |
| 9 | अव्यपदेश | वाणी द्वारा अकथनीय |
| 10 | असु | प्राण |
| 11 | असर्व | कुछ भी नहीं |
| 12 | असम्भूति | विनाश |
| 13 | आत्मवान् | अप्रमत्त, आत्मज्ञ |
| 14 | आत्माराम | निरन्तर आत्मा के विषय में रमने वाला |
| 15 | आवेशित | स्थिर |
| 16 | आरोग्य | धातुसाम्य होना आरोग्य कहलाता है। |
| 17 | आभ्यन्तर | भीतर होने वाला (पूरक) |
| 18 | आतिवाहिक | सूक्ष्म |
| 19 | आक्षिप्त | अतिक्रान्त |
| 20 | आधि | मन की वेदना |
| 21 | आकीर्ण | व्याप्त |
| 22 | आशिष् | मङ्गल कामना |
| 23 | आयतन | देह, शरीर, आश्रय |

| | | |
|---|---|---|
| 24 | अरहन्त | सर्वज्ञ |
| 25 | अप्रमेय | अमाप्य |
| 26 | अपेत | विमुख |
| 27 | अपरा | निकृष्ट |
| 28 | अपरा | जड़ शक्ति। |
| 29 | अपमृत्यु | अकालमृत्यु |
| 30 | अव्यय | अविनाशी |
| 31 | अभेद | एकत्व |
| 32 | अभ्युदय | ऐहिक सुख |
| 33 | अविरति | चित्त की विषय सम्पर्क की लालसा। |
| 34 | अविपश्चित् | अविवेकी जन |
| 35 | अविच्छिन्न | प्रतिबन्ध रहित, निरन्तर, सातत्य |
| 36 | अभिनिवेश | आग्रह, अनुरक्ति, मृत्युभय, मरणत्रास |
| 37 | अभिध्या | परकृतापकार चिन्ता |
| 38 | अमूर्त | अव्यक्त |
| 39 | अमर्त्य | मृत्यु रहित |
| 40 | अमानित्व | विनम्रता |
| 41 | अमर्ष | असहिष्णुता, किसी के उत्कर्ष को न सहन करना |
| 42 | अकर्म | विहित कार्य का लोप |
| 43 | अङ्गलाघव | अङ्ग स्फूर्ति |
| 44 | अशन | भोजन |
| 45 | अध्यस्त- | अयथार्थ |
| 46 | अण्ड | ब्रह्माण्ड |
| 47 | अध्यास | भ्रान्ति |
| 48 | अकृतात्मन् | जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है। |
| 49 | अभिजात | प्राप्त हुए, कुलीन, उत्पन्न |
| 50 | अव्यर्थकालत्व | व्यर्थ समय न खोना |
| 51 | अनुद्धर्ष | अतिसन्तोषाभाव |
| 52 | आतिवाहिक | सूक्ष्म |
| 53 | अपरनिःश्रेयस | जीवन्मुक्ति |
| 54 | अव्याकृत | निर्वाण, अव्यक्त |
| 55 | अव्यपदेश्य | अनागत |

| | | |
|---|---|---|
| 56 | आरब्ध कर्म | प्रारब्ध कर्म |
| 57 | ऋत | सनातन सत्य (यथार्थ), ऋतं तु मानसो धर्मः सत्यं स्यात्सम्प्रयोगगः। ईश्वर की निर्धारित व्यवस्था। |
| 58 | श्रद्धावित्त | श्रद्धा ही जिसका एक मात्र धन है। |
| 59 | एकाग्ररति | आनन्द |
| 60 | एकान्तसेवन | विविक्तसेवन |
| 61 | एषणा | इच्छा, एषणाएं तीन है—पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा। |
| 62 | एकतान | एकाग्र |
| 63 | इन्ध | दीप्तिगुण विशिष्ट वैश्वानर (पाचक अग्नि) जिसे परमात्मा ने अपना तेजांश कहा है। |
| 64 | इज्य | यज्ञ |
| 65 | इड़ानाड़ी | वाम नाड़ी (बाएं नासारन्ध्र से चलने वाला) इज्म यक्ष। |
| 66 | इहा | मन की चेष्टा |
| 67 | उच्छेद | अभाव |
| 68 | उच्छ्वास | (प्रश्वास) श्वांस का ऊपर जाना |
| 69 | उदावर्त | मल-मूत्र के वेग को रोक कर वायु का ऊपर की ओर चढ़ना। |
| 70 | उद्गीथ | ॐकार |
| 71 | उद्घात | टकराव |
| 72 | उडुप | नौका। |
| 73 | उपस्थ | जननेन्द्रिय |
| 74 | उपान्तराय | उपविघ्न |
| 75 | उपपन्न | प्राप्त |
| 76 | उपचित | संगृहीत |
| 77 | उपष्टम्भ | आश्रय |
| 78 | उक्थ | श्रेष्ठ |
| 79 | उपराम | विषयों से निवृत्ति 'विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर्हि सा।' |
| 80 | कलना | वासना के कारण मृत्यु काल में भावी शरीर के लिए बनी स्मृति। |

| | | |
|---|---|---|
| 81 | कूटस्थ | अपरिवर्तित, शाश्वत, स्थिर और निर्बिकार |
| 82 | कन्द | नाड़ी समूह। |
| 83 | कैलास | जीव का ब्रह्मरन्ध्र नामक निवास स्थान |
| 84 | कैवल्य | मोक्ष, आत्यन्तिकी दुःख निवृत्ति। |
| 85 | कुण्डलिनी | योनि स्थान। |
| 86 | काकचञ्चु | प्राणायाम की एक मुद्रा जिसमें जीभ को कौवे की चोंच की तरह करके श्वांस लिया जाता है |
| 87 | कपालभाति (घर्षण) | शरीर शोधन की एक क्रिया, अन्य क्रियाएं हैं- धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक |
| 88 | कलिल | कलुष |
| 89 | कवि | क्रान्तिदर्शी, सर्वज्ञ |
| 90 | कर्म | शास्त्र विहित कर्म |
| 91 | कमल | शरीरस्थ चक्र |
| 92 | कृति | इन्द्रियों का संयम एवं एकाग्रता |
| 93 | कृतकृत्य | पूर्णकाम |
| 94 | गृत्समद | प्राण और अपान का संयोग |
| 95 | ग्रावा | शिलाखण्ड |
| 96 | गुल्फ | टखना |
| 97 | गृत्स | प्राण |
| 98 | घोष | अनाहत नाद |
| 99 | चतुर्व्यूह | तैजस, विश्व, प्रज्ञा, तुरीय। |
| 100 | चित्तवृत्ति | चित्त का व्यापार |
| 101 | चित्त | बुद्धि |
| 102 | चित्त की पांच अवस्थाएं | मूढ, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध |
| 103 | चोदना | विधिवाक्य |
| 104 | छः शक्तियाँ | डाकिनी, हाकिनी, काकिनी, लाकिनी, राकिनी व शाकिनी |
| 105 | जड़ | अचेतन |
| 106 | जिहासा | त्यागने की इच्छा |
| 107 | जय करना | सिद्ध करना |
| 108 | तदात्मक | एकत्व |

| | | |
|---|---|---|
| 109 | तर्ष | तृष्णा |
| 110 | तितिक्षु | सहनशील, क्षमावान् |
| 111 | तनुमानसा | मन की स्थूलता का कम होना। |
| 112 | तितिक्षा | कष्ट सहिष्णुता, न्याय से प्राप्त दुःख सहने का नाम तितिक्षा है। सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभागता। |
| 113 | नैष्ठिक | अचल |
| 114 | नवचक्र | ब्रह्मचक्र, स्वाधिष्ठान, नाभिचक्र, मणिपूरचक्र, हृदयचक्र (अनाहत चक्र) कण्ठचक्र, (विशुद्धाख्य चक्र)तालुका चक्र, भ्रूचक्र (आज्ञा चक्र) ब्रह्मरन्ध (निर्वाण चक्र) व्योम चक्र (आकाश चक्र) |
| 115 | नासिकापुट | नाक का एक छेद |
| 116 | निर्वैर | जिसका कोई शत्रु न हों। |
| 117 | निवात | वातवर्जित |
| 118 | निस्त्रैगुण्य | गुणातीत, त्रिगुण रहित |
| 119 | निरामय | त्रिविध ताप रहित, अनामय |
| 120 | निर्भर | सच्चिदानन्द धनरूप |
| 121 | निर्विशेष | निराकार |
| 122 | निर्मम | मेरा कुछ नहीं, यह भाव। निर्ममत्व से वैराग्य पैदा होता है |
| 123 | निमीलन | बन्द करना |
| 124 | निष्कल | गुण रहित |
| 125 | निष्काम | परिपूर्ण, कामना रहित |
| 126 | निःस्वम्भाव | अनिर्वचनीय |
| 127 | निःश्वास | श्वांस का नीचे आना। |
| 128 | निष्प्रपञ्च | उपाधि से रहित |
| 129 | निरीहा | कामना रहित |
| 130 | निःश्रेयस | विदेहमुक्ति, मोक्ष |
| 131 | दुरत्यय | न टाला जाने वाला |
| 132 | दम | इन्द्रिय निग्रह |
| 133 | धर्म | जिससे अभ्युदय व निःश्रेयस् की सिद्धि हो वह धर्म है। महार्षि कणाद |
| 134 | धृति | थोड़े से ही संतोष कर लेने की क्षमता। जिह्वा व |

| | | |
|---|---|---|
| | | जननेन्द्रिय पर विजय करना धैर्य है—भागवत |
| 135 | प्रतीति | अनुभूति |
| 136 | प्रत्यगात्मा | इन्द्रिय भोग से विरक्त जीवात्मा |
| 137 | प्रत्ययवाय | निहित कर्म को न करने से लगने वाला पाप |
| 138 | प्रत्यय | ज्ञान |
| 139 | प्रसन्नचेतस् | स्वस्थ अन्तःकरण वाला, प्रसन्न चित्त वाला |
| 140 | प्रज्ञात्मा | विवेकवान व्यक्ति |
| 141 | प्राणसंरोध | प्राणायाम, प्राण का नियमन |
| 142 | प्राणी | **पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिर्विषयाश्चेन्द्रियाणि च।<br>अहंकरो अभिमानश्च समूहो मृतसंज्ञकः॥** |
| 143 | प्रपत्ति | स्वीकार, शरणागति |
| 144 | प्रभव | उत्पत्ति |
| 145 | प्रतिपत्ति | ज्ञान, उपलब्धि, अवाप्ति |
| 146 | प्रमित भोजन | संतुलित आहार |
| 147 | प्रकर्ष | पूर्ण स्थिति |
| 148 | प्रश्वास | वायु के बाहर जाने की क्रिया |
| 149 | प्रयत्नान्तर | अन्य उपाय |
| 150 | प्रधान | प्रकृति, मुख्य, मूल |
| 151 | पुनरावर्तन | पुनर्जन्म |
| 152 | पवनाभ्यास | प्राणायाम |
| 153 | पराकाशा | प्रत्याशा |
| 154 | परतर | परे |
| 155 | परागात्मा | इन्द्रिय भोग में आसक्त जीवात्मा |
| 156 | परासुता | दूसरों को मारने की इच्छा |
| 157 | पराभक्ति | अनन्य भक्ति, अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त भक्ति, फल भक्ति |
| 158 | परा | वाणी के चार रूपों में से एक। अन्य तीन रूप हैं पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी |
| 159 | परा | चेतन शक्ति |
| 160 | परमश्रेय | मोक्ष |
| 161 | परिचर्या | सेवा शुश्रूषा |
| 162 | परिदृष्ट | परीक्षित |

| | | |
|---|---|---|
| 163 | परिपन्थी | शत्रु |
| 164 | परिहार | त्याग |
| 165 | पश्चिमयाम | ब्राह्ममुहूर्त |
| 166 | प्रतियोगी | विरुद्धभाव |
| 167 | पुर्यष्टक | दृढ़ संकल्पों से युक्त |
| 168 | पिंङ्गलानाड़ी | दक्षिण नाड़ी |
| 169 | प्राणायतन | प्राणों के रहने के स्थान, दश प्राणायतन हैं—मस्तक, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुदा, वस्ति, भोज, शुक्र, रुधिर, मास |
| 170 | प्रतिगर | प्रोत्साहक मन्त्र विशेष |
| 171 | प्रत्यय | कारण |
| 172 | ब्रह्मभूय | मोक्ष, ब्रह्मभूतावस्था, ब्रह्मत्व, ब्रह्मसायुज्य |
| 173 | बुद्ध | चैतन्य स्वरूप |
| 174 | बीज | कारण |
| 175 | बर्हि | कुश |
| 176 | भूमिका | योग की सात भूमिकाएं। अवेदन, विचार, असंसर्ग, स्वप्न, सुषुप्तपद, तुर्या, विदेहमुक्ति |
| 177 | भूमि | अवस्था |
| 178 | भूमा | महान्, निरतिशय |
| 179 | भुजंगिनी | कुण्डलिनी |
| 180 | भोगायतन | स्थूलादि शरीर |
| 181 | भावना | चित्त की स्थिति। यह चार प्रकार की होती है—मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा। |
| 182 | भावन | विषयों के नष्ट हो जाने पर उसका बार-बार चिन्तन। |
| 183 | मल | दोष, विकार, पाप |
| 184 | मूढ़बुद्धि | देहाभिमानी |
| 185 | मन्ता | मनन करने वाला |
| 186 | मनोनाश | वासना—कामना का त्याग |
| 187 | मनोवृत्ति | मनोवृत्तियों के पांच प्रकार हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति |
| 188 | मनीषी | मन पर शासन करने वाला |
| 189 | मैत्र | मलोत्सर्जन |

| | | |
|---|---|---|
| 190 | मेढ | प्राण |
| 191 | मेरुदण्ड | पीठ की रीढ़ |
| 192 | मेरु | रीढ़ |
| 193 | मेध्य | पवित्र |
| 194 | मुद्रा | दश हैं—महामुद्रा, महाबन्ध, खेचरी, उड्डीयान बन्ध, मूलबन्ध, जलन्धर बन्ध, विपरीतकरिणि, वज्रोली, शक्तिचालन। घेरण्डसंहिता में 25 मुद्रायें बताई गई है। |
| 195 | मुहूर्त | 48 मिनट का समय |
| 196 | मुक्ति | आध्यात्मिक आनन्द |
| 197 | मात्रास्पर्श | इन्द्रिय और विषयों का संयोग |
| 198 | महान् | न्यूनताभाव |
| 199 | महानिशा | रात्रि के 10 बजे से प्रातः 4 बजे तक का समय |
| 200 | महाक्लेश | अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष , अभिनिवेश (पाँच महाक्लेश हैं) |
| 201 | मर्मस्थान | इनकी संख्या 18 है—पादाङ्गुष्ठ, गुल्फ, जंघामध्य, ऊरुमध्य, मूल, पायु, हृदय, शिश्न, देहमध्य, नाभि, गलकूर्पर, तालुमूल, नेत्रमण्डल, भूमध्य, ललाट, ऊर्ध्वमूल, जानुद्वय, करमूल, |
| 202 | मार्दव | अन्तःकरण की कोमलता |
| 203 | द्वैत | द्वन्द्व भाव |
| 204 | योगारूढ़ | योग की अन्तिम अवस्था। |
| 205 | योगारुरुक्षु | योग की प्रारम्भिक अवस्था। |
| 206 | योग | किसी वस्तु को प्राप्त करने का उपाय, जुड़ना, संयमन, समाधि, मिलन, युक्ति |
| 207 | यातयामत्व | निःसारता |
| 208 | याम्यगुल्फ | दाहिनी एड़ी |
| 209 | यति | योगसाधक |
| 210 | रुद्रग्रन्थि | आज्ञा चक्र |
| 211 | रेतस् | वीर्य, धातु |
| 212 | रसयिता | रस लेने वाला |
| 213 | राग | प्रीति, प्रेम, स्नेह |

| | | |
|---|---|---|
| 214 | लोभ | परद्रव्यादित्सा |
| 215 | लक्षित | अभिव्यक्त, वर्तमान |
| 216 | लिंड्ग | सूक्ष्म |
| 217 | लिङ्ग | अनुमापक |
| 218 | वलयाकृत | वृत्ताकार |
| 219 | वज्रोली | एक प्रकार की मुद्रा |
| 220 | वासना | चित्त में विषयों के जमा हुए दृढ़ संस्कार |
| 221 | वायुमूल | गुदामूल |
| 222 | वायु | प्राण |
| 223 | वृषण | अण्डकोष |
| 224 | व्यूह | अवयव |
| 225 | व्यूढ | संक्षिप्त |
| 226 | व्युत्थान | जाग्रत |
| 227 | व्युत्थित | विक्षिप्त, मूढ़ |
| 228 | व्यसन | अहितकर कर्मों की ओर मन की आसक्ति |
| 229 | व्यास | विभाजन |
| 230 | व्यष्टि | सीमित व्याप्ति वाली |
| 231 | वितानित | प्रसारित |
| 232 | विश्रव्धघाती | विश्वासघाती |
| 233 | विपाक | कर्म फल |
| 234 | विपर्यय | मिथ्या ज्ञान |
| 235 | विहार | व्यापार, चर्चा |
| 236 | विदिशाएं | दिशाओं के मध्य के कोण |
| 237 | विधित्सा | शास्त्र विरुद्ध कार्य करने की इच्छा |
| 238 | विमोक | कामानर्भिष्वङ्ग |
| 239 | विकर्म | विहित का उल्लंघन, प्रतिषिद्ध कर्म, विपरीत कर्म |
| 240 | विशोका | चित्त की ज्योतिष्मती अवस्था। इसमें सात्विक प्रकाश रूप ज्ञान का विस्तार होता है। |
| 241 | विधेयात्मा | ऐसा पुरुष जिसका अन्तःकरण इच्छानुसार वश में है |
| 242 | विपर्यास | विपरीत ज्ञान |
| 243 | वशी | इन्द्रियों को वश में रखने वाला |
| 244 | विक्षेप | एक ही समय में अनेक विषयों को ग्रहण करना। |

| | | |
|---|---|---|
| | | सर्वार्थता/समाधि का एक विघ्न |
| 245 | विवेकख्याति | दुःख के नितान्त अभाव का साधन |
| 246 | विचारणा | सदाचार की ओर प्रवृत्ति |
| 247 | व्यूह के चार प्रकार | हेय, हेय हेतु, हान, हानोपाय |
| 248 | श्वान | प्राण |
| 249 | शरणागति | आत्म निक्षेप |
| 250 | शरणापन्न | आत्मार्पण, प्रपत्ति |
| 251 | शम | मनोनिग्रह |
| 252 | शब्द ब्रह्म | प्रणव |
| 253 | षोडशाधार स्थान | अङ्गूठा, एड़ी, घुटना, ऊरू, जननेन्द्रिय की सीवन, लिङ्ग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कंठ. तालुमूल के पीछें की गल घंटी, नाक, भ्रूमध्य, मस्तक, मूर्द्धा ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) |
| 254 | षट्कोश | चर्म, मांस, अस्थि, स्नायु, रक्त एवं मज्जा |
| 255 | षड्भवविकार | प्रिय होना, प्रादूर्भूत होना, वर्द्धित होना, परिवर्तित होना, क्षय होना तथा विनाश होना |
| 256 | षड्भ्रम | कुल, गोत्र, जाति, वर्ण, आश्रम एवं रूप |
| 257 | स्त्यान | शिथिलता, चित्त की अकर्मण्यता |
| 258 | सुतुच्छ | क्षण भंगुर |
| 259 | सुखमण्डल | सहस्रार चक्र |
| 260 | स्वस्थ | आत्मनिष्ठ, अपने में स्थित |
| 261 | स्वाभाविक | अकारण |
| 262 | स्वराट् | स्वप्रकाशित |
| 263 | स्वधा | अन्न |
| 264 | स्व | आत्म |
| 265 | सावधिक | मर्यादी, अवधि सहित |
| 266 | सहज | जन्मजात |
| 267 | सविशेष | साकार |
| 268 | सार्ष्टि | ईश्वर के समान ऐश्वर्य |
| 269 | सरस्वती | ब्राह्मी शक्ति |
| 270 | स्पन्दन | कम्पन, हलचल्, चेष्टा, स्फुरण |

| | | |
|---|---|---|
| 271 | सप्तद्वीप | सात चक्र |
| 272 | सहस्रदृक् | इन्द्र |
| 273 | समबुद्धि | परमात्म बुद्धि |
| 274 | समाधि | स्थिर मन, ध्येय और चित्त की एकाग्रता |
| 275 | समष्टि | सबको व्याप्त करने वाली |
| 276 | सङ्गम | इड़ा, पिङ्गला व सुषुम्ना नाड़ी की सम्यक् स्थिति |
| 277 | संनहन | कवच |
| 278 | संवेदन | प्रथम बार इन्द्रियों से विषयों का उपभोग। |
| 279 | संवित् | अनुभूति |
| 280 | संविद्घन | ज्ञानस्वरूप |
| 281 | संशित | तीक्ष्ण, कठोर |
| 282 | संकल्प | मनोरथ, कामनाएं, इच्छाएं |
| 283 | स्मय | अभिमान |
| 284 | संरब्ध | उत्तेजित |
| 285 | समाहित | एकाग्र, शान्त |
| 286 | स्फिग | नितम्ब |
| 287 | स्थितधी | जिसकी बुद्धि का विचलन समाप्त हो गया हो, स्थिर बुद्धि वाला |
| 288 | स्थिर | निश्चल |
| 289 | समित्पाणि | हाथ में कुछ उपहार लिये हुए |
| 290 | सम्प्रयोग | प्रत्यक्षीभूत, साक्षात्कार |
| 291 | शान्त | शमयुक्त |
| 292 | स्थूल | सदेह |
| 293 | हंस | जीव |
| 294 | हानोपाय | अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव |
| 295 | ह्रीः | पाप कर्म (अकर्तव्यकर्म) करने में लज्जा |
| 296 | हृदय | चेतना का अधिष्ठान |
| 297 | त्रिपुटी | धारणा, ध्यान व समाधि की त्रिपुटी, जिसे संयम कहते हैं |
| 298 | त्रिपुटी | द्रष्टा, दृश्य, दर्शन |
| 299 | त्रिपुटी | ज्ञान, श्रेय और ज्ञाता (त्रितय) |
| 300 | त्रियामा | रात्रि |

| | | |
|---|---|---|
| 301 | ज्ञान | सत्त्वगुण प्रधान बुद्धि की वृत्ति, ज्ञान की सात भूमिकाएं शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, संस्क्ति, पदार्थाभाविनी, तुर्यगा। |
| 302 | ज्ञापक | सूचक |
| 303 | श्रेय | प्रशस्यतर |
| 304 | श्रान्ति | थकावट |
| 305 | शर्व | नाश करने वाला |
| 306 | धृष्णु | धैर्यशाली |
| 307 | याम्य | यम-नियम का साधन करने वाला |

ॐ

# योग शब्दावली – अंग्रेजी

| क्रमांक | शब्द | अंग्रेज़ी शब्द |
|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 |
| 1 | एकाग्र | Concentrated Single Pointed |
| 2 | एकाग्रता | Concentration |
| 3 | ध्यान | Contemplation |
| 4 | धृति | Fortitude |
| 5 | धारणा | Steadiness, Fixation of attention Retention |
| 6 | यम | Restraint, Vows,Abstinence |
| 7 | योग | Union, Meditation |
| 8 | योगारूढ़ | Highest class apirant to yoga Attained concentration |
| 9 | युग | Age |
| 10 | ऋषि | Seer |
| 11 | क्षान्ति | Forbearance |
| 12 | द्वीप | Isles |
| 13 | इन्द्रियाँ | Sense organs |
| 14 | इच्छा शक्ति | Will-power |
| 15 | बद्धकोणासन | Butterfly Pose |
| 16 | बाह्य प्रपंच | External Phenomenon |
| 17 | बालासन | Child's Pose |
| 18 | बुद्धि, प्रतिभा | Intellect |
| 19 | बन्धन | Bondage |
| 20 | ब्रह्म | Ultimate reality |

| | | |
|---|---|---|
| 21 | ब्रह्मचर्य | Chastity |
| 22 | कुंजलक्रिया | Stomach Wash |
| 23 | कपोतासन | Pigeon Pose |
| 24 | काम | Lust |
| 25 | कामवसायित्व | Fulfilment of desires |
| 26 | कुम्भक | Holding the air breathed in |
| 27 | कैवल्य | Isolation, Liberation |
| 28 | क्लेश | Troubles |
| 29 | महिमा | Immensity |
| 30 | मति विलोपन | Merging of the mind |
| 31 | महामुद्रा | Arch-Gesture |
| 32 | महत् | Cognitional Vehicle |
| 33 | मोक्ष (कैवल्य, निर्वाण) | State of liberation, The knowledge of self |
| 34 | मोड़ना | Twist |
| 35 | मौन | Silence |
| 36 | मुद्रा | Pose |
| 37 | मेधा | Retentiveness |
| 38 | मेरुदण्ड (पार्श्वकोष्ठ) | Spinal column |
| 39 | मनीषा | Reflection |
| 40 | मनोविलास | Phantasm of the mind |
| 41 | मनन | Thinking, Reflection, Cogitation |
| 42 | मूढ़ | Ignorant |
| 43 | क्षिप्त | Agitated |
| 44 | शितली | The Cooling |
| 45 | सिद्धि | Occult powers |
| 46 | विषय, गुण | Sense-object |
| 47 | क्रिया साध्य | Practical |
| 48 | विकर्म | Forbidden action, bad work |
| 49 | विकार | Disorder |
| 50 | विक्षिप्त | Ditracted |
| 51 | विभ्रम | Hallucination |

| | | |
|---|---|---|
| 52 | विपर्यय | Indeterminacy |
| 53 | विज्ञान | Realisation |
| 54 | विवेक | Power to Discrimination |
| 55 | वितर्क | Argumentation |
| 56 | विगर्हित | Culpable |
| 57 | चित्त | Mind stuff |
| 58 | जितेन्द्रिय | Who has controlled his sense organs |
| 59 | निष्काम कर्म | Action which is not result centric |
| 60 | निष्कल | Stainless |
| 61 | निरुद्ध | Controlled |
| 62 | नियम | Obligation, Moral rules |
| 63 | निषिद्ध | Forbidden |
| 64 | निदिध्यासन | Unbroken meditation, Profound and repeated meditation |
| 65 | निरंजन | Taintless |
| 66 | निराकार, अरूप | Formless |
| 67 | निराहार | Abstatining from food |
| 68 | निद्रा | Dormancy, Sleep |
| 69 | नित्यकर्म | Bounden duty, Daily necessary rite |
| 70 | हृद्य | Agreeable, Pleasing to heart |
| 71 | भक्ति | Loving Devotion |
| 72 | भावना, वेदनाएं | Feelings, Sensations |
| 73 | भोक्ता | Experiences, enjoyer, user |
| 74 | भरण-पोषण | Sustaines, Supporting, Nourishing |
| 75 | भेद | Distinction |
| 76 | भेदन शक्ति | Penetrating Power |
| 77 | भग | Fortune |
| 78 | भ्रम, विकल्प | Delusion |
| 79 | भ्रस्त्रिका | Bellows |
| 80 | भ्रांति, मोहित होना, विमूढ़ | Delude |
| 81 | पंचकोश | Five Sheaths |
| 82 | परिकर्म | Embellishments |

| | | |
|---|---|---|
| 83 | पर-विज्ञान | Super mind |
| 84 | पर-प्रत्यक्ष | Superior perception |
| 85 | परमानन्द | Supreme Bliss |
| 86 | पवनमुक्तासन | Knees to chest Pose |
| 87 | पञ्चभूत | Five elements, Earth, Water, Fire, Air & ether |
| 88 | पूरक | Inhalation of air |
| 89 | प्रबल इच्छा | Intense Desire |
| 90 | प्रकृति, अव्यक्त | Un manifest |
| 91 | प्रमाण | Proof, Evidence, Means of Knowledge |
| 92 | प्रमाद | Inadvertence |
| 93 | प्रतिभास | Revelation |
| 94 | प्राण | Vital air, The breath of life |
| 95 | प्राणायाम | Regulation of breath |
| 96 | प्रशान्तात्मा | Serene hearted |
| 97 | प्रत्यक् चैतन्य, परासत्ता | Noumenon |
| 98 | प्रत्याहार | Abstraction, Withdrawal |
| 99 | श्रद्धा | Veneration, Faith |
| 100 | राग | Passion |
| 101 | श्रेष्ठ | Foremost, Supreme |
| 102 | रेचक | Expiration |
| 103 | शरीर वित् | Cateliptic |
| 104 | शामानीधर्म | Shamanism |
| 105 | शवासन | Corpse Pose |
| 106 | संघर्ष, प्रयास | Strive, Effort |
| 107 | संतोष | Contentment |
| 108 | स्मृति | Memory |
| 109 | सम्प्रज्ञात | Conscious |
| 110 | समाधि | Meditation, Ecstasy |
| 111 | सप्तपथ | Nasal area |
| 112 | साक्षात् | Visible |
| 113 | सार | Essence |
| 114 | स्वरूप | Natural form |

| | | |
|---|---|---|
| 115 | स्वयं प्रभ | Self effulgent, Self luminous |
| 116 | स्वाध्याय | Self Study |
| 117 | सर्वव्यापी | All-pervasive |
| 118 | सर्वतोमुख | Omnifaced |
| 119 | सर्वगत | All pervading, Omni present |
| 120 | सूर्य नमस्कार | Sun Salutation |
| 121 | सूक्ष्म | Subtle form |
| 122 | सूत्र | Aphorisms |
| 123 | उपांशु जप | Whispered |
| 124 | उपाधि | Limiting adjunct |
| 125 | उपद्रष्टा | Close observer |
| 126 | उच्चारण | Uttering |
| 127 | उज्जयी | Victorious |
| 128 | दण्डासन | Staff Pose |
| 129 | दुःख | Scorn, Suffering |
| 130 | वृत्ति | Modifications, Propensities |
| 131 | वशिता | Subjection |
| 132 | वीर्य | Energy |
| 133 | श्वांस प्रश्वास | Diaphragmatically breathing, Inhaling and exhaling |
| 134 | वैराग्य | Dispassion |
| 135 | चेतन | Conscious |
| 136 | फल | Result |
| 137 | तीव्र | Intense |
| 138 | ताडासन | Mountain Pose |
| 139 | तत्त्वमसि | Thou art that (महावाक्य) |
| 140 | जलनेति | Nasal Cleaning |
| 141 | जीवन्मुक्त | A living adopt, A living liberated Soul |
| 142 | जप | Repetition of the Lord's name, Muttering |
| 143 | न्यास | Renunciation |
| 144 | नासिकाग्र | Tip of the nose |
| 145 | नाड़ी | Arteries |
| 146 | नाड़ी तन्तु | Nerve fibers |

| | | |
|---|---|---|
| 147 | अष्टाङ्गयोग | Eightfold Path of Yoga |
| 148 | अध्यात्म | Dwelling in the Self |
| 149 | अधमगति | Ignoble state |
| 150 | अर्धमेरुदण्ड | Half spinal |
| 151 | अद्वैत | Non-duality |
| 152 | अकर्म | Inaction, non-work |
| 153 | अकुञ्चन प्रसरण | Abdominal Squeege |
| 154 | अमनस्क | Mindless |
| 155 | अमूर्त | Abstract |
| 156 | अणिमा | Allevation, Minuteness, Attenuation |
| 157 | अधिष्ठान | Abode |
| 158 | अहिंसा | Non-injury |
| 159 | अभिनिवेश | Fear of death |
| 160 | अस्मिता, अहंकार | Egoism |
| 161 | अतिचेतन | Super conscious |
| 162 | अनिर्वचनीय | Inexpressible, Indescribable |
| 163 | अभ्यास | Practice, Exercise |
| 164 | अपरिग्रह | Non-Possession |
| 165 | अपावृत | Uncovered |
| 166 | अप्राकृतिक | Unnatural |
| 167 | आसन | Posture, Pose |
| 168 | आत्मद्योतन | Auto-suggestion |
| 169 | आत्मा | Transecndantal Self |
| 170 | आर्जव | Uprightness Straight forwardness |
| 171 | आनन्द | Bliss |
| 172 | असङ्ग | Non-attachment |
| 173 | असत् | Unreal |
| 174 | अव्यय | Imperishable, Immutable |
| 175 | अव्यक्त | Un manifest |
| 176 | अवस्थायें, स्थितियाँ, भूमियाँ | States |
| 177 | अवचेतन | Sub conscious |
| 178 | अचेतन, जड़ | Un conscious, Matter |
| 179 | अनाहत चक्र | Cardiac plexus |

| | | |
|---|---|---|
| 180 | अनुमन्ता | Giver of Sanction |
| 181 | अन्तर्मन | Sub-conscious mind |
| 182 | अन्तराय | Obstacle |
| 183 | अनन्त | Infinite |
| 184 | गोमुखासन | Cow's Face Pose |
| 185 | गूढ़ | Abstruse |
| 186 | लय | Absorbed |
| 187 | लघिमा | Laxity, Lightness |
| 188 | लोक संग्रह | Stability of human society |
| 189 | लोभ, तर्ष | Greed |
| 190 | वियोग | Dis Innect, Seperation |
| 191 | गुण | Quality |
| 192 | गोलोक | Vaikuntha |
| 193 | कर्म | Action entailing its consquences |
| 194 | नौ चक्र | Naval Centre |
| 195 | ताटक | Concentrating the Vision on a Single Point or object |
| 196 | प्रणव | The sacred syllable Om |
| 197 | प्रणिधान | Abstract Contemplation |
| 198 | प्रणिपात | Falling at one's feet |
| 199 | प्रजागर | Sleeplessness |
| 200 | जड | Motion less |
| 201 | प्राणमय शरीर | Astral body |
| 202 | आकाशमय शरीर | Ethereal body |
| 203 | बन्ध | Muscle locking |
| 204 | मूलबन्ध | Root lock |
| 205 | जालन्धरबन्ध | Throat lock |
| 206 | ऊर्ध्व | Upwards |
| 207 | भ्रूमध्य | To the Third Eye, between the eyebrows |
| 208 | दृष्टि | Focused gaze, there are nine drishits |

ॐ

# सन्दर्भग्रन्थ


1. ऐतरेय आरण्यक
2. ध्यानबिन्दूपनिषद्
3. यथार्थदीपिका
4. याज्ञवल्क्यस्मृति
5. योगकुण्डल्युपनिषद्
6. योगशिखोपनिषद्
7. योगबीज
8. योगसारसंग्रह
9. योगवासिष्ठ
10. योगचूड़ामण्युपनिषद्
11. योगतत्त्वोपनिषद्
12. योगराजोपनिषद्
13. योगस्वरोदय
14. योगतारावली
15. घेरण्डसंहिता
16. ऋग्वेद
17. क्षुरिकोपनिषद्
18. श्वेताश्वतरोपनिषद्
19. ईश्वरगीता
20. सूतसंहिता
21. वराहोपनिषद्
22. बौधायनधर्मसूत्र
23. ब्रह्मवैवर्तपुराण
24. कठोपनिषद्
25. कौषीतकि-उपनिषद्
26. ब्रह्मविद्योपनिषद्
27. कूर्मपुराण
28. मण्डलब्राह्मणोपनिषद्
29. महोपनिषद्
30. महाभारत
31. महावाक्योपनिषद्
32. मार्कण्डेयपुराण
33. मुक्तिकोपनिषद्
34. मैत्रेय्युपनिषद्
35. मैत्रायण्युपनिषद्
36. मनुस्मृति
37. शिवसंहिता
38. त्रिशिखिबाह्मणोपनिषद्
39. विष्णुपुराण
40. विश्वामित्रकल्प
41. विवेकचूड़ामणि
42. लिङ्गपुराण

43. हठयोगप्रदीपिका
44. पातंजलयोगसूत्र
45. श्रीमद्भागवत
46. राजयोगसंहिता
47. संन्यासोपनिषद्
48. स्कन्दपुराण
49. स्कन्दोपनिषद्
50. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्
51. सौरपुराण
52. सुबालोपनिषद्
53. वसिष्ठसंहिता
54. वह्निपुराण
55. वायुपुराण
56. वायवीयसंहिता
57. तेजोबिन्दूपनिषद्
58. जाबालदर्शनोपनिषद्
59. नारदीयपुराण
60. नादबिन्दूपनिषद्
61. अक्ष्युपनिषद्
62. अद्वयतारकोपनिषद्
63. अमृतनादोपनिषद्
64. अत्रिसंहिता
65. अथर्ववेद
66. आदित्यपुराण
67. अन्नपूर्णोपनिषद्
68. गरुडपुराण
69. गर्भोपनिषद्
70. गोरक्षसंहिता
71. अपरोक्षानुभूति
72. पञ्चदशी
73. वेदान्तसार
74. माण्डूक्यकारिका
75. वाक्यसुधा
76. केनोपनिषद्
77. एकाक्षरोपनिषद्
78. मन्त्रिकोपनिषद्
79. शारीरकोपनिषद्
80. उपदेशसाहस्री
81. योगमार्तण्ड
82. शाण्डिल्योपनिषद्
83. सिद्धसिद्धान्तपद्धति
84. दत्तात्रेय योगशास्त्र
85. ब्रह्मपुराण
86. योगसार-प्राभृत
87. शिवमहापुराण
88. देवीभागवतपुराण
89. अमरकोश
90. यजुर्वेद
91. सामवेद
92. ब्रह्माण्डपुराण
93. तैत्तिरीयोपनिषद्
94. कथासरित्सागर
95. विष्णुधर्मोत्तरपुराण
96. साम्बपुराण

97. बृद्धगौतमस्मृति
98. नीतिशतक
99. संवर्तस्मृति
100. हरिवंशपुराण
101. मत्स्यपुराण
102. रामायण
103. कुमारसम्भव
104. योगरत्नावली
105. आदिपुराण
106. अवधूतगीता
107. अष्टावक्रगीता
108. पारस्करगृह्यसूत्र
109. गीतारहस्य
110. दक्षस्मृति
111. अद्भुतरामायण
112. उद्धवगीता
113. शाण्डिल्यभक्तिसूत्र
114. शुकरहस्योपनिषद्
115. महानारायणोपनिषद्
116. अध्यात्मरामायण
117. वराहपुराण
118. पैंगलोपनिषद्
119. कैवल्योपनिषद्
120. शरभोपनिषद्
121. रुद्रहृदयोपनिषद्
122. पाशुपतब्रह्मोपनिषद्
123. शुक्रनीति
124. आत्मोपनिषद्
125. शृङ्गारशतक
126. उपदेशसार
127. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य
128. योगदीपिका
129. बृहदारण्यकोपनिषद्
130. छान्दोग्योपनिषद्
131. ईशावास्योपनिषद्
132. आपस्तम्बधर्मसूत्र
133. मुण्डकोपनिषद्
134. परशुरामकल्पसूत्र
135. अहिर्बुध्न्यसंहिता
136. योगियाज्ञवल्क्य
137. आत्मबोधोपनिषद्
138. कठरुद्रोपनिषद्
139. ब्रह्मोपनिषद्
140. निरालम्बोपनिषद्
141. गोपथब्राह्मण
142. मुण्डकोपनिषद्
143. कुण्डिकोपनिषद्
144. प्रश्नोपनिषद्
145. कात्यायनस्मृति
146. सिद्धराजयोग
147. चरकसंहिता
148. कौटिल्य का अर्थशास्त्र
149. वैशेषिक दर्शन
150. देवलधर्मसूत्र

151. प्रणवोपनिषद्
152. सूर्योपनिषद्
153. अथर्वशिरः उपनिषद्
154. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद्
155. सुश्रुतसंहिता
156. जाबालोपनिषद्
157. षड्विंशब्राह्मण
158. शतपथब्राह्मण
159. नारदपाञ्चरात्र
160. आचारसार
161. गोरक्षशतक
162. आत्मपूजोपनिषद्
163. भविष्यपुराण
164. अमनस्कयोग
165. भक्तिरसामृतसिन्धु
166. सांख्यकारिका
167. नरसिंहपुराण
168. हारीतसंहिता
169. पाशुपतब्रह्मोपनिषद्
170. विज्ञानदीपिका
171. भावनोपनिषद्
172. गीताप्रबन्ध
173. रामचरितमानस

ॐ

ॐ